माटी कहै कुम्हार सूं

अनुक्रम

1. परमात्मा सरल है...2
2. अहंकार है दूरी...18
3. जिज्ञासा और खोज...31
4. प्रेम की सुगंध...45
5. जीवन क्या है?...61
6. परंपरा के पत्थर...72
7. परंपराओं से मुक्ति...88
8. विस्मय का भाव...101
9. रहस्य का बोध..114 10...दुखवाद के प्रति विद्रोह
.... 128
11..व्यवहार का पाखंड
.... 141
12..अहंकार--मृत्यु का सूत्र
.... 154

माटी कहै कुम्हार सूं
पहला प्रवचन

परमात्मा सरल है

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक आश्चर्यजनक दुर्भाग्य मनुष्य-जाति के ऊपर रोज-रोज अपनी काली छाया बढ़ाता गया है। अब तो शायद हमें उस दुर्भाग्य का कोई पता भी नहीं चलता है। जैसे कोई जन्म से ही बीमार पैदा हो तो उसे स्वास्थ्य का कभी कोई पता नहीं चलता। जैसे कोई जन्म से ही अंधा पैदा हो, तो जगत में कहीं प्रकाश भी है, इसका उसे कोई पता नहीं चलता। ऐसे ही हम एक अदभुत अनुभव से जन्म के साथ ही जैसे वंचित हो गए हैं। धीरे-धीरे मनुष्य-जाति को यह ख्याल भी भूलता गया है कि वैसा कोई अनुभव है भी। उस अनुभव को इंगित करने वाले सब शब्द झूठे और थोथे मालूम पड़ने लगे हैं।
ईश्वर से ज्यादा आज कोई शब्द थोथा और व्यर्थ है? धर्म से ज्यादा थोथा
और व्यर्थ आज कोई शब्द है? मंदिरों से ज्यादा अनावश्यक, प्रार्थनाओं से ज्यादा व्यर्थ आज कोई और भाव-दशा है? मनुष्य के जीवन से सारा संबंध जैसे परमात्मा का समाप्त हो गया है!
इस दुर्भाग्य के कारण मनुष्य किस भांति जी रहा है--किस चिंता में, दुख में, पीड़ा में, परेशानी में--उसका भी हमें कोई अनुभव नहीं हो रहा है। और जब भी यह बात उठती है कि ईश्वर से मनुष्य का संबंध क्यों टूट गया है? पशु- पक्षी भी ज्यादा आनंदित मालूम होते हैं। पौधों पर खिलने वाले फूल भी आदमी की आंखों से ज्यादा प्रफुल्लित मालूम होते हैं। आकाश में उगे हुए चांद-तारे भी, समुद्र की लहरें भी, हवाओं के झोंके भी आदमी से ज्यादा आह्लादित मालूम होते हैं। आदमी को क्या हो गया है? अकेला आदमी इस बड़े जगत में रुग्ण, बीमार मालूम पड़ता है। लेकिन अगर हम पूछें कि ऐसा क्यों हो गया है? ईश्वर से संबंध क्यों टूट गया है? तो जिन्हें हम धार्मिक कहते हैं, वे कहेंगेः नास्तिकों के कारण, वैज्ञानिकों के कारण, भौतिकवाद के कारण, पश्चिम की शिक्षा के कारण ईश्वर से मनुष्य का संबंध टूट गया है।
ये बातें एकदम ही झूठी हैं। किसी नास्तिक की कोई सामर्थ्य नहीं कि मनुष्य का संबंध परमात्मा से तोड़ सके। यह वैसा ही है... और किसी भौतिकवादी की यह सामर्थ्य नहीं कि मनुष्य के जीवन से अध्यात्म को अलग कर सके। किसी पश्चिम की कोई शक्ति नहीं कि उस दीये को बुझा सके जिसे हम धर्म कहते हैं। यह वैसा ही है जैसे मेरे घर में अंधेरा हो और आप मुझसे पूछें आकर कि दीये का क्या हुआ? और मैं कहूं कि मैं क्या करूं! दीया तो मैंने जलाया, लेकिन अंधेरा आ गया और उसने दीये को बुझा दिया! तो आप हंसेंगे और कहेंगे, अंधेरे की क्या शक्ति है कि प्रकाश को बुझा दे!
अंधेरा आज तक कभी किसी प्रकाश को नहीं बुझाया है। मिट्टी के एक छोटे
से दीये में भी उतनी ताकत है कि सारे जगत का अंधकार मिल कर भी उसे नहीं बुझा सकता है।
हां, दीया बुझ जाता है तो अंधेरा जरूर आ जाता है। अंधेरे के आने से दीया नहीं बुझता; दीया बुझ जाता है तो अंधेरा आ जाता है।
नास्तिकता के कारण धर्म का दीया नहीं बुझा; धर्म का दीया बुझ गया, इसलिए नास्तिकता आ गई है। भौतिकवाद के कारण अध्यात्म नहीं बुझ गया; अध्यात्म बुझा है, इसलिए भौतिकवाद है। फिर किनके कारण? क्योंकि जब कोई यह कहता है कि नास्तिकता, भौतिकवाद, ये धर्म को मिटा रहे हैं, तो वह पता नहीं है उसे कि वह धर्म को कमजोर और नास्तिकता को मजबूत कह रहा है। उसे पता नहीं कि वह धर्म के पक्ष में नहीं बोल रहा है; वह धर्म के विपक्ष में बोल रहा है। वह यह स्वीकार कर रहा है कि अंधेरे की ताकतें ज्यादा बड़ी हैं उजाले की ताकतों से।
और अगर अंधेरे की ताकत बड़ी है और प्रकाश को बुझा सकती है, तो स्मरण रखना, फिर प्रकाश के जलने की दुनिया में कभी कोई संभावना नहीं है। क्योंकि अंधेरा हमेशा बुझा देगा; आप जलाइए और अंधेरा बुझा देगा। अगर नास्तिकता धर्म को मिटा सकती है, तो धर्म के जन्म की अब कोई संभावना नहीं है।

लेकिन मैं कहता हूं, यह बात ही गलत है, यह दलील ही गलत है, यह तर्क ही झूठा है। यह तर्क वैसा ही है जैसे भारत के लोग और तर्क भी देते हैं इसी सरणी में।
भारत के लोगों से पूछें, हम अपने से पूछें--हम कमजोर क्यों हो गए? हम सारी जमीन पर दीन-हीन क्यों हो गए?
तो हम फौरन कहेंगे, मुसलमान आए, उन्होंने हमें हराया और कमजोर किया। अंग्रेज आए, उन्होंने हमें गुलाम बनाया और कमजोर किया। एक हजार साल की गुलामी की वजह से हम दीन-हीन हो गए हैं।
यह तर्क भी उतना ही झूठा है। कोई गुलामी से कमजोर नहीं होता; जो कमजोर होता है वह गुलाम जरूर हो जाता है। गुलामी से कोई कमजोर होता है? कमजोरी से जरूर गुलामी आ सकती है। गुलामी से कोई दीन-हीन होता है? दीन-हीन गुलाम हो सकता है।
लेकिन इन दलीलों में होशियारी है, कनिंगनेस है, चालाकी है। इन दलीलों
से हम अपने को बचा लेते हैं, जिम्मा दूसरे पर थोप देते हैं।
दुनिया भर के धर्मगुरु और तथाकथित धार्मिक लोग जब भी नास्तिकों पर, अधार्मिकों पर, भौतिकवादियों पर यह जिम्मा थोप देते हैं कि तुम्हारे कारण जीवन नष्ट हो रहा है, प्रकाश बुझ रहा है, तब वे एक तरकीब काम में ला रहे हैं; वे आपकी नजरें इस बात से हटाना चाहते हैं कि उनके कारण, धार्मिकों के कारण, धर्मगुरुओं के कारण, धर्मपंथों के कारण, ईसाइयों के कारण, हिंदुओं के कारण, मुसलमानों, जैनों और बौद्धों के कारण धर्म का दीया बुझा है। इस तथ्य को झुठला देने के लिए दूसरों पर दोष दिए जाते हैं। और नास्तिकों का कहीं कोई संगठन नहीं है जो विरोध करे। नास्तिकों का कहीं कोई शास्त्र नहीं, नास्तिकों का कोई मंदिर नहीं, जो विरोध करे। भौतिकवादियों का कहीं कोई संप्रदाय नहीं जो विरोध करे। तो यह बात चुपचाप स्वीकृत हो जाती है। एकतरफा गवाही पर बात मान ली जाती है!
मैं आपसे आज की पहली चर्चा में यह कहना चाहता हूं कि ईश्वर का संबंध मनुष्य से तोड़ने में जितना हाथ धर्मगुरुओं, धर्म-पुरोहितों, मंदिरों और मस्जिदों, हिंदू-मुसलमानों, ईसाइयों और जैनों का है, उतना किसी और का नहीं। और अगर इस पृथ्वी को फिर से प्रभु से जुड़ना है, तो कुछ चीजों से हाथ जोड़ लेने पड़ेंगे। संप्रदायों से हाथ जोड़ लेना पड़ेंगे, अगर धर्म का जन्म देखना चाहते हैं। और धर्मगुरु को विदा कर देना होगा, अगर प्रभु के दर्शन की तरफ आंखें उठाना चाहते हैं।
यह मैं क्यों कहता हूं?
यह मैं इसलिए कहता हूं कि जब भी कोई प्रेम का व्यवसाय करेगा...
प्रेम का व्यवसाय, पहली बात तो हो नहीं सकता। प्रेम का कोई धंधा नहीं
हो सकता। किसी दुकान पर प्रेम खरीदने से नहीं मिल सकता। लेकिन अगर कोई प्रेम की दुकान खोल ले और प्रेम बेचता हो, तो आप समझ लेना कि धोखा दिया जा रहा है। और अगर उस दुकान पर खरीदे गए प्रेम को आप प्रेम समझ लें, तो यह भी समझ लेना कि जो प्रेम आपको उपलब्ध हो सकता था, कभी उपलब्ध नहीं होगा।
अगर प्रेम का व्यवसाय नहीं हो सकता, तो प्रार्थना का व्यवसाय कैसे हो सकता है? प्रार्थना तो प्रेम का ही विराट रूप है। अगर प्रेम नहीं मिल सकता बाजार में और दुकानों पर, तो परमात्मा कैसे मिल सकता है?
लेकिन परमात्मा को बेचने वाली दुकानें हैं, जिनको हम धर्म कहते हैं। परमात्मा को बेचने वाली दुकानें हैं, जिनको हम मंदिर-मस्जिद, शिवालय और गुरुद्वारे कहते हैं। परमात्मा को बेचने वाले दुकानदार हैं, जिनको हम धर्मगुरु, पुरोहित, पादरी और ये सब नाम देते हैं। इन सारे लोगों ने आदमी और प्रभु के बीच एक दीवाल खड़ी कर दी है, जिससे प्रभु से मिलन कठिन हो गया है। यह दीवाल इन्होंने कैसे खड़ी कर दी है?
यह दीवाल बहुत होशियारी से खड़ी की गई है। इस दीवाल की पहली ईंट तो यह
है कि दुनिया के सारे धर्मगुरु एक बात चिल्ला-चिल्ला कर थके नहीं हैं कि परमात्मा को पाना बहुत कठिन है। सारी दुनिया में तीन हजार वर्ष से यह प्रचार किया जा रहा है कि परमात्मा को पाना अति दुर्लभ है, बहुत कठिन है।

क्या आपको पता है कि इस बात ने ही आदमी और परमात्मा के बीच सबसे मजबूत पत्थर रख दिया है?
नहीं, शायद आपके ख्याल में न हो। जिस बात को हजारों साल तक दोहराया जाए कि कठिन है, वह इसी कारण कठिन हो जाती है। कठिनाई का प्रचार मनुष्य के मन को पकड़ लेता है और उसे लगने लगता है कि मैं कैसे पा सकूंगा इतनी कठिन बात! यह मेरी सामर्थ्य के बाहर है। यह मेरी शक्ति के बाहर है। यह मेरी सीमा के बाहर है। मैं एक छोटा सा मनुष्य हूं, मैं कैसे पा सकूंगा! और जिसे हम पा ही नहीं सकते जन्मों-जन्मों की कोशिश के बाद भी, उसे अगर हमने पाने का प्रयास छोड़ दिया हो, तो कोई गलती की है?
एक मनोवैज्ञानिक रूस में एक छोटा सा प्रयोग कर रहा था। वह इस बात का पता लगाना चाहता था कि क्या कोई बात कठिन, और कठिन, और कठिन दोहराए जाने से कठिन हो जाती है? विश्वविद्यालय की एक गणित की कक्षा के तीस विद्यार्थियों पर उसने एक प्रयोग किया। पंद्रह विद्यार्थियों को एक कमरे में ले गया, पंद्रह को दूसरे कमरे में ले गया। एक ही कक्षा के विद्यार्थी, एक ही बुद्धि के, एक ही बुद्धिमत्ता के।
पहले पंद्रह विद्यार्थियों के सामने उसने तख्ते पर एक गणित का सवाल लिखा। और लिख कर कहा कि यह सवाल मैं आशा नहीं करता हूं कि तुममें से कोई भी हल कर सकेगा। यह बहुत कठिन है। यह इतना कठिन है कि जमीन पर मुश्किल से दस-पांच गणितज्ञ हैं जो इसे हल कर सकते हैं। तुम्हारी कोई सामर्थ्य नहीं। लेकिन तुम पूछोगे कि फिर तुम्हें हल करने को दिया क्यों जा रहा है? इसलिए दिया जा रहा है कि हम इस बात का पता लगाना चाहते हैं कि क्या विश्वविद्यालय के इस कक्षा के वर्ग के विद्यार्थी इस सवाल को हल करने की दिशा में एकाध-दो कदम भी ठीक उठा सकते हैं या नहीं। पूरे सवाल के ठीक होने की तो कोई संभावना ही नहीं। लेकिन अगर एकाध-दो कदम भी तुम ठीक उठा लो, ठीक दिशा में, तो भी बड़े गौरव की बात होगी। देखो, कोशिश करो, शायद एकाध व्यक्ति ठीक दिशा में एकाध-दो कदम उठा सके। सवाल बहुत कठिन है। आशा कोई भी नहीं है। तुमसे बड़ी कक्षा के विद्यार्थी भी असफल हो गए हैं। लेकिन शायद!
उन विद्यार्थियों ने जब यह बात सुनी तो उनके हाथ ढीले पड़ गए। उनके प्राणों में जो ऊर्जा उठती सवाल को हल करने के लिए, वह सो गई। जो शक्ति जगती और चुनौती को स्वीकार करती, उसने पहले ही स्वीकार कर लिया कि हल नहीं हो सकता है। जो बात हल नहीं हो सकती, फिर प्राण उससे संघर्ष लेना बंद कर देते हैं। वे सवाल को मुर्दा, उदास, सुस्त हाथों से हल करने लग गए। पहले से ही निश्चय है कि यह सवाल हल नहीं हो सकता। पहले से ही परिणाम जाहिर है कि असफलता होनी है। और जब पहले ही असफलता पता हो तो क्या सफलता की दिशा में आपके कदमों में प्राण हो सकते हैं, गति हो सकती है, शक्ति हो सकती है? वे सवाल को हल करने में लग गए हैं, जानते हुए कि यह सवाल हल नहीं होगा।
और वह मनोवैज्ञानिक दूसरे पंद्रह विद्यार्थियों के पास गया। तख्ते
पर उसने वही सवाल लिख दिया है और उन विद्यार्थियों से कहा कि यह सवाल बहुत सरल है। यह इतना सरल है कि तुमसे नीचे की कक्षाओं के विद्यार्थी इसे पूरा का पूरा हल कर लिए हैं। लेकिन तुम पूछोगे कि फिर हमें यह सवाल क्यों दिया जा रहा है जब इतना सरल है? उसने कहा कि मैं कोई शोधकार्य कर रहा हूं और पता लगाना चाहता हूं कि क्या इस ऊंची कक्षा में एकाध भी ऐसा विद्यार्थी आ गया है जो इस सवाल को हल न कर सके? हमें उस विद्यार्थी का पता लगाना है कि क्या हमारी परीक्षाओं को पार करके ऐसे विद्यार्थी भी आ जाते हैं कि इतना सरल सवाल हल न कर सकें? कोई भी नहीं असफल होगा। तुमसे नीची कक्षाओं के विद्यार्थी सफल हो गए हैं, पूरा सवाल हल कर लिया है। सवाल बहुत सरल है।
वे पंद्रह विद्यार्थी भी सवाल हल करने में लग गए हैं। लेकिन उनकी हालत बहुत जुदा और भिन्न है। वे जानते हैं कि सवाल हल होगा। वे जानते हैं कि सवाल हल होना ही है। वे जानते हैं कि नीचे की कक्षाओं में सवाल हल हो गया, तो हम क्या हार जाएंगे! इतना सरल सवाल है। उनके प्राणों की ऊर्जा जग गई है और वे प्रफुल्लता से, आनंद से सवाल हल करने में लग गए हैं। सवाल वही है।

और घंटे भर बाद जब उनका सवाल पूरा हो चुका, तो पहली कक्षा में, जहां कहा गया था कि सवाल कठिन है, केवल तीन विद्यार्थी सवाल हल कर पाए, बारह विद्यार्थी असफल हो गए। और दूसरी कक्षा में केवल एक विद्यार्थी असफल हुआ, चौदह विद्यार्थी सफल हो गए।
सवाल वही था, विद्यार्थी एक ही वर्ग के थे। क्या हो गया? एक भावदशा निर्मित हो गई कि कठिन है। एक भावदशा निर्मित हो गई कि सरल है। और जिस भावदशा को लेकर हम पहला कदम रखते हैं, उसी भावदशा पर अंतिम कदम पूरा हो जाता है।
पांच हजार वर्षों का इतिहास ईश्वर को कठिन, कठिन, कठिन दोहरा रहा है। फिर बात इतनी कठिन हो गई कि मनुष्य ने उस दिशा में देखना भी बंद कर दिया। जो हमारे सामर्थ्य के बाहर है, वह हमारी आकांक्षा नहीं बन सकता है। जो हमारी शक्ति के बाहर है, वह हमारी अभीप्सा नहीं बन सकता है। ठीक है कि कभी मंदिर में हम फूल चढ़ा दें; ठीक है कि कभी किसी व्रत-त्यौहार पर उसका स्मरण कर लें। लेकिन हमारी सामर्थ्य के बाहर है, हमसे बहुत दूर है।
जापान में कोई तीन सौ वर्ष पहले एक छोटे से राज्य पर पड़ोस के बड़े राजा
ने हमला बोल दिया। राजा बड़ा है हमलावर। आक्रामक बहुत शक्तिशाली है; कोई दस गुनी ताकत है उसके पास। और राज्य छोटा है जिस पर हमला हुआ है, बहुत गरीब है। न सैनिक हैं, न युद्ध का सामान है, न सामग्री है।
सेनापति घबड़ा कर राजा से बोला है कि मेरी सामर्थ्य के बाहर है कि मैं युद्ध पर जाऊं। कैसे जाऊं, यह जानते हुए कि अपने सैनिकों की हत्या करवानी है! और हार निश्चित है। मैं इनकार करता हूं, मुझे क्षमा कर दें। मैं इस युद्ध में नहीं जा सकूंगा। कोई मौका ही नहीं है जीतने का। दस गुने सिपाही हैं दूसरी तरफ; दस गुनी युद्ध की सामग्री है; आधुनिक उपाय हैं। और हमारे पास कुछ भी नहीं। हार निश्चित है, इसलिए हार ही जाना उचित है। व्यर्थ लोगों को कटवाने से क्या प्रयोजन?
राजा भी डर रहा है। वह भी जानता है कि बात सच है। सेनापति को कायर कहना उचित नहीं है। उसने और युद्ध लड़े हैं। आज पहली दफा वह इनकार कर रहा है। और इनकार करने में कायरता नहीं काम कर रही है; सीधी बात है। साफ गणित जैसी बात है; दो और दो चार जैसी बात है। हार निश्चित है। लेकिन राजा का मन नहीं मानता कि बिना हारे और हार जाएं। वह रात भर बेचैन रहा है। सुबह उसने अपने वजीर को पूछा है, क्या करना है? दुश्मन रोज आगे बढ़े आते हैं!
उस वजीर ने कहा कि मैं एक फकीर को जानता हूं। जब भी मेरे जीवन में कोई उलझन आई है, उसी के पास गया हूं। और आज तक बिना सुझाव के वापस नहीं लौटा। सुबह है, आप चले चलें। पूछ लें उससे।
वे फकीर के दरवाजे पर पहुंच गए हैं। सेनापति भी साथ है। फकीर हंसने लगा। उसने कहा कि छोड़ो, इस सेनापति को छोड़ो। क्योंकि जो जाने के पहले कहता है कि हार जाना निश्चित है, उसके जीत की तो कोई संभावना नहीं रह गई। मैं चला जाता हूं सेनापति की जगह सेनाओं को लेकर।
राजा और भी डरा। सेनापति अनुभवी है, अनेक युद्धों में लड़ा और जीता है।
यह फकीर, जो तलवार पकड़ना भी नहीं जानता! लेकिन फकीर ने कहा, बेफिक्र रहो, आठ-दस दिन के भीतर हम जीत कर वापस लौट आएंगे।
फकीर सेनाओं को लेकर रवाना हो पड़ा। सेनाएं घबड़ा रही हैं, उनके हाथ-पैर कंप रहे हैं सैनिकों के। जब सेनापति इनकार कर दिया, तो एक अजनबी, अनुभवी नहीं है जो, ऐसा फकीर! लेकिन फकीर गीत गाते हुए चला जा रहा है। फिर वे उस नदी के पास पहुंच गए जिसके उस तरफ दुश्मन का डेरा है। फकीर ने सैनिकों को एक मंदिर के पास रोका और कहा कि रुको दो क्षण को, जरा मैं जाकर मंदिर के देवता से पूछ लूं कि हम जीतेंगे या हारेंगे? मेरी हमेशा की यह आदत रही है। जब भी मुश्किल में पड़ा हूं, इसी मंदिर के देवता से पूछ लेता हूं!
सैनिकों ने कहा, लेकिन देवता ने कहा--कैसे कहेगा? हम कैसे समझेंगे कि क्या कहा देवता ने? उसने कहा, रास्ता है। मंदिर को घेर कर सैनिक खड़े हो गए हैं। और उस फकीर ने अपने खीसे से एक सोने का चमकता हुआ सिक्का निकाला। और कहा कि हे प्रभु! अगर हम जीत कर लौटते हों तो सिक्का सीधा गिरे, अगर हम हार कर लौटते हों तो सिक्का उलटा गिरे।

सिक्के को ऊपर फेंका है हवा में, आकाश में। सूरज की रोशनी में सोने का सिक्का चमक रहा है और सारे सैनिकों के प्राण अवरुद्ध हो गए हैं, श्वास बंद हो गई है--अब? ठगे हुए देख रहे हैं कि क्या होता है! रुपया नीचे गिरा है। सिक्का सीधा गिरा है। फकीर ने कहा कि देख लो! जीत निश्चित है! सिक्का खीसे में रख लिया है और सैनिक एक नये उत्साह से, एक नये जीवन से युद्ध में कूद पड़े हैं।
दस दिन बाद वे जीत कर वापस लौट रहे हैं। मंदिर के पास आकर सैनिकों ने
उस फकीर को कहा कि शायद आप भूल गए! मंदिर के देवता को धन्यवाद तो दे लें! वह फकीर हंसने लगा और उसने कहा, रहने दो। कोई खास जरूरत नहीं है। पर सैनिकों ने कहा, कैसी आप बात करते हैं! कम से कम अनुग्रह तो मान लें! जिसने जीत का संदेश दिया... ! उस फकीर ने कहा, छोड़ो! उस देवता का इसमें कोई संबंध नहीं। धन्यवाद देना हो तो मुझे दे दो। उन सैनिकों ने कहा, तुम्हें! उस फकीर ने खीसे से सिक्का निकाला और कहा, इस सिक्के को देखो। वह दोनों तरफ सीधा था। वह सिक्का उलटा था ही नहीं। उसमें दोनों तरफ ही सीधा था। तो उस फकीर ने कहा, धन्यवाद देना हो तो मुझे दे दो। देवता का इसमें कोई हाथ नहीं है। कैसे जीत कर लौट आए वे सिपाही? क्या हो गया उनके प्राणों को? क्या आप सोचते हैं कि इस फकीर के बिना भी वे जीत कर लौट सकते थे? क्या आप सोचते हैं कि अपने सेनापति के साथ वे जीत कर लौट सकते थे? क्या आप सोचते हैं कि एक सिक्के के बिना वे जीत कर लौट सकते थे? क्या आप सोचते हैं कि बिना इस आशा के और इस विश्वास के कि जीत निश्चित है, जीत हो सकती थी?
लेकिन ईश्वर के संबंध में यही हो गया है। उस फकीर का सिक्का दोनों तरफ सीधा था, हमारा सिक्का दोनों तरफ उलटा हो गया है। फेंकते हैं, हमेशा हार! वह दोनों तरफ उलटा है। और मैं आपसे कहता हूं कि यह दोनों तरफ जो उलटा सिक्का है, यह धर्मगुरुओं ने निर्मित किया है। क्यों? आप कहेंगे, धर्मगुरुओं का इसमें क्या प्रयोजन हो सकता है? उन्हें क्या हित? उन्हें क्या लाभ हो सकता है कि आदमी और ईश्वर में दूरी हो जाए?
अगर आपको थोड़े भी व्यवसाय के नियम याद हैं, तो आपको समझ में आ जाएगा। अगर परमात्मा, आदमी को पाना बहुत सरल है, तो धर्मगुरु की कोई भी जरूरत बीच में नहीं रह जाती। अगर परमात्मा को पाना अति सरल है, तो बीच के दलाल की कोई गुंजाइश, कोई जरूरत नहीं रह जाती। परमात्मा को पाना जितना कठिन है, उतना ही बीच का मीडिएटर, बीच का एजेंट, बीच का दलाल, बीच का व्यवसायी उपयोगी और जरूरी हो जाता है। परमात्मा को पाना कठिन है, तो फिर बीच में गुरु जरूरी है। क्योंकि उस कठिन को पाने के लिए गुरु के बिना ज्ञान कौन बताएगा? रास्ता कौन बताएगा? जो कठिन है, उसको पाने का रास्ता भी दुर्गम है, पहाड़ पर चढ़ने जैसा है, तलवार की धार पर चलने जैसा है। तो उसे बताने के लिए कोई चाहिए रास्ता, कोई हाथ पकड़ कर ले जाने के लिए चाहिए।
ईश्वर को कठिन बता कर धर्मगुरु ने अपनी जरूरत निश्चित कर ली है। और ईश्वर जितना कठिन होता गया, धर्मगुरु का व्यवसाय उतना ही फैलता चला गया, बड़ा होता चला गया। आज जमीन पर करोड़-करोड़ धर्मगुरु आदमी के इसी शोषण पर जी रहे हैं। सिर्फ कैथलिक पुरोहितों की संख्या बारह लाख है। और दुनिया में तीन सौ धर्म हैं। ये एक धर्म के पुरोहित हैं, बारह लाख! दुनिया में तीन सौ धर्म हैं, तीन सौ पंथ हैं। इन सबके अपने गुरु हैं, अपने संन्यासी हैं, अपने पुरोहित हैं, अपने पंडित हैं। और वे सब एक बात पर जीते हैं कि भगवान से मिलाने की तरकीब आपके लिए बताते हैं। हालांकि इन करोड़-करोड़ धर्मगुरुओं के कारण मनुष्य-जाति परमात्मा से जुड़ नहीं पा रही है।
कठिन बताने में हित है। फिर जो चीज जितनी कठिन है, उसकी कीमत उतनी ही
बढ़ जाती है। बाजार में जो चीज मिलनी मुश्किल हो जाए, उसकी कीमत बढ़ जाती है। जो चीज मिलनी सरल हो जाए, उसकी कीमत घट जाती है। जो चीज बिल्कुल सुलभ मिलती है, हम ख्याल ही भूल जाते हैं कि किसी कीमत की है। हवा की कोई कीमत है, हमें ख्याल ही नहीं। पानी की कोई कीमत है, हमें ख्याल ही नहीं। लेकिन रेगिस्तान में, मरुस्थल में पानी की कीमत मालूम पड़ने लगती है। और चांद पर जब यात्री यात्रा करेंगे, तब हवा की कीमत मालूम पड़ेगी।

जो चीज जितनी सरल और सहज उपलब्ध होती है, उसकी फिर कोई कीमत नहीं रह जाती है, उसका व्यवसाय नहीं किया जा सकता है। धर्मगुरु व्यवसाय कर रहा है ईश्वर का, बेच रहा है ईश्वर को। स्वाभाविक, सीधे, इकोनॉमिक्स के, अर्थशास्त्र के सीधे नियम हैं कि ईश्वर कठिन, न्यून, बहुत मुश्किल हो। इतना मुश्किल हो, तो उसके उतने दाम हो जाते हैं।
एक राजा एक रात भटक गया है एक जंगल में। सुबह ही सुबह एक गांव में पहुंचा है, थका-मांदा रात भर, एक झोपड़े के सामने रुका है। और उसने कहा कि मुझे बहुत भूख लगी है, कुछ मिल जाए। झोपड़े में कुछ भी नहीं है, कोई दो-तीन अंडे पड़े हैं। झोपड़े के मालिक ने वे दे दिए हैं। राजा ने नाश्ता कर लिया है। फिर उसे कहा कि धन्यवाद। कितने पैसे हुए? उस बूढ़े ने कहा, ज्यादा नहीं, सिर्फ सौ रुपये। राजा ने कहा, सौ रुपये! दो-तीन अंडों के! मैंने बहुत कीमती चीजें खरीदी हैं। आज तक मेरी कल्पना में भी नहीं था कि अंडे इतने मंहगे हो सकते हैं। आर एग्स सो रेयर हियर? क्या इधर बहुत मुश्किल है अंडे का मिलना? इतना मुश्किल? वह बूढ़ा हंसने लगा और उसने कहा कि नहीं, एग्स आर नाट रेयर सर, बट किंग्स आर। इधर अंडे तो रोज मिलते हैं, बहुत मिलते हैं, लेकिन राजा बहुत मुश्किल से मिलते हैं। उस राजा ने सौ रुपये दे दिए।
न्यूनता किसी भी चीज की, उसकी कीमत का मापदंड बन जाती है। ईश्वर बहुत मुश्किल है! बहुत मुश्किल है! कभी-कभी किसी को उपलब्ध होता है! सब तो उससे वंचित रह जाते हैं! तो फिर उसका मूल्य लिया जा सकता है। यूरोप में, मध्य युग में ईसाई पोप लोगों से लाखों रुपये लेता रहा स्वर्ग पहुंचाने के। चिट्ठी लिख कर देता रहा ईश्वर के नाम। कब्र में चिट्ठी रख दी जाती थी। पता नहीं वह चिट्ठी कभी पहुंची कि नहीं और उसका क्या हुआ! न आदमी लौटता है। लेकिन वे कब्रें खोदी जाएं तो वे चिट्ठियां अभी भी उन कब्रों में रखी हुई मिल जाएंगी। पोप ज्यादा होशियार है, लाख रुपये लेता है। इधर हमारे गांव के ब्राह्मण-पंडित उतने होशियार नहीं, एक मरी सी गाय लेकर भी निपटारा कर देते हैं! लेकिन नियम वही है--बेचा जा रहा है स्वर्ग, बेचा जा रहा है मोक्ष, बेचा जा रहा है धर्म, बेचा जा रहा है परमात्मा!
तो इसका कठिन होना बहुत जरूरी है। इसलिए तीन-चार हजार वर्षों से उसकी कठिनाई की रट लगाई जा रही है। और उसका परिणाम यह हुआ कि आदमी ने इतने दिनों में स्वीकार कर लिया है कि कठिन है। इस कठिनाई के निश्चित हो जाने के दो घातक परिणाम हुए।
पहला घातक परिणाम तो यह हुआ कि सीधे और सरल लोगों ने उस तरफ जाना बंद
कर दिया। विनम्र लोगों ने उस तरफ आंख उठानी बंद कर दी। उन्होंने मान लिया कि यह हमारी क्षमता नहीं है। यह हमारी पात्रता नहीं है।
विनम्र और सीधे-सादे लोग ही पात्र हैं प्रभु को पाने के। लेकिन इस गलत शिक्षण का परिणाम यह हुआ कि विनम्र और सीधे-सादे लोगों ने उस तरफ आंख उठानी बंद कर दी।
और दूसरा घातक परिणाम यह हुआ कि ईगोइस्ट और अहंकारी लोगों ने उस तरफ यात्रा करनी शुरू कर दी। अहंकार का एक ही आनंद है कि जो कठिन है उसको पाया जाए। एवरेस्ट पर चढ़ा जाए। ऐसा जूनागढ़ की पहाड़ी पर चढ़ने में क्या रखा हुआ है! गौरीशंकर पर चढ़ना है। क्यों? क्या काम है गौरीशंकर पर? क्या जरूरत है चढ़ने की गौरीशंकर पर आपको?
नहीं लेकिन, मैं पहला आदमी हूं! हिलेरी मैं हूं, तेनसिंग मैं हूं! मैं वहां झंडा गाड़ता हूं! मेरे कदम पहली बार वहां पड़ते हैं जहां किसी मनुष्य के कभी नहीं पड़े!
तो आदमी में जो अहंकारी है सबसे ज्यादा, वह कठिन की तलाश में रहता है
कि जो कठिन हो, वह मैं करूं। सरल की अपील उसके मन पर नहीं होती। तो दुनिया भर के अहंकारी ईश्वर को पाने की दिशा में लग जाते हैं।
यही तो वजह है कि संन्यासियों से ज्यादा अहंकारी आदमी पाना कठिन है, मुश्किल है। राजनीतिज्ञ में भी विनम्रता हो सकती है, लेकिन संन्यासी में असंभव है। क्यों? कोई संन्यास की भूल है? नहीं। लेकिन अहंकारी उत्सुक होते हैं, परमात्मा कठिन है इसलिए उसको पाने के लिए। उनका अहंकार बिना परमात्मा को मुट्ठी में लिए नहीं मानने को राजी है। धन से उनकी तृप्ति

नहीं हो सकती। दिल्ली के पद से उनकी तृप्ति नहीं हो सकती। उन्हें अगर कोई चीज तृप्ति दे सकती है, तो वह यह कि परमात्मा भी उनकी मुट्ठी में हो तो। यह जो अहंकार की अंतिम प्यास है--ईश्वर कठिन है तो अहंकार उस तरफ दौड़ने लगा। और आश्चर्य यह है कि अहंकार और परमात्मा का मिलन कभी भी नहीं हो सकता है। विनम्रता तो परमात्मा को पा सकती है, अहंकार कभी भी नहीं। लेकिन विनम्र तो थक गए और हार गए और चुप हो गए, और अहंकारी त्वरित वेग से परमात्मा की तरफ, अपने-अपने अहंकार के घोड़ों पर सवार होकर दौड़ने लगे। तो दुनिया में एक दुर्घटना घट गई कि अहंकारी धार्मिक हुए चले जा रहे हैं और विनम्र और सीधे-सादे लोग चुपचाप मंदिरों के बाहर खड़े हैं। उन्होंने आशा छोड़ दी। और जिन्हें नहीं मिल सकता, वे उस दिशा में अग्रसर हो गए हैं।
धर्म की हत्या का मूल कारण, ईश्वर की कठिनाई का उपदेश है। यह पहला सूत्र मैं आज आपसे कहना चाहता हूं। और अगर आपके जीवन में कभी भी ईश्वर को आने देना हो, तो इस बात को बहुत ठीक से अपने मन में बिठा लेना कि ईश्वर को पाने से ज्यादा सरल और कोई बात नहीं है। ईश्वर अत्यधिक सरल है, सरलतम है, अंतिम रूप से सरल है। उससे ज्यादा सरल और कोई बात नहीं है।
क्यों? क्यों मैं कह रहा हूं कि ईश्वर को पाने से ज्यादा सरल कोई बात नहीं है?
इसलिए मैं कह रहा हूं--मछली अगर पूछने लगे कि सागर कहां है? मैं उसे पाना चाहती हूं! तो हम मछली से क्या कहेंगे?
हम कहेंगे, सागर कहां है, यह पूछने का सवाल नहीं। तुम हो, और तुम बिना सागर के नहीं हो सकती हो। तुम्हारा होना हमेशा सागर में होना है। तुम जहां हो, वहीं सागर है। तुम सागर से निर्मित होती हो, सागर ही तुम हो और सागर में ही विलीन हो जाती हो।
मछली के लिए सागर जितना सरल है, मनुष्य के लिए परमात्मा भी उतना ही सरल है। क्योंकि परमात्मा का क्या अर्थ होता है? परमात्मा का अर्थ होता हैः जीवन-धारा। परमात्मा का अर्थ होता हैः वह जो जीवंत, जो प्राण, जो चेतना, वह जो सबमें व्याप्त है--वही। तो उसके बिना तो हम एक क्षण नहीं हो सकते। हम परमात्मा में ही जीते हैं, उसी के सागर में लहर की तरह पैदा होते और विलीन हो जाते हैं। तो जिससे हम निर्मित होते हैं, जिसमें हम जीते हैं, जिसमें हम मिटते हैं, उसे पाना कठिन हो सकता है? उसे खोना कठिन हो सकता है, पाना कैसे कठिन हो सकता है? मछली सागर को खोना चाहे, तो कठिनाई शुरू होगी। मछली सागर को खोना चाहे, तो कठिनाई शुरू होगी। पाने के लिए कौन सी कठिनाई है? पाया ही हुआ है।
तो मैं आपसे कहना चाहता हूंः ईश्वर को खोना कठिन है, पाना नहीं। और यह
जो इतनी कठिनाई में पड़ गई है सारी मनुष्य-जाति, वह इसलिए कि हम ईश्वर को खोने की कोशिश कर रहे हैं। यह जो मनुष्य इतना उजड़ा, विजड़ित, इतना विपन्न, इतना हीन, इतना चिंतित, इतना दुख भरा दिखाई पड़ता है, यह किसलिए? यह इसलिए कि हम ईश्वर को खोने की कोशिश कर रहे हैं।
मछली सागर को खोने की कोशिश कर रही है, सागर से दूर हटने की कोशिश कर रही है, तो विपन्न होती जा रही है, उसके प्राण तड़फड़ा रहे हैं, वह तड़प रही है किनारे पर, धूप में उसके प्राण कंप रहे हैं, वह मरने के करीब खड़ी हो गई है। आदमी भी करीब-करीब उस हालत में है। यह ईश्वर को खोने की कठिनाई है जो
हम भोग रहे हैं। लेकिन ईश्वर को पाना तो बहुत ही सरल है। इसलिए सरल है कि हम उसे पाए ही हुए हैं। उसे हमने एक क्षण को खोया नहीं, हम एक क्षण को उससे अलग नहीं हुए हैं। हम एक क्षण को भी उसके बिना जी नहीं सकते, श्वास नहीं ले सकते।
लेकिन कल्पना में और विचार में हम उससे अलग हो गए हैं, ख्याल में हम उससे अलग हो गए हैं। वैसे ही जैसे एक आदमी आज जूनागढ़ में सो जाए रात। और रात सपना देखे कि जूनागढ़ में नहीं है, कलकत्ते में है। देख सकता है सपना कलकत्ते में होने का। हालांकि सपना देखने से कलकत्ता पहुंच नहीं जाता। लेकिन सपना देख सकता है कि कलकत्ते में है। सुबह उठ कर पूछने लगे कि मैं कलकत्ते से वापस कैसे आया? तो लोग हंसेंगे, कहेंगे कि तुम यहीं सोए रहे हो

रात भर, कलकत्ते तुम गए ही नहीं। लेकिन वह कहेगा, मैं कलकत्ते में था! मौजूद था कलकत्ते में! मैं लौटा कैसे?
जिस दिन आदमी ईश्वर को वापस उपलब्ध करता है ऐसी ही हंसी आती है उसे--कि जिसे कभी खोया नहीं था, उसको खोया कैसे था! जिससे कभी दूर नहीं गए थे, उससे दूर कैसे चले गए थे! कल्पना में, सपने में, सोने में, नींद में।
आदमी मूलतः ईश्वर से एक क्षण को दूर नहीं हो सकता। क्योंकि जिससे दूर हुआ जा सकता है, वह ईश्वर ही न रहा। उससे हम दूर हो सकते हैं, जो हमारे प्राणों से अलग हो, भिन्न हो, पृथक हो। आप अपने घर को छोड़ कर भाग सकते हैं, पत्नी को छोड़ कर भाग सकते हैं, बच्चों को छोड़ कर भाग सकते हैं, गांव को छोड़ कर भाग सकते हैं। अपने को छोड़ कर कैसे भाग सकते हैं? और कहां भागेंगे? जहां जाएंगे, पाएंगे कि साथ मौजूद हो गए हैं। अपने को छोड़ कर कोई भी नहीं भाग सकता।
परमात्मा हमारा स्वभाव है। उसे छोड़ कर हम नहीं भाग सकते। छोड़ने की कोशिश कठिनाई पैदा कर देती है।
तो मैं आपसे कहना चाहता हूंः ईश्वर सरल है। अत्यंत सरल है। खोना कठिन
है उसे, पाना बिल्कुल सरल है। यह पहला सूत्र जिस हृदय में गहराई से बैठ जाता है कि ईश्वर को पाना सरल है, उसकी आधी मंजिल पूरी हो गई बिना चले। उसकी आधी मंजिल पूरी हो गई बिना चले। आधी यात्रा हो गई। प्राण उसके तैयार हो गए यात्रा पर जाने के लिए। उसके चित्त ने तैयारी कर ली। यात्रा तो बहुत सरल है, एक बार हृदय की पूरी तैयारी चाहिए।
तो इन तीन दिनों में उस हृदय की पूरी तैयारी के संबंध में जो सूत्र मुझे आपसे कहने हैं, पहला सूत्र यह कि प्रभु को पाना अत्यंत सरल है, उससे ज्यादा सरल और कुछ भी नहीं है।
जैसे बीज के लिए सबसे सरल बात क्या है? बीज के लिए सबसे सरल बात क्या है?
बीज के लिए सबसे सरल बात यह है कि वह अंकुर बन जाए। इससे ज्यादा सरल बात और कोई भी नहीं है। बीज के लिए कठिनाई होती होगी तो यही होती होगी कि अगर वह बीज ही रह जाए और उसमें अंकुर न फूट सके और पत्तियां न निकल सकें और फूल न निकल सकें। यह बीज की कठिनाई होगी कि बीज न टूट पाए, न बन पाए पौधा, जो बनने को पैदा हुआ था।
आदमी के लिए सबसे सरल क्या है? यही कि वह प्रभु हो जाए। वह उसके भीतर छिपी हुई संभावना है, उसका बीज है। आदमी एक बीज है और परमात्मा उसका प्रगट रूप है। जो उसमें छिपा है, वह प्रगट हो जाए, फूल बन जाए, अंकुर निकल आए, पौधा बड़ा हो जाए।
लेकिन हम सब बीज ही रह जाते हैं, इसलिए हमारा जीवन एक कठिनाई है।
मैं आपसे कहना चाहता हूं कि बहुत सरल है। आप कहेंगे, इतना कह लेने से, मान लेने से भी कुछ सरल नहीं हो जाता है। कुछ भी सरल नहीं हो जाता है! नहीं, सरल हो जाता है। इस भूमिका पर फिर आगे कुछ काम किया जा सकता है।
इस भूमिका पर आगे फिर कदम रखे जा सकते हैं। इसलिए इस पहली चर्चा में इस भूमिका के संबंध में ही आपसे कह रहा हूं। अब तक उसकी कठिनाई को बढ़ाने के लिए बहुत-बहुत प्रकार के रास्ते अपनाए गए हैं।
एक रास्ता यह अपनाया गया है कि उसे पाना हो तो किसी संगठन के हिस्से होना चाहिए, किसी संप्रदाय का सदस्य होना चाहिए, किसी भीड़ के साथ खड़े होना चाहिए--चाहे वह हिंदुओं की भीड़ हो, चाहे मुसलमानों की, चाहे ईसाइयों की, चाहे जैनों की। एक-एक आदमी को किसी भीड़ के साथ खड़ा होना चाहिए, तब वह प्रभु को पा सकता है।
यह बात बिल्कुल झूठ और असत्य है। भीड़ से प्रभु का क्या संबंध है? प्रभु से संबंध हमेशा व्यक्ति का होता है, अकेली निजता में होता है, अकेलेपन में होता है, एकांत में होता है। भीड़ से क्या लेना-देना है? भीड़ कभी प्रभु के साक्षात को उपलब्ध हुई है? प्रभु का साक्षात भी कोई युद्ध तो नहीं है कि वहां सेना बना कर पहुंच जाएं, भीड़ लेकर पहुंच जाएं। वहां तो अकेले आदमी को जाना पड़ता है, अकेले को लेकर। क्राइस्ट को कब मिलता है परमात्मा? अकेले में, एकांत में। मोहम्मद को कब मिलता है? अकेले में,

एकांत में। महावीर को कब मिलता है? अकेले में, एकांत में। बुद्ध को कब मिलता है? अकेले में, एकांत में। आज तक कभी भीड़ ने परमात्मा का साक्षात किया है? आज तक दुनिया की कोई भी भीड़ कभी परमात्मा के सामने उपस्थित हो सकी है? उसके सामने तो एनकाउंटर जो है, साक्षात्कार जो है, वह हमेशा व्यक्तिगत है, एक व्यक्ति का सीधा।
लेकिन हमें यह सिखाया गया है कि बिना हिंदू हुए कोई धार्मिक नहीं हो सकता; बिना मुसलमान हुए कोई धार्मिक नहीं हो सकता। और मैं आपसे कहता हूं कि जब तक कोई हिंदू है, जब तक कोई मुसलमान है, तब तक उसके धार्मिक होने की कोई संभावना नहीं है। यही तो वजह है कि धर्मों के नाम पर इतना अधर्म हो सका।
आपको पता है, अधार्मिक लोगों ने किन मंदिरों को जलाया? किन मस्जिदों में आग लगाई? अधार्मिक लोगों ने किन बच्चों की हत्याएं कीं और किन स्त्रियों की इज्जत लूटी? अधार्मिक लोगों ने क्या किया है उन पर? अगर किसी दिन अधार्मिक लोगों के सब पाप इकट्ठे किए गए और तथाकथित धार्मिकों के, तो आप दंग रह जाएंगे। धार्मिकों के पल्ले पाप का इतना बड़ा पलड़ा भारी है कि हम कल्पना भी नहीं कर सकते!
यह कैसे हो सका? धार्मिक आदमी आग कैसे लगा सका? हत्या कैसे कर सका? खून कैसे कर सका?
वह धार्मिक ही नहीं था। धर्म के नाम पर एक गलत ही बात उसे सिखाई गई थी। असली धर्म--जो मैं कह रहा हूं कि प्रभु की सरलता का धर्म--व्यक्ति को अकेलापन सिखाएगा। नकली धर्म, झूठा धर्म, ईश्वर की कठिनता का धर्म, व्यक्ति को भीड़ का हिस्सा होना सिखाएगा। और जो आदमी भीड़ का जितना हिस्सा हो जाएगा, उतना ही ईश्वर को पाना कठिन हो जाएगा, क्योंकि भीड़ कभी ईश्वर तक जाती ही नहीं, कभी गई ही नहीं, कभी जा भी नहीं सकती। सुनी है कोई घटना कि दस-पच्चीस लोग सीधे परमात्मा के दर्शन को उपलब्ध हो गए हों? एक अकेला आदमी, अपने एकांत में, टोटल लोनलीनेस में उपलब्ध होता है, उस स्थिति को जाता है। ईश्वर को कठिन बनाने के लिए जो तरकीबें काम में लाई गईं, उनमें पहली तरकीब यह है कि धर्म को भीड़ के साथ जोड़ दिया गया, जो बिल्कुल ही गलत बात है। धर्म निजी और व्यक्तिगत है, इंडिविजुअल है। उसका आर्गनाइजेशन से, संप्रदाय से, पंथ से कोई दूर का भी संबंध नहीं है। इसीलिए दुनिया में हिंदू हैं, मुसलमान हैं, ईसाई हैं, जैन हैं, बौद्ध हैं, पारसी हैं--और न मालूम कितने लोग हैं, कितनी बीमारियां हैं, कितने नाम हैं--लेकिन धार्मिक आदमी कहीं भी नहीं है।
तो अगर परमात्मा की तरफ सरलता का अनुभव करना है तो पहली बात यह है, इस बात को समझ लेना ठीक से कि वह अकेले का साक्षात है। वहां आपका निजी मित्र भी आपके साथ नहीं जा सकता, आपकी पत्नी भी नहीं जा सकती, आपका बेटा भी नहीं जा सकता, आपके पड़ोसी भी नहीं जा सकते। जब भी आप जाएंगे, तो आप अकेले। जब भी आप खड़े होंगे, तो अकेले। जीवन के सारे गहरे अनुभव अकेले आदमी के अनुभव हैं, भीड़ से उनका कोई संबंध नहीं है।
अभी हम यहां इतने लोग बैठे हैं, अगर हमें हत्या करनी हो, तो अकेले आदमी
को हत्या करने में बड़ी कठिनाई होती है, भीड़ को बहुत आसानी होती है। इतने लोग अगर हम बैठे हैं, हमें कहीं आग लगानी हो, तो अकेले आदमी को आग लगानी बहुत मुश्किल होती है, भीड़ को बहुत आसान होती है।
क्यों? बुरा काम भीड़ के लिए हमेशा आसान होता है। क्यों?
क्योंकि भीड़ में एक-एक आदमी की अपनी कोई रिस्पांसिबिलिटी, अपना कोई उत्तरदायित्व नहीं रह जाता। हम इतने लोग जाकर एक मकान में आग लगा दें। कोई मुझसे नहीं कह सकता कि तुमने मकान में आग लगाई! आपमें से कोई से कोई नहीं कह सकता। आप कहेंगे, भीड़ ने आग लगाई। मैं तो साथ था सिर्फ। आपके भीतर अंतःकरण को कोई चोट नहीं लगती। आप सिर्फ एक बड़ी भीड़ के हिस्से हैं! लेकिन आप अकेले खड़े हो जाएं उसी मकान के सामने, जिसमें आपने भीड़ के साथ जाकर आग लगाई थी और अकेले आग लगाने की कोशिश करें। आपके सारे प्राण इनकार करेंगे, आप पच्चीस बार सोचेंगे कि मैं क्या कर रहा हूं! यह करना ठीक है या नहीं?

पाप के लिए भीड़ बड़ी जरूरी है, लेकिन पुण्य के लिए बिल्कुल गैर-जरूरी है। अगर आपको प्रेम करना है, तो आप संगठन करते हैं पहले? भीड़ इकट्ठी करते हैं कि हम प्रेम करने जा रहे हैं, आइए, भीड़ इकट्ठी करें, फिर हम प्रेम करें? प्रेम अकेला आदमी करता है। आपको एक काव्य निर्मित करना है, तो आप भीड़ इकट्ठी करते हैं कि चलो हम कविता करें? काव्य अकेले का अनुभव है। जीवन के जो भी श्रेष्ठ अनुभव हैं, वे अकेले के अनुभव हैं। जीवन के जो भी निकृष्ट अनुभव हैं, वे भीड़ के अनुभव हैं। क्राउड, भीड़ दुनिया में बड़ी खतरनाक घटना है। लेकिन धर्म भीड़ के साथ जुड़ गया, इसलिए परमात्मा तक पहुंचना कठिन हो गया।
धार्मिक व्यक्ति को, जिसे प्रभु की सरलता की दिशा में जाना है, यह बात स्मरण रख लेनी चाहिए कि यह अकेले की यात्रा है।
एक फकीर था, इकहार्ट। वह कहा करता था, फ्लाइट ऑफ दि अलोन, टु दि अलोन। अकेले की उड़ान, अकेले की तरफ। यहां कहीं कोई किसी का साथी नहीं।
वह इकहार्ट एक जंगल में बैठा था एक झाड़ के नीचे--अकेले की उड़ान कर रहा होगा; अकेले में उड़ रहा होगा अकेले की तरफ--कि कुछ मित्र शहर से गए थे जंगल शिकार खेलने, वे वहां पहुंच गए। उन्होंने देखा कि बेचारा इकहार्ट! जो हमेशा भीड़ में रहते हैं, वे अकेले में रहने वाले आदमी को समझते हैं, बेचारा! असलियत उलटी है। जो अकेले में जीना जान जाता है, वह भीड़ को सोचता है, बेचारे! लेकिन उन मित्रों ने सोचा, बेचारा इकहार्ट अकेला बैठा है, ऊब गया होगा, घबड़ा गया होगा! जो लोग भीड़ में रहते हैं, वे सोचते हैं, अकेले में ऊब पैदा होती है। उन्हें पता ही नहीं है कि अकेले में आनंद पैदा होता है, भीड़ हमेशा उबाने वाली है। लेकिन अनुभव न होने से ख्याल में नहीं आता। वे इकहार्ट के पास गए। सोचा, चलो कंपनी दे दें उसे, थोड़ा साथ दे दें। वह आंख बंद किए बैठा है, वह न मालूम किस लोक में उड़ गए हैं उसके प्राण। उन्होंने उसे हिलाया और उसने आंख खोली, उन्होंने कहा कि अरे इकहार्ट! अकेले बैठे- बैठे ऊब गए होओगे। हमने सोचा कि चलो साथ दें!
इकहार्ट खूब हंसने लगा। उसने कहा, यह तो बहुत मजाक हो गई! मैं अकेला था
तो अकेला नहीं था, उससे मेरा मिलन हो रहा था। और तुमने आकर मेरी आंख क्या खोल दी, मुझे फिर अकेला कर दिया।
इकहार्ट ने कहा कि मैं अकेला था तब अकेला नहीं था, उससे मेरा मिलन हो रहा था। और तुमने साथ क्या दिया, मुझे फिर अकेला कर दिया। तुम अपने रास्ते पर जाओ!
एक बाहर का मिलन भी है और एक भीतर का भी। बाहर का सब मिलन भीड़ से मिलन है। भीतर का सब मिलन परमात्मा से है। ईश्वर कठिन हो गया, क्योंकि हमने भीड़ से धर्म को जोड़ दिया। धर्म एसेंशियली, मूलतः, सारभूत वैयक्तिक है। भीड़ से उसका कोई नाता नहीं--कोई भी, दूर का भी नाता नहीं।
इसलिए अगर आपको धार्मिक होना हो, तो यह अकेले की खोज है। इसमें आपके हिंदू-मुसलमान होने की कोई भी जरूरत नहीं है, कोई भी सवाल नहीं है। जिस दिन पृथ्वी पर धर्म होगा उस दिन धार्मिक लोग होंगे, अधार्मिक लोग होंगे, लेकिन हिंदू-मुसलमान नहीं हो सकते। इनकी कोई भी जरूरत नहीं है। ये बिल्कुल अनावश्यक हैं। ये बाधा बने हुए हैं।
दूसरी बात। जिन लोगों ने कठिन किया धर्म को, उन्होंने परमात्मा की तरफ से आंख हटा कर सब्स्टीट्यूट्स पर लगा दी, कुछ पूरक चीजों पर लगा दी। और सबसे बड़ी होशियारी की बात यह होती है कि अगर किसी चीज से आंख हटानी हो, तो किसी दूसरी चीज पर खड़ी कर दो। मुल्क अगर मर रहा हो भूखा, गरीबी बढ़ रही हो, संख्या बढ़ रही हो और दो-चार-दस साल में ऐसी महामारी आने को हो कि मुल्क को बचाना मुश्किल हो जाए, तो इस तरफ से आंख फेरनी हो तो गौ-हत्या आंदोलन चला दो, कि गऊ बचनी चाहिए! बस डायवर्शन हुआ दिमाग का लोगों का। उनके ख्याल से मिट गई असली समस्या और एक सूडो प्रॉब्लम, एक झूठी समस्या सामने खड़ी हो गई कि गऊ मारनी चाहिए कि नहीं मारनी चाहिए! जब कि आदमी मरने के करीब पहुंच रहा हो, तब एक नकली समस्या पर लोगों की नजर ले जाओ।
हमेशा दुनिया के शोषक यह कोशिश करते रहे हैं कि जिंदगी के असली मसले
से हटा लो लोगों की आंखें। ईश्वर से आंख हटाने के लिए क्या तरकीब काम में

लाई गई? मंदिर खड़े किए गए, मस्जिदें खड़ी की गईं। कहे कि ये भगवान के घर हैं, इनमें आओ।
मस्जिद भगवान का घर? मंदिर भगवान का घर? आदमी के बनाए हुए मकान भी भगवान के घर हो सकते हैं? तब तो आदमी भगवान से भी बड़ा हो गया। और पत्थर की मूर्तियां रख दी गई हैं और वह भगवान है! आदमी की बनाई गई मूर्तियां भगवान हो सकती हैं? तो छोड़ दो वह पुरानी बात कहनी कि वह स्रष्टा है, कहो कि हम स्रष्टा हैं और हमने भगवान को बनाया!
असली जीवन जहां था वहां से आंख हटा कर, नकली सवालों पर खड़ी कर दी गई कि यहां भगवान है। इन पर लड़ो! इनकी पूजा करो!
एक नीग्रो एक रात एक चर्च के दरवाजे को खटखटा रहा है। अंधेरी रात है,
और वह काला आदमी द्वार पर खड़ा है और दरवाजा ठोंक रहा है। फिर द्वार पादरी ने खोला। देखा कि काला आदमी खड़ा है, और वह चर्च तो सफेद लोगों का मंदिर था, वह चर्च तो सफेद चमड़ी वालों का था।
अब बड़े मजे की बात है, मंदिर में भी चमड़ी पहचानी जाती है कि कौन सी है-- हिंदू की है कि मुसलमान की है! शूद्र की है कि ब्राह्मण की है!
वह नीग्रो था और वह अंग्रेजों का मंदिर था। पादरी क्रोध से जल उठा होगा कि इस मूढ़ ने आधी रात नींद खराब की। वह हाथ मंदिर के दोनों दरवाजों पर रोक कर खड़ा हो गया और उसने कहा, कैसे आए हो? क्या चाहते हो?
उस काले आदमी ने कहा, और कुछ भी नहीं, आप रास्ते से हट जाएं और मुझे मंदिर में आने दें। मैं प्रभु के दर्शन करना चाहता हूं।
उस पादरी ने कहा, इतना आसान नहीं है प्रभु का दर्शन। जाओ पहले हृदय को शांत करो, मन को पवित्र करो, प्राणों को प्रार्थना से भरो। तब! तब प्रभु के दर्शन होते हैं!
और द्वार उसने बंद कर लिए। नीग्रो उतर कर चला गया। और उस पादरी ने सोचा कि न कभी यह शर्त पूरी कर सकेगा कि हृदय पवित्र करके आ जाए, मन शांत कर ले, न दुबारा आएगा, न मंदिर अपवित्र होगा इसके अपवित्र चरणों से!
अब बड़े मजे की बात है कि पवित्र भगवान का मंदिर, अपवित्र आदमी के घुसने से अपवित्र हो जाता है! होना तो उलटा चाहिए था कि अपवित्र आदमी पवित्र मंदिर में पहुंच जाए तो पवित्र हो जाए। लेकिन होता यह है कि खुद भगवान ही अपवित्र हो जाते हैं! यह अपवित्र आदमी बहुत मजबूत है, भगवान बहुत कमजोर और इंपोटेंट मालूम होते हैं। कोई बल नहीं मालूम होता उनमें। एक अपवित्र आदमी चला गया और भगवान ही अपवित्र हो गए, मंदिर ही अपवित्र हो गया! ऐसे कमजोर मंदिरों से धर्म कैसे आ सकेगा?
ऐसे मंदिर चाहिए, जहां अपवित्र घुसे और पवित्र होकर वापस लौट आए। उसको ही हम मंदिर कह सकते हैं। इसको कैसे मंदिर कह सकते हैं? लेकिन आदमी की बनाई हुई कोई चीज ऐसा मंदिर नहीं हो सकती। क्यों नहीं हो सकती? क्योंकि आदमी जो भी बनाएगा, वह आदमी से छोटा होगा, आदमी से बड़ा नहीं हो सकता। आदमी की बनाई कोई चीज आदमी से बड़ी नहीं हो सकती। असल में, सृष्टि कभी भी स्रष्टा से बड़ी न हुई है, न हो सकती है।
वह नीग्रो वापस लौट गया। पादरी निश्चिंत सो गया। फिर वर्ष बीत गए। दो- चार बार ख्याल भी आया कि वह आया नहीं! लेकिन नहीं वह नहीं आया, तो उसने सोचा कि ठीक है, मेरा तर्क काम कर गया। लेकिन एक साल बीता था कि वह आदमी आ गया। वर्ष का पहला दिन है, पहली तारीख है, वह आदमी सुबह-सुबह चला आ रहा है। पुरोहित ने देखा और वह घबड़ा गया है। घबड़ाने का यह भी कारण है कि वह चर्च की तरफ आ ही नहीं रहा है, उसके आने से लग रहा है कि शर्त पूरी हो गई। उसकी आंखें ऐसी शांत मालूम हो रही हैं, जैसे कोई झील हो। उसके चेहरे पर ऐसी रोशनी है, दीप्ति, ऐसी किरणें मालूम हो रही हैं, जैसे कोई ज्योति हो। उसके चलने में ऐसा लग रहा है, जैसे कोई आदमी नहीं, कोई देवता चलता हो।
वह पुरोहित घबड़ा आया। शायद शर्त पूरी हो गई! वह भागा कि दरवाजा बंद करे। लेकिन दरवाजा बंद करना व्यर्थ था, उस आदमी ने तो चर्च की तरफ आंख उठा कर भी नहीं देखा, वह तो आगे बढ़ गया। तो वह पुरोहित हैरान हो गया। शर्त भी पूरी हो गई मालूम होती है, फिर आया क्यों नहीं! तो वह गया, दौड़ा, जाकर उस आदमी को रोका और कहा, मेरे दोस्त, आप आए नहीं?

वह नीग्रो खूब हंसने लगा और उसने कहा, बड़ी मजाक हो गई। मैं तो आने को था, और एक वर्ष इसी मंदिर में आने की कामना में सब कुछ छोड़ कर उसका ही स्मरण किया, उसके लिए ही रोया, उसके लिए ही जागा और सोया। सपने में वह था, जागने में वह था। मन को पवित्र करने की सब कोशिश की। और कल धीरे-धीरे ऐसा लग रहा था कि आ गई वह घड़ी, मन शांत हो गया है, शायद अब मैं जा सकूंगा। रात जब सोया था तो मन बिल्कुल निर्विकार था और मैं खुश था कि सुबह उठते ही वर्ष के पहले दिन मंदिर में प्रवेश कर जाऊंगा। लेकिन रात सब गड़बड़ हो गया। वे भगवान मुझे रात दिखाई पड़े सपने में और कहने लगे, तू चाहता क्या है? किसलिए प्रार्थनाएं कर रहा है? किसलिए साधना कर रहा है? किसलिए आंसू बहा रहा है? तू चाहता क्या है? बोल, मैं पूरा कर दूं।
तो मैंने उनसे कहा, कुछ और नहीं चाहता। वह जो गांव का मंदिर है, उसमें प्रवेश चाहता हूं। वे भगवान एकदम उदास हो गए और कहने लगे, इस बात को छोड़ कर तू और कुछ भी वरदान मांग ले। तो मैं बहुत कहने लगा, इतनी छोटी सी बात आप पूरी नहीं करेंगे! वे कहने लगे, इसको छोड़ दे, कुछ और मांग ले। मैंने बार-बार कहा तो वे कहने लगे, तू नहीं मानता तो मैं बताए देता हूं। दस साल से मैं खुद ही कोशिश कर रहा हूं उस मंदिर में घुसने की। वह पादरी मुझको ही नहीं घुसने देता तो तुझे कैसे घुसने देगा? यह मेरे वश के बाहर है। मैं तुझे उस मंदिर में नहीं ले जा सकता हूं।
तो उस आदमी ने कहा, इसलिए मैं नहीं आया। जहां भगवान को ही प्रवेश नहीं, वहां मुझे क्या प्रवेश हो सकता है!
यह पता नहीं कहानी कहां तक सच है या कहां तक झूठ, लेकिन इतिहास यही कहता है कि यह कहानी सच होनी चाहिए। इतिहास तो यही कहता है कि आज तक किसी मंदिर में भगवान को प्रवेश नहीं मिल सका, न मिल सकेगा।
हम तो भगवान में प्रविष्ट हो सकते हैं। हम तो उस तक जा सकते हैं। बूंद सागर में जाकर गिर सकती है, लेकिन सागर बूंद तक कैसे आए? सागर कैसे बूंद को खोजे, कैसे बूंद तक आए? हम अपनी बूंद लिए बैठे हैं और चिल्ला रहे हैं कि सागर बूंद में आ जाए। एक ही रास्ता है कि बूंद सागर में चली जाए।
आदमी परमात्मा में प्रवेश पा सकता है। बूंद है, सागर में डूब सकती है। लेकिन आदमी अपनी मूर्तियां, अपनी मस्जिद, अपने मंदिर बना कर बैठा है और कह रहा है कि भगवान, यहां आ! बूंद में हम सागर को बुला रहे हैं! तो असफल हो गए हैं, भगवान नहीं आया, तो हमें लग रहा है कि बहुत कठिनाई हो गई है, भगवान पाना बहुत कठिन है।
भगवान को पाना कठिन नहीं है। मूढ़तापूर्ण काम कर रहे हैं, इसलिए बात कठिन हो गई है। बूंद में सागर को बुला रहे हैं और चिल्ला रहे हैं और रो रहे हैं और कह रहे हैं, भगवान को पाना बहुत कठिन है। भगवान को पाना उतना ही सरल है कि बूंद सागर में गिर जाए। आदमी की बनाई हुई चीजों में भगवान को लाना कठिन है, असंभव है। क्योंकि आदमी जो बनाएगा, वह इतना छोटा होगा कि उस विराट को, उस अनंत को उसमें कैसे लाया जा सकता है! कोई मंदिर इतना बड़ा नहीं है, कोई मस्जिद इतनी बड़ी नहीं है, कोई शास्त्र इतना बड़ा नहीं है, कोई संप्रदाय इतना बड़ा नहीं है कि अनंत को, अनादि को समा ले अपने में।
लेकिन हम सबका दावा यही है कि हमारी किताब में भगवान है! हमारे मंदिर में भगवान है! हमारी मूर्ति में भगवान है! इन दावेदारों ने धर्म की हत्या कर दी है। कोई दावा नहीं हो सकता। अगर वह है तो सब जगह है और अगर नहीं है तो कहीं भी नहीं है। अगर वह है, तो फूल में है, पत्ते में है, पत्थर में है, शराबघर में है, मंदिर में है, वेश्यालय में है--सब जगह है, अगर वह है। और जब भी कोई देखने वाली आंख पैदा होती है, तो वह सब जगह दिखाई पड़ जाता है। और अगर वह नहीं है, तो फिर आपके मंदिर में भी नहीं है, और मस्जिद में भी नहीं है, और आपकी मूर्ति में भी नहीं है, और कहीं भी नहीं है। क्योंकि जिस आदमी को वृक्ष में नहीं दिखता, तारों में नहीं दिखता, आकाश में नहीं दिखता, फूलों में नहीं दिखता, लोगों की आंखों में नहीं दिखता, वह आदमी मंदिर की तरफ चला जा रहा है! और वह कह रहा है, मैं भगवान के मंदिर जा रहा हूं! और भगवान चारों तरफ है। और जिसको यहां कहीं भी नहीं दिखता, उसको मंदिर में दिख सकेगा?

असंभव है। और जिसको दिखाई पड़ जाएगा यहां, उसको कहीं मंदिर में जाने की कोई जगह रह गई, गुंजाइश रह गई? वह तो फिर जहां है वहीं मंदिर है।
धार्मिक आदमी वह नहीं है जो मंदिर जाता है। धार्मिक आदमी वह है जो जहां होता है वहीं मंदिर होता है। धार्मिक आदमी जहां जीता है वहीं मंदिर है। उठता है तो मंदिर में, चलता है तो मंदिर में, जीता है तो मंदिर में, मरता है तो मंदिर में। क्योंकि वह सब तरफ है, इसलिए सभी कुछ मंदिर है। सारा संसार उसका मंदिर है।
लेकिन नहीं, धर्मगुरुओं ने छोटे-छोटे मंदिर बना रखे हैं--एक प्रतीक, सब्स्टीट्यूट। और उन्होंने उस तरफ हमारी आंखें लगा दी हैं कि यहां खोजो, यहां खोजो। अब हम रेत से तेल निकाल रहे हैं हजारों साल से! वह रेत से तेल निकलता नहीं। अब हम कहने लगे कि नहीं, तेल मिलना ही असंभव है!
वह तिल से बहुत जल्दी से निकल आता है और रेत से कभी नहीं निकलता। लेकिन हम यह नहीं समझ पा रहे हैं कि कठिनाई उसके निकलने की नहीं है, कठिनाई हम रेत को लिए बैठे हैं, इसकी है।
मंदिरों और मस्जिदों को लिए जब तक आदमी बैठा है, तब तक परमात्मा पाना असंभव है। वह है जीवन में, वह है सब में, वह है समष्टि में। उस तक कैसे जाया जा सकता है, इन आने वाली चर्चाओं में मैं उसी दिशा में आपसे कुछ बातें करूंगा। कोई नहीं जानता, बात सुनते-सुनते भी कुछ हो सकता है। कोई नहीं जानता, सत्य की एक किरण भी ख्याल में आ जाए तो जिंदगी का अंधेरा मिट जाता है। कोई नहीं जानता कि किस क्षण में कौन सी झलक प्राणों को पकड़ ले। और इन तीन दिनों में वह जो मैं कहूंगा, अगर उसे पूरा ठीक-ठीक समझना हो, तो एक दूसरी बात जो मैं अभी आपको कहता हूं, उसे थोड़ा समझना जरूरी होगा।
जैसे, मैंने कहा, कोई नहीं जानता किस क्षण में वह पकड़ ले और बुला ले, उसका आमंत्रण आ जाए और आप खिंचे चले जाएं, और आपका प्राण उठ जाए और मिल जाए, कोई मिलन हो जाए। लेकिन उसके लिए रिसेप्टिविटी, उसके लिए ग्राहकता भीतर चाहिए, कि हमारी तैयारी हो। बाहर सूरज निकला हुआ है, हम अपने दरवाजे बंद किए घर के भीतर बैठे हुए हैं। तो सूरज इतनी हिमाकत नहीं करेगा, इतना अशिष्ट नहीं है कि आकर दरवाजा पीटने लगे और कहे, दरवाजा खोलो, मुझे भीतर आने दो! सूरज बाहर ही खड़ा रहेगा। सूरज की किरणें दरवाजे पर ही पड़ती रहेंगी। प्रतीक्षा करता रहेगा कि खोलोगे कभी द्वार तो हम भीतर आ जाएंगे। नहीं खोलोगे तो बाहर रुके रहेंगे। ऐसा अशिष्ट अतिथि नहीं है कि दरवाजा पीटने लगे और कहे कि दरवाजा खोलो, हम आ गए हैं, हम ठहरेंगे घर में!
हम दरवाजा बंद किए बैठे हैं तो सूरज बाहर रुका रहता है--प्रतीक्षा करता है, प्रतीक्षा करता है, प्रतीक्षा करता है। हम द्वार खोलते हैं, उसकी किरणें भीतर भर आती हैं, अंधेरा विलीन हो जाता है।
ठीक ऐसे ही, हमारे मन के द्वार खुले हों तो परमात्मा हमेशा द्वार पर खड़ा है। लेकिन अशिष्ट नहीं है कि दरवाजा पीटने लगे। जबरदस्ती आपके घर में मेहमान नहीं बनेगा। लेकिन द्वार खुले हों, तो किरणें भीतर आ जाती हैं और रोशनी आ जाती है, अंधेरा मिट जाता है।
द्वार खुले हों मन के--ओपनिंग--इस द्वार खुले होने को मैं ध्यान कहता हूं। ध्यान से मेरा अर्थ है--मेडिटेशन से, ध्यान से--द्वार का खुला होना, मन का खुला होना। कभी वह आए, तो बंद दरवाजे न मिलें, कहीं वह लौट न जाए!
तो इन तीन दिनों में हम कुछ बात करेंगे, कुछ समझने की कोशिश करेंगे और साथ ही मन के द्वार खोलने की कोशिश करेंगे कि कहीं वह आए, तो घर से वापस न लौट जाए। इसे मैं ध्यान कहता हूं।
ध्यान की छोटी सी प्रक्रिया आपको अभी समझाऊंगा। दस मिनट के लिए हम यहां ध्यान में बैठेंगे और फिर विदा होंगे। बड़ी सरल--जैसा कि मेरा कहना है कि प्रभु को पाना बहुत ही सरल है, एकदम सरल है। लेकिन उन्हीं के लिए जो सरल होने को तैयार हैं, तो इसी वक्त हो सकती है बात, कल पर ठहरने की भी कोई जरूरत नहीं है। सरल हो सकते हैं जो... ।
कैसे सरल हो सकते हैं?
अभी हम एक छोटा सा प्रयोग करेंगे--सरल होने का, द्वार खोलने का, मन को शांत छोड़ देने का, मौन छोड़ देने का। कुछ भी नहीं करना है। रात बोल रही है,

झींगुर बोल रहे हैं, कोई पक्षी आवाज करेगा, हवा बहेगी, कोई वृक्ष हिलेगा, तो मौन, चुपचाप बैठ कर सिर्फ सुनना है। यह जो चारों तरफ विराट की ध्वनि हो रही है, यह जो अनहद नाद हो रहा है चारों ओर, इसे चुपचाप सुनना है। इसी सुनने से, इसी लिसनिंग से--शायद इसी झींगुर की आवाज में, उसकी आवाज की झलक मिलनी शुरू हो जाए। सिर्फ सुनना है, और कुछ भी नहीं करना है। और आप हैरान हो जाएंगे, शायद आपको ख्याल में भी नहीं होगा कि मात्र सुनने से मन इतना शांत हो जाता है जिसकी आप कल्पना नहीं कर सकते हैं!
तो अभी हम यह प्रयोग करेंगे कि हम दस मिनट के लिए आंख बंद करके बैठेंगे मौन। प्रकाश बुझा दिया जाएगा। घनघोर अंधेरे में आप अकेले रह जाएंगे। भीड़ मिट जाएगी। फिर कोई नहीं है, आप अकेले हैं। और फिर यह रात का सन्नाटा है, और ये रात की आवाजें हैं, इनको चुपचाप सुनते जाना है, चुपचाप सुनते जाना है। मन को बिल्कुल खुला छोड़ देना है कि झींगुर की आवाज गूंजे मन में--गूंजे, निकल जाए। जैसे किसी खाली मकान में कोई आवाज गूंजती है, निकल जाती है। मकान फिर खाली का खाली रह जाता है। फिर कोई आवाज आती है, गूंजती है, निकल जाती है, मकान फिर खाली का खाली रह जाता है। तो इस रात की आवाज को चुपचाप सुनना है।
इस सुनने में कई बातें हो सकती हैं, वह मैं आपको कह दूं; और हों तो उन्हें रोकना नहीं है। जैसे ही मन शांत होता है, कई चीजें होनी शुरू होती हैं। मन जैसे ही शांत होगा, मन के न मालूम कितने दबे भाव बहने शुरू हो जाते हैं। उनको रोकते हैं, तो मन फिर बंद हो जाता है। यह हो सकता है, यह रोज होता है--कि आप जैसे ही शांत होंगे, यह हो सकता है कि आंसू आंख से बहने शुरू हो जाएं। तो उन्हें जबरदस्ती रोकें न। कोई भाव मन में पकड़ेगा, ओवरफ्लो होगा, आंख आंसुओं से भर जाएगी, बह जाएगी। कुछ भी हो सकती है भाव-दशा। हर व्यक्ति की अलग-अलग हो सकती है। तो क्या भाव-दशा होगी, उसे रेसिस्ट नहीं करना है, जरा भी रोकना नहीं है। जो भी हो, हो जाने दें।
हम सब इतने फासले पर बैठेंगे, क्योंकि कुछ लोग हो सकता है इतने शांत
हो जाएं और उनका मन गिर जाने का हो, लेट जाने का हो, वे लेट जाएं। भीतर से जैसा लगे, वैसा ही हो जाने देना है। बहुत से लोग गिर जाएंगे, तो अपने को रोक नहीं लेना है जबरदस्ती। अगर गिरने लगे शरीर, तो उसे छोड़ देना मुर्दे की तरह कि वह गिर जाए तो गिर जाए। आगे झुक जाए, पीछे गिर जाए, जहां जाना हो चला जाए। जो भी होता हो, उसे होने देना है चुपचाप। दस मिनट के लिए एक ही काम करते रहना है कि चुपचाप सुनते रहना है। फिर जो भी हो, उसे हो जाने देना है। उसे बिल्कुल नहीं रोकना है। तो आप बच्चे की जैसी सरलता को उपलब्ध होंगे। आप रोक नहीं रहे हैं, आप होने दे रहे हैं।
दो बातेंः एक तो झाड़ में लगा हुआ पत्ता है। हवा आती है तो वह हिलता है, लेकिन मजबूरी से हिलता है। उसकी इच्छा हिलने की नहीं होती। वह अपनी शाखा को जोर से पकड़े हुए है। डर है उसे, कहीं टूट न जाए! हवा चली जाती है, वह फिर अपनी जगह थिर हो जाता है। एक सूखा हुआ पत्ता है। हवा आती है, वह उड़ जाता है। वह किसी को पकड़े हुए नहीं है, उसकी कोई क्लिंगिंग नहीं है; वह उड़ जाता है। हवा पूरब में जाती है, पत्ता पूरब में चला जाता है। हवा पश्चिम जाती है, पत्ता पश्चिम चला जाता है। हवा बंद हो जाती है, पत्ता जमीन पर गिर जाता है।
हवा फिर आ जाती है, पत्ता आकाश में उठ जाता है। पत्ता कुछ भी नहीं कहता, पत्ता अपने को छोड़ दिया है। सूखा पत्ता उड़ता रहता है।
ठीक सूखे पत्ते की तरह हो जाना है ध्यान में। शरीर गिर जाए, गिर जाए।
आंख से आंसू बहने लगें, बहने लगें। तो चुपचाप आंख बंद कर लें और थोड़े फासले पर बैठ जाएं।

माटी कहै कुम्हार सूं
दूसरा प्रवचन

अहंकार है दूरी

मेरे प्रिय आत्मन्!
कल रात्रि, प्रभु-उपलब्धि सरल है, इस संबंध में थोड़ी सी बातें मैंने आपसे कहीं। मनुष्य को परमात्मा से रोक लेने वाली धारणाओं में पहली धारणा यही रही है कि परमात्मा को पाना कठिन है, बहुत कठिन है। मनुष्य के चित्त पर यह दीवाल की भांति खड़ी हो गई--यह धारणा। इस धारणा ने ही जीवन की सरिता को प्रभु के सागर की ओर बहने से रोक लिया। लेकिन यह अकेली ही धारणा नहीं, इस भांति की दीवाल बन जाने में और धारणाएं भी हैं। आज दूसरी धारणा पर आपसे मैं बात करूंगा।
दूसरी बात, दूसरा सूत्र, दूसरी कठिनाई, प्रभु दूर है, इस धारणा से पैदा हुई है। परमात्मा बहुत दूर है--किसी पहाड़ पर, आकाश में, आकाश के पार, मृत्यु के बाद, कोई निराकार, कोई अरूप--कोई अनंत दूरी है हमारे और उसके बीच! मनुष्य की सामर्थ्य बहुत छोटी और प्रभु की दूरी अनंत! कैसे इसे पार किया जा सकेगा? हमारे पैर बहुत छोटे। एक कदम से ज्यादा हम एक बार में चल भी नहीं सकते। एक कदम पार कर पाते हैं, इतनी हमारी सामर्थ्य है--और अनंत है दूरी। यह दूरी कैसे पूरी होगी? कैसे पार होगी?
नहीं, असंभव है, यह दूरी पार नहीं हो सकती। तो जो यात्रा पूरी नहीं हो सकती, उचित है कि उसे छोड़ दें और जो यात्रा पूरी हो सकती है, उसे पूरी करें। धन पाना संभव है। धन और मनुष्य की दूरी बहुत ज्यादा नहीं। पृथ्वी जीतनी आसान है। पृथ्वी और मनुष्य की दूरी अनंत नहीं। यश पाना आसान है, पद पाने आसान हैं। चाहे दिल्ली कितनी ही दूर हो, फिर भी बहुत दूर नहीं, यात्रा की जा सकती है। लेकिन परमात्मा की दूरी बहुत है। उसे पार करना असंभव है।
यह इंपासिबिलिटी का, यह असंभावना का भाव मनुष्य के मन में गहरे बैठ गया है। यह भाव न टूटे, यह दृष्टि न टूटे, तो कोई गति नहीं हो सकती है।
और मैं आपसे कहना चाहता हूं कि जिसे हमने दूर समझा है, उससे ज्यादा निकट, उससे ज्यादा पास, उससे ज्यादा पड़ोसी और कोई भी नहीं।
एक छोटी कहानी से मैं समझाने की कोशिश करूं।
एक छोटा सा गांव था। और उस गांव में एक गरीब किसान था। वह गरीब तो था, लेकिन दुखी नहीं था। गरीब होने से ही दुख का कोई संबंध नहीं है। क्योंकि अमीर भी दुखी देखे जाते हैं। वह गरीब था, लेकिन सुखी था। सुखी इसलिए नहीं था कि उसके पास बहुत कुछ था। सुखी इसलिए था कि जो भी उसके पास था, उसमें वह संतुष्ट था। सुख का, आपके पास क्या है, इससे कोई नाता नहीं है। आप कितने से संतुष्ट हैं, इससे संबंध है। सुख संतोष का दूसरा नाम है। दरिद्र था, लेकिन सुखी था, क्योंकि संतुष्ट था।
लेकिन एक रात उसका सारा सुख नष्ट हो गया, क्योंकि उसका सारा संतोष नष्ट हो गया। वह पहली दफा उसे पता चला कि मैं बहुत दरिद्र हूं।
एक फकीर उसके घर रात मेहमान हुआ और उस फकीर ने कहा कि पागल, तू कब तक मिट्टी के साथ सिर फोड़ता रहेगा? मैं सारी पृथ्वी घूमा हूं और मैं तुझे कहता हूं कि जमीन पर ऐसी खदानें हैं जहां हीरे-जवाहरात मिल सकते हैं। जितनी मेहनत तू खेत से अन्न उपजाने में कर रहा है, इतनी मेहनत करके तो तू अरबपति हो सकता है।
फकीर तो सो गया, लेकिन वह किसान फिर नहीं सो सका। क्योंकि जिसकी महत्वाकांक्षा, एंबीशन जग जाती है, उसकी नींद नष्ट हो जाती है। दुनिया से नींद इसीलिए तो नष्ट होती जाती है, क्योंकि आदमी की महत्वाकांक्षा तीव्र होती चली जाती है। वह रात भर करवट बदलता रहा। यह पहला मौका था कि नहीं सो सका।
सुबह उठा तो उसने पाया कि उससे ज्यादा दरिद्र पृथ्वी पर कोई भी नहीं है।
हमारी दरिद्रता उसी अनुपात में बड़ी हो जाती है, जिस अनुपात में धन को पाने की आकांक्षा बड़ी हो जाती है। कल भी वह ऐसा ही था, यही झोपड़ा था, यही

जमीन थी, लेकिन कल तक उसे पता नहीं था कि मैं गरीब हूं। उसने उसी दिन जमीन बेच दी और मकान बेच दिया और पैसे लेकर निकल पड़ा हीरों की खदान की खोज में।
गांव-गांव भटका, हीरे की खदान तो नहीं मिली, पास के पैसे जरूर चुक गए। और बारह वर्षों बाद भीख मांगता हुआ एक बड़ी नगरी के राजपथ पर वह गिर कर मर गया।
कुछ मिला तो नहीं, जो पास था वह भी खो गया।
बारह वर्ष बाद वह फकीर फिर उस गांव से गुजरा जिसमें वह किसान रहता था।
वह उसके झोपड़े पर गया, लेकिन अब वहां रहने वाले लोग बदल गए थे। वह किसान तो अपनी जमीन और झोपड़ा किसी को बेच कर जा चुका था। उस फकीर ने पूछा कि मैं बारह वर्ष पहले आया था। एक किसान यहां था, वह कहां है?
उस मकान के नये मालिक ने कहा कि आप जिस सुबह गए, उसी दिन उसने यह जमीन
और मकान बेच दिया और वह हीरों की खोज में निकल गया। और अभी-अभी खबर आई है कि हीरे तो नहीं मिले, लेकिन वह भिखमंगा हो गया।
असल में, जो भी हीरों की खोज में निकलता है, वह भिखमंगा हो ही जाता है।
वह किसी राजधानी में मर गया है सड़क पर। कफन भी लोगों को जुटाना पड़ा है भीख मांग कर उसके लिए।
वह फकीर बैठ कर यह कहानी सुन रहा था, तभी उस नये किसान का बेटा एक पत्थर लिए हुए बाहर निकला। छोटा बच्चा उस पत्थर से खेल रहा है।
उस फकीर ने कहा, यह पत्थर कहां मिला है? यह तो हीरा है!
उस किसान ने कहा, नहीं, हीरा नहीं होगा। ऐसे पत्थर तो मेरे खेत पर बहुत हैं, जो मैंने उस आदमी से खरीदा था जो हीरों की खोज में निकल गया था।
पर वह संन्यासी जानता था कि हीरा क्या है। उसने कहा कि मानो, यह हीरा है। तुम्हारा खेत कहां है? मुझे ले चलो।
वे खेत पर गए। उस खेत में एक छोटा सा नाला बहता था और सफेद रेत थी और उस रेत में सांझ तक खोजते-खोजते उन्होंने कई टुकड़े इकट्ठे कर लिए, जिनकी कीमत करोड़ों हो सकती थी।
शायद आपने यह घटना न सुनी हो। उस किसान का नाम अली हफीज था और जिस गांव
का वह रहने वाला था उस गांव का नाम गोलकुंडा है। उसी अली हफीज की जमीन पर कोहिनूर हीरा मिला। कोहिनूर हीरा उसी अली हफीज की जमीन पर मिला बाद में, उसी किसान की जमीन पर, जो जमीन को बेच कर हीरों की खोज में दूर निकल गया था। यह कहानी मैं आपसे क्यों कहना चाहता हूं? यह मैं इसलिए कहना चाहता हूं
कि परमात्मा की खोज में जो आदमी कहीं दूर निकल जाता है, वह उसी किसान की तरह भटक जाता है। परमात्मा वहीं है जहां आप हैं, उसी जमीन पर जहां आप खड़े हैं। दूर नहीं है जीवन की संपदा, बहुत निकट है--एकदम पास; हाथ बढ़ाएं, और पा लें; आंख खोलें, और देख लें; सुनने को तैयार हो जाएं, और जीवन संगीत सुनाई पड़ने लगे; इतनी ही निकट है वह संपदा प्रभु की।
झूठे हैं वे लोग जो कहते हैं वह दूर है। क्योंकि अगर वह दूर है, तो पास
जो है वह कौन है? अगर प्रभु दूर है, तो फिर पास जो है वह कौन है? वह क्या है? यह वृक्ष क्या है? ये पत्ते क्या हैं? ये हवाएं क्या हैं? ये बोलते हुए पक्षी क्या हैं? ये बैठे हुए इतने लोग क्या हैं? ये आंखें कौन हैं? यह कौन इनमें जीवंत होकर बोल रहा है, और जाग रहा है, और जी रहा है? अगर प्रभु दूर है, तो फिर पास कौन है?
नहीं, जो भी है, सभी परमात्मा है। तो फिर जो निकट है, वह भी वही है। और
जो निकट को ही जानने में असमर्थ है, क्या वह दूर को जानने में समर्थ हो सकेगा? जो पास को ही पहचानने में असमर्थ है, क्या वह दूर को पहचान सकेगा? जो हाथ के पास ही जिसे छू सकता था, नहीं छू रहा है, क्या वह परलोक की यात्राएं करेगा? जो पड़ोसी में भी नहीं देख सका है, वह परलोक में कैसे देख सकेगा? निकट को देखने के लिए जो अंधा है, वह दूर को देखने में समर्थ नहीं हो सकता है। और जो निकट को जान लेता है, उसके लिए कोई दूर नहीं रह जाता। क्योंकि तब उसे दिखाई पड़ता हैः जो पास है, उसका ही विस्तार दूर तक हो गया है।
सागर को हम सागर के किनारे पहुंच जाते हैं और सागर के जल को हाथों में
ले लेते हैं। तो जो जल निकट है, वही दूर-दूर तक जो फैला है--वही--वही दूर भी फैला हुआ है। सूरज की जो किरण आज सुबह आपके ऊपर पड़ रही है, वह सूरज की किरण

उस सूरज से जुड़ी है, जो यहां से दस करा.ेड मील दूर है। इस किरण को जो जान लेगा, उसने सूरज का सारा राज जान लिया। एक किरण को जो समझ लेता है, वह जीवन के सारे प्रकाश के रहस्य को समझ गया। जिसने पानी की एक बूंद के राज को जान लिया, उसने सारे जगत के सारे समुद्रों के राज को जान लिया। जिसने जीवन की एक कणिका भी पहचान ली, उसने जीवन का सब कुछ पहचान लिया। निकटतम जो है, उसको जानने से ही दूर की यात्रा शुरू होती है। फिर दूर कुछ भी नहीं रह जाता है। लेकिन हमें तो यही कहा गया है कि प्रभु बहुत दूर है। इस दूरी की धारणा
ने हमारे प्राणों की सारी जागती हुई ऊर्जा को शिथिल कर दिया है। और क्या आपको पता है, जो चीज दूर होती है, उसे हम पाने का ख्याल तो छोड़ ही देते हैं, हममें से कुछ जो अपनी इस असमर्थता को स्वीकार नहीं करना चाहते, वे वही दलील देने लगते हैं जो उस लोमड़ी ने दी थी जो अंगूरों के एक लटके हुए गुच्छे के पास पहुंच गई थी। अंगूर सामने दिखाई पड़ रहे थे, लेकिन लोमड़ी की छलांग छोटी थी। कूदी, उचकी, लेकिन अंगूर के गुच्छों तक नहीं पहुंच सकी। हार गई, थक गई, फिर वापस लौट पड़ी, और रास्ते में जो भी मिला उससे कहती गईः व्यर्थ कोशिश मत करना, वे अंगूर खट्टे हैं! अंगूर तक नहीं पहुंच सकी, इस कमजोरी को स्वीकार नहीं करना चाहा उसने, इस असमर्थता को स्वीकार नहीं करना चाहा। उसने अंगूरों को ही खट्टा कह दिया।
यह जो दुनिया में इतनी नास्तिकता पैदा हुई है, यह परमात्मा की दूरी के कारण, परमात्मा के खट्टेपन के कारण पैदा हो गई है। नास्तिक कहता है, खट्टी हैं ये बातें परमात्मा की। कुछ सार नहीं, कुछ पाने जैसी नहीं, कुछ है नहीं इन बातों में। छलांग छोटी पड़ जाती है, इतनी दूरी को पूरा नहीं कर पाते हैं हम। फिर हम क्या करें? फिर हम यह कह देते हैं, वह चीज ही पाने जैसी नहीं है, वह है ही नहीं। परमात्मा कहीं भी नहीं है। छोड़ो यह ख्याल।
सच है। इतने दूर जो है, वह न होने के बराबर ही हो जाता है। नास्तिक गलत नहीं कहते हैं, ठीक ही कहते हैं। जो इतनी अनंत दूरी पर है, उसका होना और न होना बराबर है। अगर वह निकट है जीवन के, तो ही उसके होने का कोई अर्थ है। अगर वह पास है, प्रति घड़ी, प्रति श्वास के निकट है, तो ही उसके होने का कोई अर्थ है। इतने फासले पर होना और न होना बराबर है। फिर मनुष्य ने जब यह देखा कि इतना दूर है और हम नहीं पा सकते, तो यह बिल्कुल स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी मनुष्य के अहंकार की कि उसने कहा कि खट्टे हैं ये अंगूर, पाने जैसे ही नहीं हैं। इधर तीन-चार सौ वर्षों से तो ईश्वर की हमने बात ही बंद कर दी है। वह बात ही समाप्त होती जा रही है।
मैं कहना चाहता हूं आपसेः वह दूर नहीं है और न ही अंगूर खट्टे हैं। न
ही अंगूर खट्टे हैं, न ही वह दूर है। वह बहुत निकट है और अंगूर बहुत मीठे हैं। बहुत निकट है, इतने निकट कि छोटी से छोटी छलांग भी उस तक पहुंच सकती है।
लेकिन इस बात को थोड़ा ठीक से समझ लें। दूरी की फिलासफी को पहले ठीक से समझ लें, तो उसकी निकटता की बात भी ख्याल में आ सकती है। जिन्होंने दूर कहा, उन्होंने उसे कैसे दूर बना दिया? किस तरकीब से वह दूर हो गया? जो निकट है, उसे दूर करने में कौन से आर्ग्युमेंट, कौन सी दलील, कौन सा तर्क काम कर गया?
पहली बातः परमात्मा को लोगों ने शब्द बना दिया, अनुभव नहीं। परमात्मा
को शास्त्र बना दिया, अनुभूति नहीं। परमात्मा को एक जीवंत अनुभव से हटा कर, एक शाब्दिक सिद्धांतों का जाल बना दिया। सिद्धांतों और शब्दों से परमात्मा बहुत दूर है।
जैसे एक आदमी तैरने के संबंध में लिखी हुई सारी किताबें पढ़ डाले। और अगर तैरने पर भाषण करना हो तो भाषण कर सके, अगर तैरने पर किताब लिखनी हो तो किताब लिख सके, अगर शोध करनी हो तो पी एचड़ी. पा ले। लेकिन उस आदमी को अगर पानी में आप धक्का देने लगें, तो हाथ-पैर जोड़ने लगे और कहे कि मुझे पानी में मत धकाइए! मैं मर जाऊंगा! उसने तैरने के संबंध में सब कुछ जान लिया, सिर्फ तैरने को छोड़ कर। तैरने के संबंध में जानना एक बात है और तैरना जानना बिल्कुल दूसरी बात है।

प्रेम के संबंध में सारी किताबें पढ़ लेना एक बात है, और प्रेम के अनुभव से गुजर जाना बिल्कुल दूसरी बात है। परमात्मा के संबंध में सारे उपनिषद, गीता, कुरान और बाइबिल कंठस्थ कर लेना एक बात है, और परमात्मा में से गुजर जाना बिल्कुल दूसरी बात है।
शब्दों के भ्रम में, इस ख्याल ने कि हम शब्दों को सीख गए तो हम परमात्मा को जान गए, अनंत दूरी पैदा कर दी मनुष्य और परमात्मा के बीच। शब्दों से परमात्मा को जानने का कोई भी संबंध नहीं है। शास्त्र कंठस्थ कर लेने से एक भी कदम नहीं उठता उस दिशा में; बल्कि उठते हुए कदम रुक जाते हैं, बल्कि शुरू होने वाली यात्रा शुरू ही नहीं हो पाती है, क्योंकि हम इस भ्रम में पड़ जाते हैं कि हमने शब्द जान लिए तो हमने प्रभु जान लिया।
एक छोटा सा बच्चा अपने घर के बाहर बगिया में खेलता था। तो कोयल बोलती
थी, सुबह की हवाएं, खिले हुए फूल, सूरज की बरसती हुई रोशनी! वह नाचने लगा खुशी में। उसकी मां बीमार पड़ी है। उसे ख्याल आयाः मां तो बाहर नहीं आ सकती है इस बरसती हुई चांदनी को देखने। मैं एक छोटी सी पेटी में थोड़ी सी रोशनी, थोड़ी सी फूलों की सुगंध, थोड़ी सी ताजी हवाएं बंद करके क्यों न मां के पास भीतर के कमरे में ले जाऊं!
वह पेटी ले आया बाहर। उसने सूरज की किरणें उस पेटी में भर लीं। ताजी हवाएं, फूलों की सुगंध, कोयल की आवाज, सब पेटी में बंद कर लीं। फिर नाचता हुआ पेटी लेकर भीतर गया, उस अंधेरे कमरे में जहां उसकी मां सोई है बीमार, अस्वस्थ। और उसने अपनी मां को जाकर कहा, देखो, मैं क्या ले आया हूं! सूरज की किरणें लाया हूं। कोयल की आवाज लाया हूं। सुबह की ताजी हवाएं लाया हूं। फूलों की सुगंध लाया हूं। देखो, मैं क्या लाया हूं!
और उसने पेटी खोली, लेकिन वह घबड़ाया हुआ खड़ा रह गया। वह पेटी तो खाली थी। उसमें कुछ भी न था। न वहां से कोयल की आवाज आई, न वहां से सूरज की किरणें आईं, न वहां फूलों की सुगंध थी, न ठंडी हवाएं थीं। वह पेटी तो खाली और अंधेरी थी। वह बच्चा रोने लगा। उसकी मां ने कहा, मत रोओ। तुझे पता नहीं है, सूरज की किरणें पेटियों में नहीं भरी जा सकती हैं। सुबह की ताजी हवाएं पेटियों में बंद करके नहीं लाई जा सकती हैं।
लेकिन हम जीवन के अनुभव को शब्दों की पेटियों में भरने की कोशिश करते हैं। हम प्रेम को शब्दों में भर देते हैं। परमात्मा को शब्दों में भर देते हैं, शास्त्रों की पेटियों में बंद कर देते हैं। और फिर सोचते हैं कि शायद इन पेटियों को सिर पर लिए चलने से हम किसी अनुभव को पहुंच जाएंगे। स्वाभाविक है कि जो लोग परमात्मा के किनारे पहुंच जाते हों, उनके मन में यह पीड़ा आती हो और करुणा आती हो कि जो उन्होंने जाना है, वह शब्दों में भर कर उनके पास पहुंचा दें, जो कि नहीं जानते हैं, जो कि अस्वस्थ और किन्हीं बीमार कमरों में बंद हैं। तो प्रभु की रोशनी को शब्दों में भर कर भेज दें उन तक। उनका प्रेम, उनकी करुणा--कृष्ण की, महावीर की, क्राइस्ट की, बुद्ध की करुणा--कि जो उन्होंने जाना है उसे शब्दों में भर कर हम तक पहुंचा देते हैं, हम जो अंधेरे कमरों में बीमार पड़े हैं।
उस बच्चे का प्रेम! अपनी मां के लिए भर लाया है पेटी में सब। लेकिन अकेले प्रेम से कुछ भी नहीं होता है। पेटी में जीवंत अनुभव नहीं भरे जा सकते; शब्दों में भी नहीं भरे जा सकते। शब्द हमारे पास पहुंच जाते हैं-- खाली और कोरे। उनमें वह कुछ भी नहीं होता जो प्रभु का अनुभव है। और हम उन्हीं शब्दों को लिए, छाती से चिपकाए हुए बैठे रह जाते हैं। दूरी पैदा हो जाएगी। शब्द दूरी है, अनुभव निकटता है। शब्द ने दूरी पैदा कर दी है। शब्दों के आधार पर हम ज्ञानवान हो गए।
एक अनाथालय में मैं गया था। उस अनाथालय के संयोजकों ने मुझे कहा कि हम बच्चों को धर्म की भी शिक्षा देते हैं।
मेरी दृष्टि में यह बिल्कुल असंभव है। धर्म की कोई शिक्षा नहीं हो सकती। शिक्षा उन चीजों की हो सकती है जो हमसे बाहर हैं। जो हमारे भीतर है उसकी शिक्षा नहीं हो सकती। प्रेम की कोई शिक्षा हो सकती है? कोई विद्यालय खोला जा सकता है जहां हम प्रेम की कला सिखाएं? और अगर खोल लिया जाए... और अभी-अभी मुझे पता चला है कि न्यूयार्क में उन्होंने एक इंस्टीट्यूट बनाई

है जहां वे प्रेम की कला सिखाएंगे... तो एक बात पक्की है कि उस विद्यालय से जो लोग प्रेम की कला सीख कर लौटेंगे, वे जीवन में कभी भी प्रेम नहीं कर पाएंगे। प्रेम का अभिनय करेंगे, एक्टिंग करेंगे, प्रेम नहीं कर सकेंगे। यह आपको पता है, अभिनेता जो कि दिन-रात प्रेम का ही धंधा करता है, कभी
भी प्रेम नहीं कर पाता। प्रेम का अभिनय करने में वह इतना कुशल हो जाता है कि फिर भीतर से उस सच्चे प्रेम के जन्म की कोई संभावना ही नहीं रह जाती। अभिनय में ही बात समाप्त हो जाती है। एक्टिंग में ही बात समाप्त हो जाती है।
हम जानते हैं कि प्रेम का कोई विद्यालय नहीं हो सकता। धर्म का कैसे हो सकता है? धर्म तो प्रेम जैसा ही अनुभव है। जब हम एक व्यक्ति को प्रेम करते हैं, तो उसे हम प्रेम कहते हैं। और जब हम समस्त को प्रेम करते हैं, तो उसे हम धर्म कहते हैं। प्रेम का ही विराट रूप धर्म है। एक व्यक्ति और दूसरे व्यक्ति के बीच जो नाता है, वह प्रेम है। एक व्यक्ति और समष्टि के बीच जो नाता है, वह धर्म है।
तो मैंने उनसे कहा कि मैं तो नहीं सोचता कि धर्म की कैसे शिक्षा देते होंगे! फिर भी शायद कोई रास्ता आपने खोज लिया हो, तो मैं चलूं और जरूर देखूं।
वे मुझे ले गए, कोई सौ अनाथ बच्चे थे उस अनाथालय में। संयोजकों ने जाकर बड़ी खुशी से उन बच्चों से पूछा, ईश्वर है?
छोटे-छोटे बच्चों ने हाथ ऊपर उठा कर हिला दिए कि हां, ईश्वर है!
उन बच्चों को क्या पता हो सकता है ईश्वर के होने का! बूढ़ों को पता नहीं है, बच्चों को कैसे पता हो सकता है? ये हाथ बिल्कुल झूठे हैं, सिखाए हुए हैं। जैसे सर्कस में रीछ नाच रहा है, ऐसे ये बच्चे हाथ हिला रहे हैं। ये हाथ सिखाए हुए हैं, ये झूठे हैं। धर्म के नाम पर झूठ की शिक्षा दी गई है। इनके हाथ झूठे हैं। इन्हें कुछ भी पता नहीं है ईश्वर का। कैसे पता हो सकता है?
और उनसे पूछा गया, आत्मा है? और उन बच्चों ने हाथ उठा दिए। और उनसे पूछा गया, आत्मा कहां है? तो उन बच्चों ने अपनी छातियों पर हाथ रख दिए कि यहां!
मैंने एक छोटे से बच्चे से कहा कि क्या तुम बताओगे हृदय कहां है?
उसने कहा, यह तो हमें बताया नहीं गया। यह हमें पाठ नहीं पढ़ाया गया। हमें बताया गया, आत्मा यहां है। लेकिन हृदय कहां है, अभी हमको बताया नहीं गया।
उसे हृदय का कोई पता नहीं, उसे आत्मा का पता है। ये बच्चे कल बड़े हो जाएंगे, और बचपन के सिखाए हुए हाथ जिंदगी भर हिलते रहेंगे। जब भी जीवन में सवाल उठेगा--ईश्वर है? इनका झूठा हाथ, जो बचपन में सीख गया उठना, उठ जाएगा। ये बूढ़े हो जाएंगे और इनके हाथ झूठे रहेंगे।
आपसे मैं पूछता हूं कि आपसे अगर मैं पूछूं कि ईश्वर है? तो आपके भीतर
से जो उत्तर आएगा वह आपका है या सिखाया हुआ है? आपका है वह उत्तर या आपके मां-बाप, आपके शिक्षक, आपके समाज का सिखाया हुआ है?
अगर सिखाया हुआ है, तो हाथ झूठा है। अगर आपका है, तो सत्य हो सकता है। अगर आपका उत्तर, एक भी है आपके पास है, परमात्मा की दृष्टि को लेकर, तो परमात्मा एकदम निकट पाएंगे आप। और अगर उत्तर सिखाए हुए हैं, तो परमात्मा बहुत दूर है। क्योंकि उत्तर झूठे हैं और परमात्मा सत्य है। झूठे, सिखाए हुए उत्तर, सत्य तक ले जाने का मार्ग नहीं बनते।
हमारे सब उत्तर सीखे हुए हैं, इसलिए सब झूठे हैं। अगर आप जैन के घर में पैदा हुए हैं, तो आपने एक तरह के उत्तर सीख लिए हैं। अगर मुसलमान के घर में हैं, तो दूसरे तरह के; हिंदू के घर में हैं, तो तीसरे तरह के; अगर कम्युनिस्ट के घर में हैं, तो चौथे तरह के उत्तर आपने सीख लिए हैं। अगर रूस में पैदा हुए हैं, तो वहां के बच्चे से पूछो, ईश्वर है? वह कहेगा, नहीं है। यह बात भी उतनी ही झूठी है, जितनी हमारे बच्चे कहते हैं, ईश्वर है। ये दोनों बातें सीखी हुई हैं। इन दोनों बातों में कोई भी सचाई नहीं है। सीखी

हुई बात में कोई भी सचाई हो ही नहीं सकती; जानी हुई बात सत्य होती है। और जानने के बीच कोई फासला नहीं है, लेकिन सीखने के बीच बहुत फासला है। परमात्मा दूर हो गया है, क्योंकि परमात्मा के संबंध में हम कुछ-कुछ सीख कर बैठ गए हैं। सीखे हुए उत्तर से ज्यादा घातक और कोई बात नहीं है। मैंने सुना है कि जापान के एक गांव में दो छोटे मंदिर थे। एक मंदिर उत्तर का मंदिर कहलाता था, एक मंदिर दक्षिण का मंदिर कहलाता था। दोनों मंदिरों में शत्रुता थी, जैसी कि हमेशा मंदिरों में रही है।
मंदिरों में कभी मित्रता नहीं रही है। यह दुर्घटना आज तक हुई ही नहीं
कि मंदिरों में मित्रता रही हो! मंदिर हमेशा से शत्रु रहे हैं। असल में, एक मंदिर खड़ा ही इसलिए होता है--किसी मंदिर की शत्रुता में, अन्यथा खड़ा ही नहीं होता।
दोनों मंदिरों में झगड़ा था। बड़ी अशोभन है यह बात कि मंदिरों में झगड़ा हो। क्योंकि अगर मंदिरों में झगड़ा होगा, तो मैत्री कहां होगी? फिर मैत्री की कोई संभावना नहीं रह गई। लेकिन यही रहा है अब तक कि मंदिरों में झगड़े हैं। उन मंदिरों में भी झगड़ा था। यह झगड़ा पीढ़ी दर पीढ़ी चला आया था। यह कोई दस पीढ़ियों का झगड़ा था। मंदिर के पुजारी एक-दूसरे की शक्ल भी नहीं देखते थे। उन दोनों पुजारियों के पास दो छोटे बच्चे थे, छोटे-मोटे काम, सेवा के लिए। उन्होंने उन बच्चों को भी कह रखा था कि भूल कर भी दूसरे मंदिर की तरफ मत जाना। निकलना भी मत। उस मंदिर की छाया भी अपवित्र है।
ऐसा है। हिंदू ग्रंथों में लिखा है, जैन ग्रंथों में लिखा है। ऐसा लिखा है हिंदू ग्रंथों में कि जैन मंदिर के सामने से निकलते होओ और अगर पागल हाथी पीछे आ जाए, तो तुम उसके पैर के नीचे दब कर मर जाना, लेकिन जैन मंदिर में शरण मत लेना। ऐसा ही जैन ग्रंथों में भी लिखा है कि हिंदू मंदिर के सामने से निकलते होओ और पागल हाथी आ जाए, तो उसके पैर के नीचे मर जाना, वह अच्छा है, लेकिन हिंदू मंदिर में शरण मत ले लेना।
सारी दुनिया के धर्म ऐसी ही बात करते हैं--शत्रुता की। वे पुजारी भी अपने बच्चों को कह रखे थे कि वहां कदम मत रखना। लेकिन बच्चे बच्चे हैं। बूढ़े भी बिगाड़ने की कोशिश करते हैं तो वक्त लग जाता है, एकदम से बच्चों को बिगाड़ना बड़ा मुश्किल है।
दोनों बच्चे कभी रास्ते पर मिल जाते थे तो बातचीत कर लेते थे। एक दिन उत्तर के मंदिर का बच्चा निकला है और दक्षिण के मंदिर के बच्चे ने उससे पूछा कि मित्र, कहां जा रहे हो? मंदिर में ज्ञान की चर्चा सुनते-सुनते उस लड़के का भी दिमाग मेटाफिजिकल, दार्शनिक हो गया था। उस बच्चे ने कहा, कहां जा रहा हूं? जहां हवाएं ले जाएं!
दक्षिण का बच्चा तो चुप ही रह गया। अब उसे कुछ सूझा ही नहीं कि अब आगे क्या बात करे! वह लौट कर अपने गुरु के पास गया और उसने कहा, आज एक बड़ी अजीब बात हो गई। आज मैं हारा हुआ लौटा हूं, उस मंदिर के उस लड़के ने आज ऐसा उत्तर दिया है कि मुझे फिर कुछ भी नहीं सूझा। मैंने पूछा कि कहां जा रहे हो? उस लड़के ने कहा, जहां हवाएं ले जाएं!
गुरु तो बहुत नाराज हुआ। उसने कहा, यह बड़ी बुरी बात है। आज तक हमारे मंदिर का कोई आदमी उस मंदिर से नहीं हारा। तुम हार कर लौटे हो। कल उसको हराना जरूरी है। तुम कल फिर यही पूछना कि कहां जा रहे हो? और जब वह कहे, जहां हवाएं ले जाएं, तो उससे कहना, और अगर हवाएं थमी हों, रुकी हों, तो कहीं जाओगे कि नहीं? तब वह भी ऐसे ही रह जाएगा घबड़ाया हुआ जैसे तुम रह गए हो। उसको इसी हालत में छोड़ देना जरूरी है। हमारे मंदिर का कोई आदमी कभी उस मंदिर से नहीं हारा।
दूसरे दिन वह बच्चा फिर जाकर रास्ते पर खड़ा हो गया है। उत्तर के मंदिर
का बच्चा निकला। उसने आज पूछा बड़ी तैयारी से, क्योंकि उसका उत्तर तैयार है। उसने पूछा, कहां जा रहे हो? लेकिन सब गड़बड़ हो गया। उस लड़के ने कहा, जहां पैर ले जाएं! बंधा हुआ उत्तर एकदम बेकार हो गया। वह लड़का फिर हार गया। बंधे हुए उत्तर के लोग जिंदगी में हमेशा हार जाते हैं। क्योंकि जिंदगी रोज बदल जाती है; रोज प्रतिपल बदल जाती है। उत्तर तैयार हैं, जिंदगी बदल गई है। जिंदगी की धारा रोज नई हो जाती है, नये किनारे छू लेती

है, नई शक्ल ले लेती है। जीवन प्रतिपल नया हो जाता है। बंधे हुए उत्तर हमेशा पुराने पड़ जाते हैं। इधर जिंदगी बदलती जाती है, वह अपनी गीता में खोज रहा है बंधा हुआ उत्तर, वह अपने कुरान में खोज रहा है, अपनी बाइबिल में खोज रहा है--कि उत्तर कहां लिखा है? और जिंदगी बदली जा रही है प्रतिपल। ईश्वर रोज नया होता चला जा रहा है, किताब हमेशा पुरानी है, उत्तर हमेशा पुराना है।
वह लड़का फिर हार गया। उसने लौट कर अपने गुरु को कहा कि मैं फिर हार गया। वह लड़का तो बहुत बेईमान है। आज उसने उत्तर ही बदल दिया!
जिंदगी भी बड़ी बेईमान है। ईमानदार सिर्फ मुर्दे होते हैं। जिंदगी भी रोज बदल जाती है। अगर बदल जाना ही बेईमानी है, तो जिंदगी बड़ी बेईमान है। फूल सुबह खिलता है, सांझ बदल जाता है। पत्थर वैसा ही का वैसा पड़ा रहता है। पत्थर बड़ा ईमानदार मालूम होता है, सिंसियर; फूल बड़ा बेईमान है। अगर बदल जाना बेईमानी है, तो जिंदगी बड़ी बेईमान है, ईश्वर बेईमान है।
उसके गुरु ने कहा कि उस मंदिर के हमेशा ही लोग बेईमान रहे हैं। यही तो झगड़ा है। तू कल फिर तैयारी करके जा। कल फिर पूछना कि कहां जा रहे हो? जब वह कहे, जहां पैर ले जाएं, तो उससे कहना कि याद रख, कभी ऐसा भी होता है कि पैर कट जाते हैं। फिर क्या होगा? अगर पैर न होते तो कहीं जाता कि नहीं जाता? तैयार उत्तर लेकर वह लड़का फिर दूसरे दिन रास्ते पर खड़ा हो गया। फिर वही बात। फिर वही मुश्किल हो गई। उसने पूछा, कहां जा रहे हो? उस लड़के ने कहा, सब्जी खरीदने! वह बंधा हुआ उत्तर फिर वहीं रह गया है!
हमारे पास बंधे हुए उत्तर हैं--हिंदू का उत्तर है, मुसलमान का उत्तर है, ईसाई का उत्तर है। सब बंधे हुए उत्तर हैं। ईसा के लिए वह उत्तर अनुभव का उत्तर था, ईसाई के लिए बंधा हुआ, सीखा हुआ उत्तर है। कृष्ण के लिए वह उत्तर अनुभव का था, हिंदू के लिए सीखा हुआ उत्तर है। महावीर के लिए वह उत्तर अनुभव से आया था, जैन के लिए सीखा हुआ है। इसलिए महावीर, कृष्ण और क्राइस्ट सत्य हो सकते हैं, लेकिन हिंदू, मुसलमान और जैन और ईसाई सत्य नहीं हैं, झूठ हैं। इस झूठ के कारण परमात्मा और स्वयं के बीच दूरी हो गई है। यह झूठ गिर जाना जरूरी है, तो सत्य के निकट इसी क्षण पहुंच सकते हैं। आपका सीखा हुआ ज्ञान आपके और प्रभु के बीच दूरी है--सीखा हुआ ज्ञान, कल्टीवेटेड नालेज। और आपके पास सीखे हुए ज्ञान के अतिरिक्त और क्या है? जाना हुआ कुछ है? एक कण भी जाना हुआ, सीखे हुए पहाड़ से ज्यादा मूल्य का है। एक किरण भी जानी हुई, सीखे हुए एक सूरज से ज्यादा मूल्य की है, जीवंत है, और सारे जीवन को बदल डालती है।
लेकिन मनुष्य के मन पर सिखाया, सिखाया, सिखाया ज्ञान इकट्ठा होता चला गया है। उसी ज्ञान को हम ज्ञान समझ रहे हैं। एक अंधा आदमी जैसे प्रकाश के संबंध में कुछ बातें सुन ले और सीख ले। क्या उसके सीखने से प्रकाश का कोई भी ज्ञान उसे मिल जाएगा? क्या प्रकाश के संबंध में सारी बातें जान लेने से, प्रकाश के संबंध में फिजिक्स ने जो भी खोजा है सब समझ लेने से, क्या उसका प्रकाश से कोई संबंध हो जाएगा? क्या आंख खुल जाएगी? क्या वह प्रकाश को जान लेगा?
लेकिन एक आदमी जिसकी आंख खुली है, प्रकाश के संबंध में कुछ भी नहीं जानता हो, फिर भी प्रकाश को जानता है। फिर भी प्रकाश को जानता है! और एक अंधा आदमी सब कुछ जानता हो प्रकाश के संबंध में, तो भी प्रकाश को नहीं जानता है।
हम अंधों की तरह हैं और दूसरों की बातें सीख कर बैठ गए हैं। धार्मिक आदमी, दूसरों की सीखी हुई बातों से मुक्ति का विद्रोह है, एक रिबेलियन है। वह इस बात का विद्रोह है कि मैं सीखे हुए से मुक्त हो जाऊंगा और जानने की कोशिश करूंगा, सीखने को छोडूंगा। मैं बंधे हुए, सीखे हुए, रटे हुए उत्तरों से मुक्त हो जाऊंगा; अपने उत्तर की तलाश करूंगा। और जब अपना उत्तर आता है, तो दूरी जरा भी नहीं रह जाती। दूसरे के उत्तरों के कारण सारी दूरी है।
आप हिंदू हैं, इसलिए दूरी है। आप ईसाई हैं, इसलिए दूरी है। आपके पास अपना कुछ नहीं है। क्राइस्ट का दो हजार साल पीछे का आप इकट्ठा किए बैठे हैं। कृष्ण का तीन हजार साल पुराना इकट्ठा किए बैठे हैं। बुद्ध का ढाई

हजार साल पुराना। बुद्ध के लिए वह अपना अनुभव था। आपके लिए, मेरे लिए वह अपना अनुभव नहीं रह गया। मेरे पास केवल शब्द रह गए पेटियों में बंद। अब उनकी व्याख्या करते चले जाओ, अर्थ निकालते चले जाओ, मेहनत करते रहो, पंडित हो जाओ। लेकिन पंडित होने से कोई कभी ज्ञानी हुआ है?
पंडित और ज्ञानी में पुरानी शत्रुता है। पंडित कभी ज्ञानी नहीं होता। पंडित कभी ज्ञानी नहीं हो सकता है। उसका सारा ज्ञान मृत, डेड, मरा हुआ है; उधार और बासा है। उधार और बासे ज्ञान की हालत वैसी ही है, जैसे एक आदमी अपने घर में एक हौज बना ले--मिट्टी लाए, ईंटें लाए, जोड़ कर दीवाल उठाए--फिर पानी किसी से उधार मांग लाए और हौज में भर ले। पंडित के पास हौज जैसा दिमाग है--उधार, बासा, दूसरों से मांगा हुआ। ज्ञानी के पास कुएं जैसा ज्ञान है-- मांगा हुआ नहीं; खोदा हुआ, निकाला हुआ, अपने भीतर से आया हुआ।
एक आदमी कुआं खोदता है तो क्या करता है? जमीन से मिट्टी निकालता है, पत्थर निकालता है। उनको निकाल कर फेंक देता है, खोद डालता है जमीन। फिर नीचे से जल के झरने फूट पड़ते हैं। जल तो हमेशा भीतर मौजूद है। कुआं तो हमेशा तैयार है। केवल ढंका हुआ है पत्थर से, मिट्टी की पर्तों से। उन पर्तों को अलग कर देना है और कुआं मौजूद है। कुआं कहीं से लाना नहीं है। पानी कहीं से लाना नहीं है। वह है, सिर्फ दबा हुआ है। उसे डिस्कवर करना है, उसे आविष्कार करना है, उघाड़ देना है।
उलटी प्रक्रिया है लेकिन। हौज कोई बनाता है तो मिट्टी लाओ, पत्थर लाओ, जोड़ कर दीवाल बनाओ। दीवाल ऊपर की तरफ उठाओ। कुआं कोई बनाता है तो मिट्टी निकालो, पत्थर निकाल कर फेंको, गड्ढा नीचे की तरफ खोदो। हौज ऊपर की तरफ उठती है, कुआं नीचे की तरफ जाता है। हौज के लिए बाहर से ईंट, मिट्टी, पत्थर लाकर जोड़ो। कुएं के लिए जो है मिट्टी-पत्थर, उसको भी निकाल कर फेंको। फिर हौज बन जाती है तो भी पानी नहीं आता। फिर पानी भी मांग कर लाओ। कुआं बन जाता है तो पानी अपने से आ जाता है। कभी किसी कुएं को भी किसी से पानी मांगते देखा है? फिर जब हौज में बासा पानी, उधार पानी लाकर भर दो, तो हौज डरती है कि कहीं मेरा कोई पानी न निकाल ले! क्योंकि पानी निकला कि हौज खाली की खाली हो जाएगी। हौज कहती हैः और लाओ, और लाओ, और लाओ। हौज संग्राहक है, संग्रह करती है। डरती है कि कोई निकाल न ले। निकाल ले, तो हौज खाली हो जाएगी। लेकिन कुआं कहता हैः उलीचो, उलीचो। मुझसे निकालो, निकालो। क्योंकि जितना पानी निकलता है, उतना ताजा और नया पानी वापस आ जाता है। कुआं चिल्लाता हैः मुझे खाली करो, ताकि मैं रोज नया और जीवंत होता चला जाऊं। फिर हौज अपने में बंद होती है। उसका किसी से कोई संबंध नहीं होता, उसकी कोई झिरें नहीं होतीं। लेकिन कुआं अपने में बंद नहीं होता है, कुएं की झिरें समुद्र तक फैली हुई हैं, दूर समुद्र से जुड़ी हुई हैं। कुआं जानता है कि मैं समुद्र का एक हिस्सा हूं। हौज जानती है कि मैं हूं, किसी का हिस्सा नहीं हूं। हौज अपने अहंकार में बंद है। कुएं का कोई अहंकार नहीं है। क्योंकि कुआं जानता है, मैं तो समुद्र का एक हिस्सा मात्र हूं। उसकी ही झिरें मुझको आकर भर जाती हैं। मैं क्या हूं, मैं तो कुछ भी नहीं हूं। कुआं अपनी विनम्रता में जीता है, हौज अपने अहंकार में।
ज्ञानी और पंडित के बीच वही फर्क है, जो कुएं और हौज के बीच है। ज्ञानी कुआं है, पंडित हौज है। पंडित अहंकार में जीता है कि मैं जानता हूं। ज्ञानी निर-अहंकार में जीता है। वह कहता है, मैं क्या जान सकता हूं, मैं हूं ही नहीं। किसी दूर सागर का एक हिस्सा, किसी दूर सूरज की एक किरण, किसी दूर जीवन का एक अंश, किसी दूर की कोई ध्वनि, एक टुकड़ा, एक किसी बड़े वृक्ष का छोटा पत्ता--इससे ज्यादा नहीं; मैं क्या जान सकता हूं? लेकिन पंडित कहता है कि मैं जानता हूं।
और मैं आपसे कहूं, जिसको यह ख्याल है कि मैं जानता हूं--उधार ज्ञान, शब्दों के आधार पर, बासे, सीखे हुए ज्ञान के आधार पर--वह आदमी परमात्मा से अनंत दूरी पर खड़ा हो गया। लेकिन जो कहता है कि मैं नहीं जानता हूं, मैं क्या जानता हूं, क्योंकि जो भी जानता हूं, सब सीखा हुआ है, सब सुना हुआ है, सब पढ़ा हुआ है; मैं कहां कुछ जानता हूं, मैं कहां जानता हूं? जो यह बात कहने की सामर्थ्य अपने में पैदा कर लेता है, जो इस हिम्मत पर राजी हो जाता है कि

मैं अज्ञानी हूं, मैं नहीं जानता हूं, उसने सारे सीखे हुए ज्ञान को इनकार कर दिया, उसने विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह में, इस अज्ञान के बोध में वह विनम्रता पैदा होती है, जो मनुष्य को कुआं बना सकती है।
एक छोटी सी कहानी से मैं अपनी बात समझाऊं।
एक फकीर था अगस्तीन। तीस वर्षों तक जितना ज्ञान मिल सकता था, उसने इकट्ठा किया। जो भी जाना जा सकता था, उसने सब जान लिया। लेकिन सब ज्ञान इकट्ठा हो गया, ढेर लग गए ज्ञान के, लेकिन कहीं कोई किरण दिखाई न पड़ी। जानना पूरा हो गया, सब शास्त्र जान लिए गए, लेकिन उस प्रभु के पास पहुंचने का कोई मार्ग न मिला। हजारों लोग उसकी पूजा करने लगे और कहने लगे, परम ज्ञानी हो तुम। लेकिन भीतर वह जानता है कि वहां तो कोई किरण न आई। शास्त्र आ गए, शब्द आ गए, सिद्धांत आ गए। लेकिन जानना? जानना तो अभी हुआ नहीं। वह रोए ही चला गया, और खोजे चला गया--और किताबें, और किताबें, और किताबें-- लेकिन कहीं कोई पता नहीं, ज्ञान का कोई पता नहीं। फिर वह घबड़ा गया। बूढ़ा हो गया सत्तर वर्ष का। उसने सोचा, अब तो दिन इने-गिने रह गए। अब क्या होगा? क्या मैं अज्ञानी ही मर जाऊंगा?
एक दिन सुबह, अंधेरे ही उठ कर वह समुद्र के किनारे पहुंच गया और उसने जाकर यह संकल्प किया समुद्र के किनारे--सूरज उगता था और उसने यह संकल्प किया--कि आज वापस नहीं लौटूंगा। या तो प्रभु मुझे ज्ञान दो या आज मैं समुद्र में अपने को समाप्त कर लूंगा। बस बारह घंटे और प्रतीक्षा करूंगा-- यह सूरज के उगने से सूरज के डूबने तक। सूरज के डूबने के साथ मैं भी डूब जाऊंगा। तब तक प्रतीक्षा और करता हूं। यह मेरा अंतिम दांव है।
वह आंख बंद करके, हाथ फैला कर, सूरज के सामने खड़ा हो गया है, समुद्र के किनारे संकल्प लेकर। आज या तो जान कर लौटेगा या नहीं लौटेगा। तभी उसे पीछे किसी की आवाज, रोने की सुनाई पड़ी, एक छोटी सी चट्टान के पीछे जैसे कोई रो रहा है। सुबह-सुबह कौन आ गया यहां?
उसने लौट कर पीछे देखा तो और हैरान रह गया! एक छोटा सा बच्चा रो रहा है। घुटनों पर सिर रखे हुए है, उसकी आंख से आंसू बहे चले जा रहे हैं। यह इतना छोटा बच्चा इस निर्जन में इतनी सुबह कहां से आ गया है! वह उसके पास गया और उस बच्चे को कहा, बेटे, क्यों रोते हो? क्या तकलीफ है? क्या हो गया? उसकी खुद की भी आंखें आंसुओं से भरी हैं, क्योंकि आज जिंदगी का अंतिम दिन है।
वह बच्चा कहने लगा, मत पूछिए, क्योंकि आप कुछ सहायता नहीं कर सकेंगे। उसके हाथ में एक छोटी सी प्याली है, जिसमें उसके आंसू टपक गए हैं। वह बच्चा कहने लगा, आप कहते हैं तो मैं बताता हूं, लेकिन आप सहायता नहीं कर सकेंगे। मैं इस प्याली को लेकर आया हूं कि समुद्र को भर कर घर ले जाऊंगा। लेकिन समुद्र मेरी प्याली में समाता नहीं। मेरी प्याली बहुत छोटी पड़ जाती है, समुद्र बहुत बड़ा है। लेकिन आज तो मैंने तय कर लिया है कि या तो लेकर जाऊंगा या नहीं जाऊंगा!
जैसे उस फकीर के सामने अंधेरे में कोई बिजली कौंध गई हो, ऐसे कोई पर्दा उठ गया।
वह फकीर नाचने लगा वहीं और कहा कि मैं सोचता था कि मैं बूढ़ा हो गया। आज मुझे पता चला कि मेरी कोशिश भी एक छोटे बच्चे जैसी कोशिश है, जो समुद्र को प्याली में भरना चाहता है। भूल हो गई मुझसे। उसने हाथ जोड़ कर प्रभु से कहा कि नहीं-नहीं, भूल हो गई। यह तो हो भी सकता है कि एक प्याली में समुद्र समा जाए, क्योंकि प्याली की भी सीमा है और समुद्र की भी। लेकिन यह कैसे हो सकता है कि मेरी बुद्धि में प्रभु समा जाए, क्योंकि मेरी बुद्धि की सीमा है और प्रभु की कोई सीमा नहीं। यह तो हो भी सकता है कभी न कभी कि समुद्र प्याली में समा जाए। कभी हो सकता है, विज्ञान कोई रास्ता खोज ले सकता है कि कभी प्याली में समुद्र समा जाए। लेकिन यह रास्ता कभी नहीं खोजा जा सकता कि मनुष्य के अहंकार में, मेरे मैं में, और प्रभु समा जाए! यह कभी नहीं हो सकता, कोई विज्ञान इसके लिए कभी कोई रास्ता नहीं खोज सकता है। वह फकीर नाचने लगा और उस लड़के को कहा कि तू मेरा गुरु हो गया। उसने उसके पैर छुए और नाचता हुआ अपनी झोपड़ी पर वापस लौट गया।

झोपड़ी में उसके मित्रों ने देखा कि इतनी खुशी में आ रहा है नाचता हुआ, ऐसा तो कभी उसे नाचता हुआ देखा नहीं था। वे सब घेर कर खड़े हो गए और पूछने लगे, क्या प्रभु के दर्शन हो गए? क्या मिल गया ज्ञान?
वह फकीर कहने लगा, हां। आज मैंने उसे जान लिया, क्योंकि आज मैंने उसे जानने की अहंकारपूर्ण कोशिश छोड़ दी। और मैं हैरान हो गया, जैसे ही मैंने यह ख्याल छोड़ा कि उसे जानना है, मैं जानना चाहता हूं, वैसे ही मैंने पाया कि मेरे मैं के गिरते ही, वह तो हमेशा मौजूद था। मेरी मैं की दीवाल के कारण दूर था। मेरा मैं नहीं रहा, वह पास हो गया।
तो अंतिम बात, आज की सुबह की इस बैठक में आपसे कहना चाहता हूंः आपके मैं के अतिरिक्त परमात्मा से आपकी कोई दूरी नहीं है। जहां मैं नहीं है वहां वह एकदम निकट है, एकदम पास से भी पास है। वह तब आपके भीतर ही है, तब वह और आप एक ही हैं।
लेकिन आज तक यही सिखाया गया कि वह दूर है। दूरी किस बात से पैदा हो गई है, यह हमारे ख्याल में नहीं है, इसलिए दूरी है।
अहंकार दूरी है। और ज्ञानी के पास बड़ा अहंकार होता है। पंडित के पास भारी अहंकार होता है। उधार, सीखे हुए शब्दों पर अहंकार का भवन खड़ा कर लेते हैं और लगता है, मैं जानता हूं। जहां तक यह मैं जानने का ख्याल है, वहां तक वह दूर है। और जिस दिन आप जानेंगे कि मैं कहां जानता हूं? सब सीखी हुई बातें हैं, सब उधार, सीखे हुए उत्तर हैं, मेरा उत्तर कहां है? जिस दिन अपने भीतर खोजेंगे और पाएंगे कि मैं तो कुछ भी नहीं जानता हूं, उसी दिन मैं गिर जाएगा। और जहां मैं गिर जाता है, वहां वह निकट आ जाता है।
मैं है दूरी, न-मैं निकटता बन जाती है। अहंकार है दूरी, निर-अहंकारिता निकटता बन जाती है। प्रभु तो निकट है, आपका अहंकार... । कुएं का जलस्रोत तो निकट है, अहंकार के पत्थर, अहंकार की मिट्टी की पर्तें उसे रोके हुए हैं।
तोड़ दें, और जलस्रोत प्रकट हो जाता है। यह दूसरा सूत्र।
पहला सूत्रः प्रभु को पाना सरल है।
दूसरा सूत्रः प्रभु अत्यंत निकट है।
तीसरे सूत्र पर कल सुबह आपसे बात करूंगा। यह दूसरा सूत्र मैंने आपसे कहा। इस पर सोचना, खोजना। क्योंकि मेरे कहने से कुछ भी नहीं हो जाता है। मेरे कहने को मान मत लेना, नहीं तो सीखा हुआ उत्तर हो गया, दूसरे का उत्तर हो गया। मैंने जो कहा और आप मान कर चले गए, तो गलती हो गई, वही की वही हो गई गलती। मेरा उत्तर आपका उत्तर नहीं बन सकता है। सोचना, खोजना, जांचना, परखना अपने भीतर कि मैं जो भी जानता हूं वह मेरा जानना है? एक-एक अपने ज्ञान को उठा कर पूछना। और जब कोई उत्तर न मिले भीतर और पता चल जाए कि कुछ भी मैं नहीं जानता हूं, तो फिर उसका उत्तर आना शुरू हो जाएगा।
एक फकीर था, एक गांव में ठहरा हुआ था। गांव के लोग उसके पास आए। मुसलमानों का गांव था। उन्होंने कहा कि हमारी मस्जिद में चलें और हमें कुछ समझाएं ईश्वर के संबंध में। उस फकीर ने कहा, ईश्वर के संबंध में समझाना बहुत कठिन है, मुझे क्षमा करो। लेकिन गांव के लोग पीछे पड़ गए। वह फकीर मस्जिद में गया, शुक्रवार का दिन, सारे गांव के लोग इकट्ठे हुए हैं। वह फकीर मंच पर खड़ा हो गया और उसने कहा कि इसके पहले कि मैं परमात्मा के संबंध में कुछ कहूं, मुझे एक बात जाननी है। आप लोग परमात्मा को जानते हैं? आप लोग परमात्मा को मानते हैं? उन सारे लोगों ने हाथ उठा दिए कि हां, हम जानते हैं, हम मानते हैं। उस फकीर ने कहा, फिर क्षमा करें, जब आप सब जानते और मानते हैं, तो मुझे कहने को क्या बचा? मैं वापस जाता हूं!
फंस गए! अब कुछ कहने को भी न बचा, जब कह ही चुके कि जानते और मानते हैं।
वह फकीर तो उतरा मंच से और वापस चला गया। लेकिन गांव में बड़ी चिंता हुई कि क्या करें, इस आदमी ने तो धोखा दे दिया। और हम खुद फंस गए कह कर। उसने कहा, जब जानते ही हो, जब मानते ही हो, तो अब बचा क्या और कहने को? बात खत्म हो गई। लेकिन न तो कोई जानता था, न कोई मानता था, सब झूठ था। इसलिए मन में पीड़ा रह गई कि कुछ जानते उससे--फकीर से।
फिर दूसरे शुक्रवार उसके पास पहुंच गए और कहा कि चलें। उस फकीर ने कहा
कि मैं क्या करूंगा जाकर? ईश्वर के संबंध में कुछ कहना मुश्किल है। लेकिन

नहीं माने तो वह गया। वह मंच पर खड़ा हुआ और उसने कहा कि पहले मैं कुछ कहूं, पूछ लूं। ईश्वर को जानते हैं? मानते हैं? उन सबने कहा कि न हम मानते हैं, न हम जानते हैं। क्योंकि पिछला उत्तर गलत हो गया था। उन्होंने कहा, न हम जानते हैं, न हम मानते हैं। उस फकीर ने कहा कि न तुम मानते हो, न तुम जानते हो। कहने की कोई जरूरत नहीं रह गई। बात खत्म हो गई है। जो है ही नहीं, जिसको तुम जानते ही नहीं, जिसको तुम मानते ही नहीं, पूछते क्या हो उसके बाबत? ईश्वर के बाबत पूछते क्यों हो? वह उतरा और वापस लौट गया। उसने कहा, क्षमा करो, तुमसे कहने की कोई जरूरत नहीं है।
गांव के लोग बहुत परेशान हुए। दो उत्तर हो सकते थे, दे दिए गए थे। फिर उन्होंने कोशिश की, उनके ज्ञानी विचार में लगे और उन्होंने तीसरा उत्तर खोजा। और तीसरे शुक्रवार फिर उसको पकड़ लाए। अब की बार उन्होंने बहुत होशियारी का उत्तर निकाला था कि अब फकीर फंस जाएगा। फकीर आ गया, मंच पर खड़ा हो गया और उसने पूछा कि मित्रो, पहले वही प्रश्न पूछ लूं। ईश्वर को मानते हो? जानते हो? तो आधी मस्जिद के लोग एक किनारे पर खड़े हो गए, उन्होंने कहा कि हम जानते हैं। आधे लोग जानते हैं और मानते हैं। आधे लोग नहीं मानते और नहीं जानते हैं। अब क्या इरादा है? उस फकीर ने कहा, बात खत्म हो गई। जो जानते हैं, वे उनको बता दें जो नहीं जानते हैं। मैं जाता हूं। मेरी क्या जरूरत है? दोनों ही मौजूद हैं। प्यासा भी मौजूद है, पानी भी मौजूद है। मैं जाता हूं। आप बता दें उनको जो नहीं जानते हैं।
चौथा उत्तर उस गांव के लोग नहीं खोज सके, इसलिए चौथी बार फकीर के पास नहीं गए। मैंने उस फकीर को पूछा कि चौथी बार नहीं आए? उस फकीर ने कहा, चौथी बार आते तो फिर मुझे बोलना पड़ता। लेकिन चौथी बार वे आए नहीं। मैंने उससे पूछा कि वे कौन सा उत्तर देते तो तुम बोलते? उसने कहा, वे कोई उत्तर न देते और चुप रह जाते, तो मैं बोलता। क्योंकि सब उत्तर सीखे हुए हैं, सिर्फ मौन अनसीखा है।
ईश्वर है--यह भी सीखा हुआ उत्तर है। ईश्वर नहीं है--यह भी सीखा हुआ उत्तर है। मौन, सायलेंस अनसीखा है। वह जन्म के साथ है।
पूछें अपने से, ईश्वर है? और अगर उत्तर आए, तो देखें कि यह सीखा हुआ तो नहीं है, किसी ने सिखाया तो नहीं है--बाप ने, मां ने, गुरु ने, समाज ने। अगर सीखा हुआ है, तो छोड़ दें। उत्तर आएः ईश्वर नहीं है। तो पूछें, किसी ने सिखाया तो नहीं है--कार्ल मार्क्स ने, कम्युनिस्ट ने, नास्तिक ने? अगर सिखाया हुआ है, तो छोड़ दें। आपके पास क्या बचेगा? अनसीखा हुआ मौन। कोई उत्तर सीखा हुआ नहीं बचेगा। मौन शेष रह जाएगा। वही मौन ध्यान है। उसी मौन से एक द्वार खुलता है और चौथा उत्तर परमात्मा का उपलब्ध होता है, जब आप मौन खड़े हो जाते हैं। आपके पास कोई उत्तर नहीं है--अपनी परिपूर्ण विनम्रता में मौन, शांत, सिर्फ प्रतीक्षा में खड़े रह जाते हैं। वही प्रतीक्षा ध्यान है।

मेरी बात तो पूरी हुई। अब हम सुबह के ध्यान के लिए दस मिनट बैठेंगे और फिर विदा हो जाएंगे। थोड़े-थोड़े फासले पर हो जाएंगे, ताकि कोई किसी को छूता हुआ न हो। इतनी सूरज की किरणें बरस रही हैं, इतने पक्षी बोल रहे हैं, यह चारों तरफ परमात्मा न मालूम कितने रूपों में मौजूद है। इसको दस मिनट के लिए अपने भीतर प्रवेश देने की तैयारी करेंगे, प्रतीक्षा करेंगे अपने मन को खुला छोड़ कर--एक ओपनिंग, मन खुला है और सब तरफ से परमात्मा को आने दे रहा है। सूरज की किरण में भी वही है, जो आपके चेहरे पर पड़ रही है। पक्षी की आवाज में भी वही है, जो आपके कानों से टकरा जाएगी। हवाओं में भी वही है, जो आपको छुएगी और गुजर जाएगी। सब तरफ वही है।
उसकी इस सब तरफ की मौजूदगी का अनुभव, जब आप बिल्कुल शांत होते हैं तब होना शुरू हो जाता है। ध्यान का और कोई मतलब नहीं है। ध्यान का मतलब हैः शांत प्रतीक्षा, सायलेंट अवेटिंग। तो हम एक दस मिनट मौन होकर उसकी प्रतीक्षा करें।
क्या करेंगे उस मौन में?
आंख बंद कर लेंगे, शरीर को शिथिल छोड़ देंगे और चुपचाप चारों तरफ वह है, उसकी प्रेजेंस, उसकी मौजूदगी--पक्षियों की आवाज में, हवाओं के कंपन में,

वृक्षों के गिरते हुए पत्तों में--सबको चुपचाप सुनते रहेंगे। उसकी प्रेजेंस को, उसकी मौजूदगी को अनुभव करते रहेंगे। दस मिनट में ही लगेगा कि कुछ और हो गए, आप किसी दूसरे लोक में चले गए। कोई पास आ गया, जो दूर था। कोई निकट आ गया, जो अपरिचित था। कोई अज्ञात ज्ञात बनने लगा, कोई कुआं खुदने लगा, भीतर कोई झरने फूटने लगे।
तो मैं यह आशा करूं कि कोई किसी को स्पर्श नहीं कर रहा है। अगर कोई भी किसी को छू रहा है तो वहां से उठ कर बाहर हो जाए, थोड़ी दूर हट जाए। कोई किसी को छूता हुआ न हो, ताकि आप बिल्कुल अकेले हो जाएं। आपको पता न रहे कि दूसरा भी यहां मौजूद है। जरा भी कोई स्पर्श कर रहा हो तो हट जाए वह।
वह अतिथि सीढ़ियों से वापस न लौट जाए। वह तो रोज आता है द्वार पर, हर एक
के लिए, लेकिन द्वार बंद देख कर वापस लौट जाता है।
अंत में सबके भीतर बैठे हुए परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

माटी कहै कुम्हार सूं
तीसरा प्रवचन

जिज्ञासा और खोज

बहुत से प्रश्न मेरे सामने आए हैं। सबसे पहले, सुबह मैंने कहा, जो हम नहीं जानते हैं, भलीभांति जानना चाहिए कि हम नहीं जानते हैं। इस संबंध में पूछा है कि हम अपने बच्चों को न बताएं कि ईश्वर है? क्या धर्म के संबंध में उन्हें कुछ भी न कहें? आत्मा के लिए कोई उन्हें विश्वास न दें? ऐसे कुछ प्रश्न पूछे हैं।

जिसे हम नहीं जानते हैं, उसे हम देना भी चाहेंगे, तो क्या दे सकेंगे?
और जो हमें ही ज्ञात नहीं है, क्या उस बात की शिक्षा, हमारे संबंध में बच्चे के मन में आदर पैदा करेगी? क्या यह असत्य की शुरुआत न होगी? और क्या असत्य पर भी ईश्वर का ज्ञान कभी खड़ा हो सकता है? और क्या असत्य के ऊपर हम सोच सकते हैं कि बच्चा कभी धार्मिक हो जाएगा?
यह दुनिया अधार्मिक इसी तरह हो गई है। यह दुनिया धार्मिक हो सकती थी। लेकिन जिन लोगों ने स्वयं बिना जाने शिक्षाएं दी हैं, उन्होंने इस दुनिया को अधर्म के अंधकार में भेज दिया है। दो ही परिणाम होते हैं उस शिक्षा के। बच्चा आज नहीं कल बड़ा हो जाएगा और भलीभांति जानेगा कि उसके पिता ने, उसके गुरु ने जो कहा था, वह झूठ था। वे खुद भी नहीं जानते थे। इस सत्य को कब तक छिपाए रखिएगा कि आप नहीं जानते हैं? आपका जीवन कह देगा, आपका आचरण कह देगा। सब तरफ से खबर मिल जाएगी बच्चों को कि पिता भी नहीं जानते हैं कि ईश्वर है। तब ईश्वर पर तो श्रद्धा पैदा नहीं होगी, हां, पिता पर जरूर अश्रद्धा पैदा हो जाएगी। यह बच्चों की जो श्रद्धा उठती चली गई है मां में, पिता में, गुरु में, यह अकारण नहीं है। आप इसके लिए जिम्मेवार हैं। आपने ऐसे झूठ उन्हें सिखाए हैं, जो थोड़े दिनों में वे समझ जाते हैं कि झूठ हैं। और तब आपके प्रति सारा आदर, सारा सम्मान तिरोहित हो जाता है।
यह जो इस ख्याल से हम शिक्षा देते हैं कि शायद ईश्वर के संबंध में न बताएंगे तो फिर बच्चा ईश्वर को न जान सकेगा, तो क्या आप समझते हैं, आपके बताने से वह ईश्वर को जान लेता है? तो अब तक सारे लोगों ने ईश्वर को जान लिया होता। क्योंकि सभी के मां-बाप तो बच्चों को बता देते हैं कि ईश्वर है, आत्मा है।
नहीं, इससे जानने का कोई संबंध नहीं है। बल्कि इससे जीवन में एक झूठ
की शुरुआत होती है जिसका फिर कोई अंत नहीं होता। जिस झूठ को आपने अपने बच्चों से दोहराया है, आपके बच्चे भी अपने बच्चों से दोहरा देंगे, बस इतना हो सकता है, इससे ज्यादा कुछ भी नहीं हो सकता। और क्या कोई ईश्वर ऐसी चीज है कि आप किसी को सिखा सकते हैं?
मैं एक अनाथालय में गया था। वहां के संयोजकों ने मुझसे कहा कि हम अपने बच्चों को धर्म की शिक्षा देते हैं! तो मैंने उनसे कहा कि यह बड़े आश्चर्य की बात होगी, क्योंकि मैं तो आज तक समझ ही नहीं पाया कि धर्म की भी शिक्षा हो सकती है! धर्म की साधना तो हो सकती है, लेकिन शिक्षा नहीं हो सकती। फिर भी आप कहते हैं, तो मैं समझना चाहूंगा--कैसी शिक्षा देते हैं? हां, हिंदू होने की शिक्षा हो सकती है, मुसलमान होने की शिक्षा हो सकती है, लेकिन धर्म की शिक्षा नहीं हो सकती। बच्चे को हिंदू बनाया जा सकता है, मुसलमान, जैन और ईसाई बनाया जा सकता है, लेकिन धार्मिक नहीं।
तो मैंने उनसे कहा कि मैं समझना चाहूंगा--धर्म की क्या शिक्षा आप देते हैं?
और अब तक दुनिया में बच्चों के साथ धर्म के नाम पर यही किया गया है-- उनको हिंदू बनाया जाता है, मुसलमान, ईसाई, जैन बनाया जाता है। और इस बनाए जाने से जितना अधर्म जमीन पर फैला है, किसी और बात से फैला है? हिंदू होना, मुसलमान होना, जैन होना कितनी कुरूपता की बात है, कितनी अग्लीनेस की बात है! कोई आदमी आदमी न हो, हिंदू हो, मुसलमान हो, जैन हो, यह कोई सौंदर्य की बात है? और यह जो खंडित आदमी है, जो एक समूह से बंध जाता है, इस बंधे हुए

आदमी ने कितने उपद्रव किए हैं, इसका कुछ पता है? कितनी हत्याएं की हैं, कितना रक्त बहाया है, इसका कोई पता है?
अगर मां-बाप अपने बच्चों को प्रेम करते हैं, तो वे कभी उनको हिंदू, मुसलमान और ईसाई होने की शिक्षा न देंगे। क्योंकि जमीन पर इतना उपद्रव हुआ है इन शिक्षाओं के कारण कि अब कोई मां और कोई बाप यह नहीं चाह सकता है कि उसका बच्चा भी हिंदू होकर कटे, या मुसलमान होकर कटे, या किसी को काटे, या मंदिर जलाए, या मस्जिद गिराए। जो मां-बाप अपने बच्चों को प्रेम करते हैं, उनके प्रेम का पहला लक्षण यह होगा कि बच्चे को मनुष्य की भांति बड़ा करें, हिंदू-मुसलमान की भांति नहीं। क्योंकि ये महामारियां, ये बड़े-बड़े रोग आदमी को कितने खड्डों में और अंधकार में ले गए हैं!
तो मैंने उनसे कहा कि यह तो हो सकता है कि आप हिंदू बनाते हों, मुसलमान बनाते हों, लेकिन धार्मिक होने की क्या शिक्षा देते होंगे?
उन्होंने कहा कि नहीं, आप देख कर प्रसन्न होंगे।
मैं उनके बच्चों को देखने गया। सौ के करीब बच्चे थे। उन्होंने खुद ही
उन बच्चों से पूछा कि बताओ, ईश्वर है?
उन सभी बच्चों ने हाथ ऊपर उठा दिए कि ईश्वर है।
उनको सिखाया गया था। उन्होंने पाठ सीख लिया था और हाथ उन्होंने ऊपर उठा दिए। और उन्होंने पूछा कि ईश्वर कहां वास करता है?
तो उन सबने अपने हृदय के ऊपर हाथ रख दिए कि यहां।
यह भी उनको सिखाया गया था। जैसे हम बच्चों को कवायद करना सिखा देते हैं और लेफ्ट टर्न और राइट टर्न सिखा देते हैं--बाएं घूमो, दाएं घूमो, रुको, ठहरो! वैसे ही उनको यह भी सिखा दिया गया था। ईश्वर कहां है? तो उन्होंने सबने हाथ उठा दिए--यहां।
मैंने एक छोटे से बच्चे से पूछा कि हृदय कहां है?
उसने कहा, यह तो हमें बताया नहीं गया, यह हमारी किताब में भी नहीं लिखा हुआ है।
उसे हृदय का कोई पता नहीं था। लेकिन जब उससे पूछा गया, ईश्वर कहां है?
तो उसने बताया, यहां। स्वभावतः जो उसे बताया गया था, जो उसे सिखाया गया था, वह उसने बता दिया था। लेकिन क्या वह जानता है कि यहां क्या है?
नहीं, परीक्षा उत्तीर्ण हो जाएगा, धर्म की शिक्षा पा लेगा। हो सकता है प्रथम भी आ जाए, पुरस्कार भी पा जाए, खुश होता हुआ घर लौट जाए। और शिक्षक भी खुश हों, संयोजक भी खुश हों कि बच्चा धर्म की शिक्षा लेकर घर आ गया। और बच्चा क्या लेकर घर आया है?
बच्चा धर्म लेकर घर नहीं आया है, कुछ शब्द लेकर घर आ गया है। और वे शब्द इतने खतरनाक सिद्ध होंगे कि धर्म को कभी भीतर प्रवेश न करने देंगे। क्योंकि जिंदगी में जब भी प्रश्न उठेगा--ईश्वर है? तो वह बचपन में सीखी गई बात जो मन के गहरे तल में प्रविष्ट हो गई होगी, वह कहेगी--है। और जब प्रश्न उठेगा--कहां? तो वह मन के गहरे तल में बैठ गई बात कहेगी--यहां। और यह हाथ भी झूठा होगा, यह गेस्चर झूठ होगा और यह उत्तर भी झूठ होगा कि ईश्वर है, क्योंकि यह सीखा हुआ है। धर्म के संबंध में जो भी सीखा हुआ है वह झूठा होता है। और जिंदगी भर, वह बूढ़ा हो जाएगा, फिर भी वह बचपन में जो सीख लिया था, उसका पीछा करेगा। और जब भी कोई पूछेगा--ईश्वर है? वह कहेगा--है। वह वही छोटा बच्चा, बूढ़ा हो गया है, कोई फर्क नहीं पड़ा, वही उत्तर है। जिंदगी भर उसी तरह का उत्तर दोहराता रहेगा। और जब उत्तर मिल गया तो खोजेगा क्यों? उसे जब मालूम हो गया कि ईश्वर है, तो अब और खोज क्या करेगा? दुर्भाग्य हो गया यह उत्तर, क्योंकि इसने खोज बंद कर दी।
दुनिया में ईश्वर की खोज बंद हो गई है, क्योंकि धार्मिक पुरोहितों और पंडितों ने इतनी शिक्षा दे दी है--इतनी शिक्षा--कि सभी मान गए हैं कि ईश्वर है, इसलिए खोज बंद हो गई है। कोई नहीं खोजता। खोजते हम उसे हैं--खोजते ही हम उसे हैं--जो हमारे सामने प्रश्न बन कर खड़ा हो जाता है, उत्तर बन कर नहीं। जो उत्तर बन जाता है, उसकी खोज बंद हो जाती है। ईश्वर होना चाहिए एक प्रश्न, एक उत्तर नहीं। आत्मा होनी चाहिए एक प्रश्न, एक उत्तर नहीं।

मैंने उनको कहा कि बच्चों को प्रश्न सिखाएं, उत्तर नहीं--अगर बच्चों
को धार्मिक बनाना है। आपको पता नहीं है कि ईश्वर है, तो अपने बच्चे को मत सिखाएं कि ईश्वर है। बच्चे को कहें कि मैं भी खोज रहा हूं, लेकिन अब तक मुझे कुछ पता नहीं चला। मेरे प्राण भी प्यासे हैं कि मैं जानूं कि यह क्या है जीवन। लेकिन मुझे पता नहीं है। तुम भी खोजना। हो सकता है मैं न खोज पाऊं, तुम मेरी खोज को पूरा करना। तुम भी पूछना, तुम भी जिज्ञासा करना।
तो बच्चे को सिखाएं जिज्ञासा, बच्चे को सिखाएं प्रश्न, बच्चे को सिखाएं इंक्वायरी। बच्चे को उत्तर न सिखाएं। अगर बच्चे को कभी धार्मिक बनाना है, तो उसको ऐसी जिज्ञासा सिखाएं कि जब तक वह खुद न जान ले, तब तक मानने को कभी राजी न हो। उसको इतना साहस सिखाएं कि जब तक वह न जान ले, तब तक दुनिया की कोई ताकत उसको मानने के लिए न झुका सके। वह चाहे मर जाए, लेकिन वह यह कहे कि मैं खोज लूंगा तभी स्वीकार करूंगा, तभी मानूंगा, उसके पहले नहीं। क्योंकि उसके पहले जो मान लेता है उसकी खोज बंद हो जाती है। जिसकी खोज बंद हो जाती है वह कभी ज्ञान को उपलब्ध नहीं होता है।
तो बच्चे को सिखाएं न कि ईश्वर है। बल्कि बच्चे के मन में जिज्ञासा और खोज, और इस खोज के लिए आप कहें अपने हृदय को खोल कर कि मैं भी नहीं जानता हूं, मैं भी खोज रहा हूं। और जब बच्चा बड़ा होगा और अपने पिता और गुरु के बाबत यह बात जानेगा कि कितने विनम्र हृदय लोग थे, कि उन्होंने अहंकार नहीं किया जानने का। एक छोटे से बच्चे के सामने भी उन्होंने धोखा नहीं देना चाहा। उन्होंने सचाई और ईमानदारी से कहा कि हम भी खोजते हैं; अभी रास्ते पर हैं, हम कहीं पहुंचे नहीं हैं। ऐसे पिता और गुरु के प्रति आदर से भर जाना बहुत स्वाभाविक है, बहुत सहज है।
गुरु और पिता अहंकार के कारण सिखाते हैं, कोई बच्चे के हित के कारण नहीं। बच्चे के सामने यह स्वीकार करने में उनके अहंकार को चोट लगती है कि मैं नहीं जानता हूं। बच्चे के सामने तो वे सर्वज्ञ बन जाते हैं--मैं सब कुछ जानता हूं। छोटा सा बच्चा है, उसके सामने कोई भी सर्वज्ञ बन सकता है! लेकिन बच्चा कल बड़ा हो जाएगा और आपकी सर्वज्ञता की सब धूल उड़ जाएगी।
और वह जानेगा कि आप भी वैसे ही अज्ञानी हो, जैसा वह है। तब क्या होगा? तब उसके मन से आपके प्रति अगर अनादर उठे तो इसमें आश्चर्य है? इसमें कोई आश्चर्य नहीं।
आप इन बातों को सिखा कर बच्चे को धार्मिक नहीं बना रहे हैं। बच्चे को खोज सिखाइए! और खोज का पहला सूत्र है--संदेह, डाउट। संदेह सिखाइए। उससे कहिए कि तू संदेह कर। जल्दी से मान मत ले किसी बात को। सोच-विचार कर, साहसपूर्वक, निर्भयता से खोज कर। ये गुण सिखाइए--साहस, अभय, फियरलेसनेस सिखाइए। क्योंकि जो बच्चा भय सीख लेता है, वह कभी खोज नहीं कर सकेगा। लेकिन हम तो धार्मिक बनाने के लिए बच्चे को भय सिखाते हैं। हम कहते हैं, अगर ईश्वर को न माना तो नरक में डाल देंगे। भगवान जो हैं, वे नरक में भेज देते हैं। आग है वहां, आग में जलाते हैं!
छोटा सा बच्चा है, आप क्या कर रहे हैं उसके साथ? पूरी मनुष्य-जाति के साथ यह पाप हुआ है कि धर्म के नाम पर भय सिखाया गया है--नर्क का भय, पाप का भय। और सिखाया गया है प्रलोभन--स्वर्ग का प्रलोभन, पुण्य का, अच्छे जन्मों का। प्रलोभन और भय दोनों संगी-साथी हैं। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
तो हम सिखाते हैं भय और सिखाते हैं प्रलोभन। प्रलोभन कि अगर अच्छे बनोगे तो स्वर्ग जाओगे। और भय कि अगर भगवान को नहीं माना, अस्वीकार किया, नास्तिक बने, संदेह किया, तो नरक जाओगे। बच्चे को हम धर्म थोड़े ही सिखा रहे हैं। हम सिखा रहे हैं फियर।
और क्या आपको पता है, दुनिया में सबसे ज्यादा अधार्मिक वृत्ति कौन सी है? सबसे ज्यादा अधार्मिक, सबसे ज्यादा इररिलीजस भय है, फियर है। क्योंकि जो भयभीत है, वह कभी परमात्मा को नहीं जान सकेगा, सत्य को नहीं जान सकेगा। जो भयभीत है वह यात्रा ही नहीं करता है अज्ञात की तरफ। वह तो जो ज्ञात है, उसी के घेरे में चलता है। जहां-जहां उजाला है और जहां-जहां साफ-साफ रास्ते

हैं, वहीं-वहीं जाता है। अंधेरे रास्तों पर, अनजान-अपरिचित मार्गों पर, जो भयभीत है वह कभी जाता ही नहीं।
और भगवान है सबसे ज्यादा अनजान, सबसे ज्यादा अपरिचित, सबसे ज्यादा अंधकार से भरा हुआ। वहां तो भयभीत कभी कदम ही नहीं रखता है। तो जब उसे भगवान की तरफ जाना होता है, तो गांव के पुजारी ने जो मंदिर बनाया हुआ है, वह उसमें चला जाता है। क्योंकि भगवान तो है अपरिचित, यह मंदिर बिल्कुल परिचित है। यह आदमी का बनाया हुआ है, बिल्कुल परिचित है। और भगवान है बिल्कुल अपरिचित, आदमी का बनाया हुआ नहीं है। इसलिए उस अपरिचित भगवान को तो छोड़ देता है, यह परिचित जो मंदिर है, मस्जिद है, इसमें चला जाता है। और तृप्ति कर लेता है कि मैं धार्मिक हो गया।
आदमी भी कहीं भगवान का मंदिर बना सकता है? और आदमी जो बनाएगा, वह भगवान
का मंदिर हो सकता है?
एक छोटी सी कहानी आपको कहूं।
एक रात एक चर्च के द्वार पर एक नीग्रो आदमी ने आकर दरवाजे पर दस्तक दी, दरवाजा हिलाया। दिन के प्रकाश में भी आ सकता था, लेकिन वह चर्च था गोरी चमड़ी वालों का, वहां काली चमड़ी के लोग नहीं आ सकते थे। तो दिन में तो डर था कि उसे कोई घुसने न देगा। लेकिन सोचा, रात के अंधेरे में हो सकता है पादरी भी दया खा जाए। ऐसे पादरी कभी किसी पर दया खाता नहीं है! सोचा लेकिन रात के अंधेरे में अकेला देख कर, कोई भी न हो; रोऊं, गिड़गिड़ाऊं, आंसू बहाऊं, तो शायद दया खा जाए। ऐसे, जैसा मंदिर का भगवान पत्थर का होता है, मंदिर का पुजारी उससे भी ज्यादा पत्थर का होता है, वह कभी दया नहीं खाता। लेकिन फिर भी आशा तो आदमी की बड़ी थी। सोचा, शायद दया खा जाए किसी कमजोर क्षण में और भीतर आ जाने दे।
उस गांव में एक ही चर्च था--सफेद चमड़ी के लोगों का चर्च था। नीग्रो और काले लोगों के पास चर्च नहीं था, क्योंकि उनके पास पैसे ही नहीं थे कि भगवान का निर्माण कर सकें! जिनके पास पैसे होते हैं वे भगवान को बना लेते हैं; जिनके पास नहीं होते वे बिना भगवान के रह जाते हैं। क्योंकि भगवान तो एक बनावट है आदमी की, तो पैसा हो तो बन सकता है, न पैसा हो तो कैसे बनेगा? इसलिए जिनके पास ज्यादा होता है पैसा, उनके भगवान बड़े होते हैं, उनके मंदिर बड़े होते हैं। जिनके पास नहीं होता, उनके छोटे भगवान होते हैं। भगवान भी एक कमोडिटी है, जो पैसे से खरीदी जाती है। एक सामान है, जो बाजार में बिकता है!
सोचा कि शायद दया खा जाए एक गरीब के रोने पर, तो वह रात के अंधेरे में गया। लेकिन पादरी को धोखा देना बहुत मुश्किल है, चाहे दिन हो, चाहे रात। पादरी हमेशा चमड़ी को बहुत गौर से पहचान लेता है। फिर उसके हिसाब से दया- ममता रखता है। देखा कि नीग्रो है। तो उसने कहा, कैसे आए इतनी रात? उस नीग्रो ने कहा कि मैं भी भगवान की प्रार्थना करना चाहता हूं। मैं भी भगवान के दर्शन करना चाहता हूं। पादरी ने कहा... ।
अगर कोई पुराना जमाना होता, तो वह कहता, हट शूद्र यहां से! यहां आने की तेरे लायक जगह नहीं। जैसा कि पुराने जमाने के पंडित और मंदिर के पुजारी कहते। लेकिन जमाना बदल गया है और जमाने की हवा बदल गई है, और अब किसी को इस भांति कहना खतरनाक भी हो सकता है, अदालत तक भी ले जा सकता है। तो उस चर्च के पादरी ने होशियारी की बात कही।
और यह तो आप जानते ही हैं कि पादरी, पुरोहित सबसे ज्यादा होशियार और कनिंग और चालाक लोग हैं। इसलिए सबसे ज्यादा चालाक लोग हैं, कि आप तो कपड़ा बेचते होंगे, सोना बेचते होंगे, कोई और तरह की दुकान करते होंगे, पादरी और पुरोहित भगवान को बेचने का धंधा करते हैं। ये सबसे ज्यादा चालाक लोग हैं। इन्होंने भगवान का व्यवसाय बना लिया है। इनसे ज्यादा होशियार और कौन हो सकता है? और एक ऐसा व्यवसाय बनाया है, जो कभी नहीं चुकेगा, हमेशा चलेगा। तो उस चालाक पादरी ने उस नीग्रो को कहा कि मेरे मित्र, मंदिर में आकर क्या होगा? जब तक तुम्हारा हृदय पवित्र न हो, मन शांत न हो, तब तक मंदिर में आने से क्या होगा? भगवान के दर्शन नहीं हो सकते।

हालांकि और भी लोग आते थे, लेकिन वे सफेद चमड़ी के होते थे, उनसे उसने
यह शर्त कभी नहीं बताई थी कि मन शांत करो, पवित्र करो, तब मंदिर में आओ। लेकिन इसको बताई।
वह नीग्रो वापस लौट गया। उसने सोचा, मन को शांत और पवित्र करूं, फिर आऊंगा। कोई तीन महीने बीत गए, वह नहीं आया। चर्च के पादरी ने एक दिन रास्ते पर उसे रोका। रोकने का कारण भी मालूम था, और एक नई वजह आ गई थी। रास्ते पर चलते उस नीग्रो को देखा तो वह पादरी भी हैरान हुआ। उसकी आंखें किसी बहुत गहरी शांति से भरी हुई मालूम पड़ती थीं। उसके चेहरे पर कोई नई रौनक, कोई नई चमक आ गई थी। उसके पैरों में कोई नई जागरूकता मालूम पड़ती थी। वह कुछ दूसरा ही आदमी हो गया था। तो उसे रोका और कहा कि मेरे मित्र, आए नहीं तुम फिर वापस?
उसने कहा, मैं कैसे आता! बड़ी मुश्किल में पड़ गया। तुमने कहा था, मैं मान कर मन को पवित्र और निर्दोष करने में लग गया। और रात रोता था और प्रार्थना करता था। तीन महीने बीत जाने पर एक दिन रात सपने में भगवान आए और उन्होंने मुझसे पूछा कि तू किसलिए रोता है? किसलिए प्रार्थनाएं करता है? तो मैंने कहा कि वह जो हमारे गांव का मंदिर है, जो चर्च है, उसमें मैं जाना चाहता हूं। इसीलिए अपने मन को पवित्र कर रहा हूं। तो भगवान हंसने लगे और उन्होंने कहा, तू बिल्कुल पागल है। उस मंदिर में तू न पहुंच पाएगा। बहुत कठिन है वहां पहुंचना। मैं खुद दस साल से घुसने की कोशिश कर रहा हूं, वह पादरी घुसने नहीं देता! तो जब मैं ही हार गया, थक गया, तू कैसे जा पाएगा? बहुत कठिन है। तू यह आशा छोड़ दे। मुझको पाना आसान है, उस पादरी के मंदिर में घुसना बहुत कठिन है।
और मैं आपसे कहता हूं कि दस साल तो भगवान ने इसलिए कहे होंगे कि कहीं
वह बेचारा नीग्रो घबड़ा न जाए। सचाई तो यह है कि दस हजार साल से वे घुसने की कोशिश कर रहे हैं, और उस चर्च में ही नहीं, दुनिया के किसी मंदिर में अब तक नहीं घुस पाए हैं। और कभी घुस भी नहीं सकेंगे। पादरी बहुत होशियार है, पंडित बहुत होशियार है, पुरोहित बहुत होशियार है, वह भीतर नहीं घुसने देगा। क्यों? क्यों नहीं घुसने देगा? क्योंकि जहां परमात्मा का प्रवेश हो जाए, वहां प्रेम आ जाता है। और जहां प्रेम आ जाए, वहां से व्यवसाय विलीन हो जाता है। और भगवान को वह घुसने भी दे, तो भी भगवान न घुस पाएंगे, क्योंकि आदमी का बनाया हुआ मंदिर बहुत छोटा है, भगवान बहुत बड़े हैं। आदमी का मंदिर है छोटा सा और परमात्मा है बहुत विराट और अनंत। वह कैसे उसमें प्रवेश कर पाएगा?
तो जब हमारा यह सीखा हुआ धर्म भय पर खड़ा होता है, तो हम मंदिर में जाकर तृप्ति कर लेते हैं और मुक्त हो जाते हैं, समझते हैं कि धर्म उपलब्ध हो गया।
नहीं, धर्म तो बहुत बड़ा एडवेंचर है--अज्ञात सागर में यात्रा के जैसा; अज्ञात पर्वतों के शिखरों पर चढ़ने जैसा; अंधेरे मार्गों पर, अपरिचित मार्गों पर--राजपथों पर नहीं--अंधेरे और अकेले मार्गों पर चलने जैसा। उसके लिए चाहिए साहस, उसके लिए चाहिए अभय, उसके लिए चाहिए अदम्य जिज्ञासा, उसके लिए चाहिए प्राणों को दांव पर लगाने का साहस। अपने बच्चे को ये सिखाएं। ईश्वर की बातें न सिखाएं, ये गुण दें, तो निश्चित ही आपका बच्चा किसी दिन खोज पाएगा।
धर्म की शिक्षा नहीं हो सकती, लेकिन धार्मिक गुणों के विकास के लिए अवसर हो सकते हैं। धर्म तो खुद ही जानना होता है, लेकिन अवसर जुटाए जा सकते हैं जिनके बीच एक धार्मिक व्यक्तित्व का जन्म हो जाए। धार्मिक व्यक्तित्व का लक्षण होगा--अभय, साहस, जिज्ञासा, खोज।
लेकिन हम तो उलटी बातें सिखाते हैं। हम तो सिखाते हैं विश्वास। विश्वास से आदमी काहिल और कमजोर हो जाता है। उसकी खोज बंद हो जाती है। वह इंपोटेंट हो जाता है। उसके जीवन में कोई बल नहीं रह जाता। हम तो सिखाते हैं भय। हम तो कहते हैं, भगवान से डरो। हम तो कहते हैं, गॉड फियरिंग बनो। इससे ज्यादा बेहूदी बात क्या कोई और हो सकती है कि कोई भगवान से डरे?
और जिससे हम डरेंगे, क्या उसको हम कभी प्रेम कर सकते हैं? जिससे हम डरते

हैं, उसको हम घृणा करते हैं। जिससे हम डरते हैं, उससे घृणा स्वाभाविक है। जिससे हम प्रेम करते हैं, उससे तो हम कभी भी नहीं डरते। यह सारी दुनिया में भगवान को भय करो, भगवान से डरो, इसका यह परिणाम हुआ है कि सारी दुनिया आज भगवान के खिलाफ खड़ी हो गई है। यह उस घृणा का इकट्ठा विस्फोट है, जो हजारों साल से मनुष्य के मन में इकट्ठी होती रही है। क्योंकि जिसको हम भय करते हैं, उसके प्रति घृणा पैदा हो जाती है। जिसको हम भय करते हैं, उसको हम कभी प्रेम तो कर ही नहीं सकते। प्रेम और भय का कोई नाता नहीं है।
लेकिन ये बातें हम सिखाते हैं और हम सोचते हैं कि हम कुछ सिखा रहे हैं। और हम सिखाते हैं जो कि खुद कुछ भी नहीं जानते। तो अगर इससे जीवन उलझता गया हो तो आश्चर्य नहीं है। इसको मैं जघन्य से जघन्य अपराधों में से एक कहता हूं, जो कोई मां-बाप अपने बच्चों के साथ कर सकते हैं, अगर वे इस तरह की शिक्षाएं दें। अगर वे बच्चे जीवन में भटक जाएं, तो आप जिम्मेवार होंगे। और बच्चे भटक गए हैं और आप जिम्मेवार हैं। सब कुछ गलत है। सब कुछ गलत है। धर्म के नाम पर जो भी हम सिखाते हैं, वह गलत है।
नहीं लेकिन, कुछ और बातें जरूर जीवन में खड़ी की जा सकती हैं, उनमें हम सहयोगी हो सकते हैं। और अगर हम उन बातों में सहयोगी हो जाएं और बच्चे को एक जिज्ञासा दे सकें, तो उसके जीवन में जरूर वह शायद जानने में समर्थ हो जाए। और हम भी उसको जिज्ञासा देने में अपने ज्ञान के अहंकार से मुक्त हो सकेंगे और शायद हम भी जानने में समर्थ हो सकेंगे।
तो मैं नहीं कहता हूं कि आप बच्चों को सिखाएं कि ईश्वर है या कि ईश्वर नहीं है; आत्मा है या कि आत्मा नहीं है। यह कुछ भी सिखाने की जरूरत नहीं है--न आस्तिकता और न नास्तिकता। जिज्ञासा सिखाएं। और जिज्ञासा जब अदम्य हो जाती है, तो मनुष्य जरूर सत्य की यात्रा कर पाता है।

पूछा हैः संदेह मेरे मन को सताते हैं। जीवन का क्या अर्थ है? इस संबंध में संदेह उठते हैं। और संदेह से उदासी आती है, विषाद आता है।

एक बात तो सबसे पहले जाननी जरूरी है। हम संदेह करना जानते ही नहीं, इसीलिए संदेह आते हैं। संदेह करना हम जानते ही नहीं। और जब संदेह आते हैं, तो जो हमें विषाद पैदा होता है, उदासी पैदा होती है, वह संदेह के कारण नहीं होती है। वह होती है, हमने पहले से जो विश्वास कर रखे हैं, उनके कारण। संदेह से घबड़ाहट लगती है, क्योंकि हमारे विश्वास हिलते हैं और डगमगाते हैं, और हम चाहते हैं कि विश्वास न डगमगाएं।
मैं अपने गांव जाता था। कभी वहां दिन, दो दिन रुकता था। एक बार वहां कोई आठ दिन रुका। बचपन में जिन्होंने मुझे पढ़ाया, अब तो वे बूढ़े हुए, मेरे एक शिक्षक, उनके घर रोज जाता था। आठ दिन रुका था, दो दिन उनके घर गया। तीसरे दिन सुबह उनका लड़का आया और एक चिट्ठी लाया और उसमें उन्होंने लिखा कि कल से मेरे घर मत आना। आते हो तो मुझे बहुत खुशी होती है। लेकिन नहीं, अब इस खुशी को मुझे छोड़ना पड़ेगा और मैं प्रार्थना करता हूं कि मेरे घर अब दुबारा मत आना। क्योंकि कल तुमसे जो बातें हुईं, उसके बाद जब मैं सुबह भगवान की प्रार्थना को बैठा, तो मुझे शक आने लगा, संदेह आने लगा कि पता नहीं, ये भगवान हैं भी या मैं मिट्टी की मूर्ति रखे हुए बैठा हूं! तो शक और संदेह ने मेरा चित्त बहुत अशांत कर दिया। रात भर मैं सो नहीं सका हूं। तो अब कृपा करके मेरे घर मत आना। मैं बहुत दुख से यह लिख रहा हूं। लेकिन नहीं, यह संदेह अगर बढ़ जाए मेरे इस बुढ़ापे में, अस्सी वर्ष की मेरी उम्र हुई, मरते वक्त संदेह पकड़ ले, तो भटक जाएगी सारी यात्रा। जीवन भर, चालीस वर्ष से मैं प्रार्थना करता हूं, पूजा करता हूं। और तुमने आकर मेरी सारी पूजा और प्रार्थना गड़बड़ कर दी है, मेरी सारी शांति खंडित कर दी है!
मैंने उनको पत्र लिखा कि एक बार तो मैं और आऊंगा, चाहे आप कुछ भी करें।
एक बार आना मेरा बहुत जरूरी भी है। अशांति इसलिए नहीं आ रही है कि संदेह आ गया है, अशांति इसलिए आ रही है कि संदेह अधूरा है। मैं उसे पूरा कर दूं, फिर अशांति नहीं आएगी। वह जो थोड़ा सा विश्वास अटका रह गया है वह अशांति पैदा कर रहा है, संदेह अशांति पैदा नहीं कर रहा।

मैं गया। वे बहुत घबड़ाए हुए थे। मैंने उनसे कहा कि चालीस वर्ष पूजा की, प्रार्थना की, मूर्ति को भगवान जाना। चालीस वर्ष, तीन-तीन घंटे रोज, और एक घंटा मैंने बात की और चालीस वर्ष की पूजा और प्रार्थना सब डांवाडोल हो गई? ऐसी पूजा-प्रार्थना का मूल्य कितना है? अर्थ कितना है?
मैंने उनसे कहा कि मैं कुछ भी करूं, आपको संदेह में नहीं ला सकता। संदेह आपके भीतर रहा होगा, चालीस वर्ष ही रहा होगा। लेकिन आपने जबरदस्ती उसे भीतर छिपा दिया होगा। ऊपर से विश्वास के वस्त्र ओढ़ लिए होंगे। जिस दिन यह मूर्ति पहले दिन रखी थी, उस दिन भी आपके मन में संदेह रहा होगा। असल में, संदेह जा कैसे सकता है बिना ज्ञान के? बिलीफ से, विश्वास से, श्रद्धा से संदेह जा कैसे सकता है? हां, छिप सकता है, जा नहीं सकता। तो आपने विश्वास कर लिया होगा कि ये भगवान हैं। और जिस दिन विश्वास किया होगा, उस दिन भी भीतर संदेह कह रहा होगा कि अरे, यह मिट्टी की मूर्ति को भगवान! लेकिन दबा दिया होगा उसको कि संदेह भटकाता है, जो संदेह करता है वह भटक जाता है। विश्वास करो, विश्वास फलदायी है। ऐसा कह-कह कर मन को समझा लिया होगा। फिर रोज-रोज पूजा करते-करते, आखिर मन की भी सामर्थ्य है, कब तक वह संदेह करता! धीरे-धीरे जब आपने नहीं सुना होगा, उसने आवाज देनी बंद कर दी होगी। संदेह भीतर पड़ा हुआ सो गया होगा और आप निश्चिंत हो गए थे। आप समझते थे संदेह समाप्त हो गया। मैंने फिर से आपसे बात की। सोए हुए संदेह को फिर एक मौका मिला। वह बाहर वापस निकल आया और उसने आपकी नींद खराब कर दी।
लेकिन यह संदेह का कसूर नहीं है कि आपने चालीस साल व्यर्थ गंवा दिए।
वह तो पहले ही दिन खड़ा हो रहा था कि मत इस यात्रा पर जाओ। लेकिन आपने उसको दबा दिया। वह अभी भी आपका साथ देने को तैयार है--चालीस साल के बाद भी। और चालीस साल जिन विश्वासों को पोसा, वे आज भी इनकार करने को तैयार हैं, साथ छोड़ने को तैयार हैं। चालीस साल के पोषण के बाद भी विश्वास साथ छोड़ सकते हैं। चालीस साल दमन के बाद भी संदेह वापस जीवित हो सकता है।
तो मैंने कुछ इस संबंध में उनसे कहा। मैंने उनसे कहा कि जो विश्वास से शुरू करता है, वह संदेह पर समाप्त होता है। और जो संदेह से शुरू करता है, वह ज्ञान पर समाप्त होता है। जो संदेह से शुरू करेगा, और जितना संदेह किया जा सकता है, करेगा जीवन में, एक दिन वह ऐसी जगह पहुंच जाएगा जहां संदेह करना असंभव हो जाता है। और तब संदेह समाप्त हो जाता है और ज्ञान का जन्म होता है। और जो आदमी पहले से ही संदेह को दबा देता है, वह कभी ऐसी जगह नहीं पहुंचता जहां संदेह समाप्त हो जाए। दबा हुआ संदेह किसी भी मौके पर वापस खड़ा हो सकता है। वह भीतर हमेशा मौजूद है।
तो आपको अगर संदेह सताते हैं, उसका मतलब यह है कि आप विश्वास से पीड़ित होंगे। नहीं तो संदेह सताता नहीं। अगर कोई विश्वास न हो, तो संदेह सताता नहीं। संदेह तो एक मुक्ति बन जाती है, एक खोज बन जाती है। लेकिन अगर कोई विश्वास हो, तो संदेह एक कांफ्लिक्ट बन जाती है, एक द्वंद्व बन जाता है। भीतर विश्वास होता है और संदेह उस विश्वास को तोड़ने लगता है। हम विश्वास को सम्हालना चाहते हैं, संदेह विश्वास को गिराने लगता है। एक द्वंद्व खड़ा हो जाता है। द्वंद्व से घबड़ाहट होती है, बेचैनी होती है, अशांति होती है। हम कोशिश करते हैं कि विश्वास आ जाए, संदेह मिट जाए, तो शांति हो जाएगी। मैं आपसे निवेदन करता हूं, ऐसी शांति झूठी होगी, जो संदेह को दबा कर लाई जाती है। शांति तो वह सच्ची है, जो संदेह के पूरे प्रयोग से आती है। उस शांति को तोड़ने के लिए फिर संदेह कभी वापस नहीं लौटता। वह हमेशा के लिए चला गया होता है।
संदेह तो मित्र है। जब तक ज्ञान का आलोक न आ जाए, तब तक संदेह साथी की तरह ज्ञान की यात्रा पर ले जाता है। संदेह तो मित्र है, जो कहता है, ज्ञान की तरफ चलो। और जब आप किसी विश्वास को पकड़ते हैं, तो वह कहता है, मत पकड़ो। यह तो विश्वास है, यह आपका जानना नहीं है। यह संदिग्ध है। लेकिन मित्र को आप इनकार करते हैं और विश्वास को पकड़ते हैं। विश्वास शत्रु है, क्योंकि वह ज्ञान तक जाने से रोकता है। संदेह मित्र है, क्योंकि वह यह कहता है कि ज्ञान के पहले किसी बात को मानने को मैं राजी नहीं हूं।

लेकिन हजारों वर्ष की शिक्षा का यह परिणाम हुआ है कि संदेह मित्र नहीं मालूम होता और विश्वास मित्र मालूम होता है। विश्वास तो जहर है, नशा है। संदेह तो बड़ा मित्र है। वह तो यह कहता है कि मानना मत, जब तक तुम न जान लो। वह तो उसी समय शांत होगा, जब मैं जान लूंगा। उस वक्त संदेह कहेगा, ठीक है, आ गई मंजिल। अब मैं विदा होता हूं। अब मेरा काम समाप्त हो गया। तुम वहां पहुंच गए, जहां असंदिग्ध कुछ उपलब्ध हो गया है, जिस पर संदेह नहीं किया जा सकता।
तो संदेह तो निरंतर साथ देना चाहता है और आप कहते हैं, तकलीफ दे रहा है! तकलीफ देगा तभी, जब आपने विश्वास पकड़ लिए होंगे। कृपा करें, विश्वासों को छोड़ दें। संदेह के साथी हो जाएं। खोजें! खोजें! उस दिन तक संदेह का साथ जरूरी है, जब तक कि संदेह खुद कहे कि बस आ गया मुकाम, अब यहां मेरा कोई भी काम नहीं। अब वह चीज आपने जान ली है, जिसको आप मानते थे तो मैं खड़ा हो जाता था और संदेह करता था कि नहीं, अभी मानना मत। अब तो वह जगह आ गई है, जहां मेरी कोई जरूरत नहीं। अब आप जानते हैं। मानना जब तक होता है, तब तक संदेह खड़ा होता रहता है। जिस दिन जानना आ जाता है, उस दिन संदेह विलीन हो जाता है। तो संदेह कष्ट नहीं दे रहा है। कष्ट दे रहे हैं आपके विश्वास। संदेह बढ़ता है तो विश्वास की नींव डगमगा जाती है, तो हमारे प्राण कंपते हैं, क्योंकि सारा जीवन हमने विश्वास पर खड़ा किया हुआ है। संदेह से घबड़ाएं न। अगर ज्ञान की यात्रा पर ही जाना है, तो संदेह की नौका पर ही वह यात्रा करनी होगी। जो ठीक से संदेह करना सीख लेता है, वह ठीक से यात्रा करना सीख जाता है।
और जीवन का अर्थ खोजना है, तब तो विश्वास करना ही मत, नहीं तो न मालूम किस प्रोपेगेंडा के चक्कर में आप पड़ जाएंगे। विश्वास है क्या? एक तरह का प्रोपेगेंडा है, एक आदमी हिंदू घर में पैदा हो गया है, तो बचपन से वह एक तरह का प्रोपेगेंडा सुन रहा है। एक तरह की बातें सुन रहा है। ये धर्मग्रंथ हैं, ये भगवान हैं, यह मंदिर है, यह पूजा है, यह मंत्र है--यह सुन रहा है! बचपन से उसके दिमाग को कंडीशन किया जा रहा है, उसको समझाया जा रहा है कि यह है।
व्यापारियों को बहुत बाद में पता चला प्रोपेगेंडा, एडवरटाइजमेंट का रहस्य। सबसे पहले धार्मिक पुरोहितों को पता चल गया था। अभी तो व्यापारी अब कहना शुरू करते हैं कि बस लक्स टायलेट साबुन ही सबसे अच्छा है! धार्मिक बहुत दिन पहले से कहते थे कि हमारी किताब ही सबसे अच्छी है! और एक बात अगर बहुत बार दोहराई जाए, तो मनुष्य के मन पर उसका संस्कार बैठ जाता है। अडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्मकथा में लिखा हैः ऐसा कोई असत्य नहीं है जिसे बार-बार दोहरा कर सत्य न बनाया जा सके। ठीक लिखा है, अनुभव से लिखा है। ऐसा गैर-अनुभव से नहीं लिखा है। उसने जिंदगी भर यही किया। कोई भी असत्य बोला और ठीक से उसका प्रोपेगेंडा किया, थोड़े दिनों में लोगों ने मान लिया।
उन्नीस सौ सत्रह में रूस में क्रांति हुई। उसके बाद जो लोग वहां हुकूमत में आए, उन्होंने पूरे मुल्क को समझाना शुरू कियाः ईश्वर नहीं है, आत्मा नहीं है, धर्म अफीम का नशा है। पहले लोग हंसे होंगे। फिर धीरे-धीरे सुनते-सुनते आदी हो गए होंगे। कोई पंद्रह-बीस साल बाद बीस करोड़ का मुल्क यह मानने लगा कि न कोई ईश्वर है, न कोई आत्मा है। बीस करोड़ का मुल्क यह स्वीकार कर लिया कि कोई आत्मा, ईश्वर कुछ भी नहीं, बस मनुष्य शरीर है और मृत्यु पर सब समाप्त हो जाता है।
आप कहेंगे, बड़े नासमझ लोग हैं कि बीस साल का प्रचार किया और मान लिया!
और आप जो मान रहे हैं, वह क्या है? वह दो हजार साल का प्रचार है, तीन हजार साल का प्रचार है। और क्या है? कोई हिंदू है, यह क्या है? कोई मुसलमान है, यह क्या है? एक तरह का प्रचार है। जो बच्चे के मन पर हम बचपन से डालते हैं, वह उसी तरह का मानने के लिए राजी हो जाता है। मरने के लिए राजी हो सकता है, मानने की तो बात दूर। एक मूर्ति टूट जाए, तो एक आदमी मरने को राजी हो सकता है कि यह मूर्ति मेरे भगवान की है! मैं अपनी जान लगा दूंगा, लेकिन

इसको बचाऊंगा! यह क्या है? यह मस्तिष्क को संस्कारित करना है, कंडीशन करना है।
पावलोव नाम का एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक हुआ। उसने जीवन भर कुत्तों
पर प्रयोग किए और कुछ अनूठे नतीजे निकाले। और बड़ा नतीजा तो यह निकाला कि आदमी का दिमाग भी कुत्तों के दिमाग की भांति ही संस्कारित किया जा सकता है।
एक कुत्ते पर जिस पर वह प्रयोग करता था, उसको वह रोज रोटी देता था तो रोटी सामने आते ही कुत्ते की जीभ बाहर निकल आती थी और लार टपकने लगती थी। रोटी देने के साथ जब लार टपकती थी, तभी वह घंटी भी बजाता था। फिर पंद्रह दिन के बाद रोटी तो नहीं दी, सिर्फ उसने घंटी बजाई। कुत्ते की जीभ से लार टपकने लगी।
अब घंटी और कुत्ते की जीभ से लार टपकने का कोई भी संबंध नहीं है। रोटी
दी जाए तो कुत्ते की जीभ से लार टपके, यह तो समझ में आता है। लेकिन घंटी बजाई जाए और लार टपके, यह बिल्कुल समझ में नहीं आता। लेकिन पंद्रह दिन तक रोटी दी गई, लार टपकी, तभी घंटी बजाई गई। तो घंटी का बजना और रोटी का मिलना संयुक्त हो गया उसके मन में। अब सिर्फ घंटी बजाई गई, लार टपकने लगी! अब यह जो लार टपक रही है, यह पंद्रह दिन की कंडीशनिंग का परिणाम है।
आप एक मंदिर के सामने से निकलते हैं और आपके हाथ ऐसे जुड़ जाते हैं! आपको पता ही नहीं चलता कि ये हाथ कैसे जुड़ गए। आपको बचपन से बताया गया है कि ये भगवान हैं! ये भगवान हैं, ये भगवान हैं--यह कहता ही चला गया आपका समाज। आपके हाथ भी उठने लगे कि ये भगवान हैं। इससे ज्यादा कुछ भी नहीं है वहां। आपके मस्तिष्क में प्रचारित कर दी गई है एक बात। और जैसे एक घंटी के बजने से लार टपकने का कोई संबंध नहीं है, वैसे ही एक पत्थर की मूर्ति से हाथ जुड़ने का भी कोई संबंध नहीं है--कोई संबंध ही नहीं है किसी तरह का। लेकिन एक कंडीशनिंग हो गई, दिमाग राजी हो गया, दिमाग ने प्रचार पकड़ लिया। पकड़ लिया और वह कहने लगा, करने लगा।
एक मेरे मित्र हैं, मेरी बातें सुनते-सुनते उनको ऐसा ख्याल आया कि यह बात तो ठीक है। वे तो किसी भी मंदिर के सामने से निकलते थे तो हाथ जोड़ते थे। भयभीत इतने थे कि न मालूम कौन सा भगवान नाराज हो जाए! जिस मंदिर के सामने से निकलें, उसी का... कहीं हनुमान जी का मंदिर है, कहीं शंकर जी का! न मालूम कौन नाराज हो जाए। और न मालूम कौन इनमें ताकतवर है, कुछ पक्का पता नहीं, इसलिए सभी को हाथ जोड़ते थे। जितना भयभीत आदमी होता है, उतना ही ज्यादा यह मुश्किल हो जाता है। यह सब फियर कांप्लेक्स है। इसका धर्म से, पूजा से कोई संबंध नहीं है। भय है भीतर।
मेरी बातें सुनते थे, तो उन्होंने एक दिन बड़ी हिम्मत की और एक मंदिर
के सामने से बिना हाथ जोड़े निकल गए। लेकिन दो सौ कदम के बाद वापस लौटना पड़ा। रात में आकर मुझसे कहा कि बड़ी मुश्किल हो गई थी। मुझे तो ऐसा लगा कि न मालूम क्या हो जाएगा। चला तो गया हिम्मत किए दो सौ कदम, लेकिन फिर मैंने सोचा कि अरे छोड़ो भी, किसकी बातचीत में पड़े हो! पता नहीं भगवान नाराज हो जाएं! इतने दिन से हाथ जोड़ते थे! तो मैंने सोचा, कोई देख भी नहीं रहा, कोई मतलब भी नहीं। मैं वापस लौट आया। मैंने हाथ जोड़े। और तब मुझे शांति मिली जब मैंने हाथ जोड़े। नहीं तो मेरा मन बड़ा अशांत हो गया था।
यह आप रोज सुबह पूजा करते हैं, एक दिन नहीं करते हैं तो कहते हैं, आज मन बड़ा अशांत है, पूजा नहीं की। तो आप सोचते होंगे, पूजा से शांति मिलती थी। नहीं, मन एक चीज के लिए कंडीशंड हो गया, संस्कारित हो गया। एक चीज जड़ आदत की तरह पकड़ गई। और कोई भी चीज पकड़ाई जा सकती है। कोई भी चीज पकड़ाई जा सकती है। हजारों साल का प्रचार है, चीजें पकड़ जाती हैं। हमारा मन उनको पकड़ लेता है और उनके अनुसार हम जीने लगते हैं और हम सोचते हैं कि यह धर्म हो रहा है।
इसी भांति हमारे सारे विश्वास हैं, जो प्रचारित किए गए हैं, उनको हमने पकड़ लिया है। विचार और विश्वास हैं दूसरों के, संदेह है मेरा। तो मेरे प्राण संदेह करते हैं और विश्वास मुझे नीचे दबाते हैं कि नहीं, संदेह मत

करो! तो बेचैनी पैदा होती है। इस बेचैनी में आपका मन होता हैः अगर संदेह समाप्त हो जाए, तो बेचैनी समाप्त हो जाए।
मैं आपसे कहता हूंः संदेह इस भांति कभी समाप्त हो ही नहीं सकता है, बेचैनी कभी समाप्त नहीं हो सकती। लेकिन हां, विश्वासों को छोड़ दें और संदेह को पूरी तरह जगने दें और संदेह का अनुसरण करें और संदेह जहां ले जाए, हिम्मत से जाएं।
संदेह कभी गलत जगह नहीं ले जा सकेगा। क्यों? क्योंकि गलत जगह अगर पहुंच भी गए, तो संदेह फिर संदेह करेगा कि यह तो ठीक नहीं है। संदेह कभी गलत जगह किसी को नहीं ले जा सकता, अगर संदेह पूरा हो। क्योंकि गलत जगह जाते से ही संदेह कहने लगेगा कि यह तो ठीक नहीं है। जिसने संदेह को जगाया है अपने भीतर, वह कभी गलत जगह नहीं पहुंच सकता। वह तो परमात्मा पर ही पहुंच जाए, तभी संदेह समाप्त होगा, नहीं तो संदेह उसका पीछा करेगा।
लेकिन जिसने विश्वास किया है, वह कभी भी गलत जगह पर पहुंच सकता है, क्योंकि कभी भी गलत चीज पर विश्वास किया जा सकता है। और जो विश्वास करने वाले लोग हैं, वे किसी भी चीज पर विश्वास कर सकते हैं। सिर्फ उनके विश्वास को थोड़ा सा बदलने की जरूरत होती है। वे किसी भी चीज पर विश्वास कर लेते हैं!
हमारा मुल्क हजारों साल से विश्वास का अनुसरण करता रहा है। जब इस मुल्क पर पश्चिमी जीवन का प्रभाव आया, तो हम एकदम पश्चिमी जीवन से प्रभावित हो गए।
लोग सोचते हैं कि यह पश्चिमी जीवन से प्रभावित हो जाना बड़ा बुरा है। लेकिन आपको पता नहीं है, जिस कौम को तीन हजार साल तक विश्वास के अंतर्गत पाला गया हो, वह कौम किसी भी चीज से प्रभावित हो सकती है। उसके विचार करने की और संदेह करने की क्षमता नष्ट हो जाती है। इसलिए पश्चिम का प्रवाह आया तो हम उसमें बह गए। कोई भी बेवकूफी आ जाए हमारे ऊपर, तो हम संदेह करने में असमर्थ हो गए हैं, हम उसको मान लेंगे। एक ही बात होनी चाहिए, बेवकूफी करने वाला मालिक होना चाहिए, ताकतवर होना चाहिए। बस फिर हम मान लेंगे। क्योंकि कभी ताकतवर लोग, धनी लोग, राजा लोग, शक्तिशाली लोग थोड़े ही गलती करते हैं! बस फिर हम मान लेंगे, हम उनके पैरों में हाथ जोड़ कर पड़ जाएंगे। कहेंगे कि जो तुम कहते हो, ठीक है।
तीन हजार साल के विश्वास का यह परिणाम हुआ कि पश्चिमी संस्कृति जब हमारे ऊपर आनी शुरू हुई, तो हम संदेह करने में असमर्थ हो गए। संदेह हमने कभी किया ही नहीं था। हम पहले अपने पंडित-पुरोहितों को मानते थे, फिर हम उनके सफेद चमड़ी के पुजारियों को मानने लगे। उन पर विश्वास कर लिए। विश्वास करने वाली कौम की संदेह करने की क्षमता नष्ट हो जाती है।
इस देश में संदेह को वापस जगाना है, नहीं तो यह कौम करीब-करीब मर चुकी है। और यह कौम कुछ भी विश्वास कर सकती है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, इसको कोई भी चीज विश्वास करवाई जा सकती है। क्योंकि हम विश्वास करने में पाले गए हैं। हमसे जो भी कहा जाएगा, हम मान लेंगे कि ठीक है। क्योंकि संदेह-- संदेह की हमें कोई शिक्षा नहीं दी गई है।
संदेह की शिक्षा न होने से ही इस देश में विज्ञान का जन्म नहीं हो पाया। दूसरे मुल्कों ने विज्ञान में इतना विकास किया, संदेह के कारण। हम पिछड़ गए, क्योंकि हमने तो विश्वास किया। विश्वास किया, तो वहीं हम ठहर गए, बैलगाड़ी पर तो बैलगाड़ी पर ठहर गए, आगे जाने का कोई सवाल नहीं था। क्योंकि मेरे पिता बैलगाड़ी में चलते थे, उनके पिता भी बैलगाड़ी में चलते थे। मैं कौन हूं जो संदेह करूं कि बैलगाड़ी से बेहतर भी कोई वाहन हो सकता है? नहीं- नहीं, यह कभी नहीं हो सकता। मेरे पिता क्या नासमझ थे जो बैलगाड़ी में चलते थे? अगर हो सकता, तो इतने बुद्धिमान मेरे पिता थे, जगतगुरु थे, वे तो और कुछ अच्छा बना लेते। लेकिन संदेह--संदेह कैसे किया जा सकता है? इसलिए हम एक डबरे की भांति हो गए। संदेह की यात्रा होती है सरिता की भांति, वह सागर तक जाती है। और विश्वास एक डबरे की भांति बंद हो जाता है, सड़ता है, लेकिन गति नहीं करता।

तो मैं तो कहूंगा, संदेह शुभ है। घबड़ाएं न, उसके आमंत्रण को स्वीकार करें। वह आपकी आत्मा को ऊंचाइयों तक ले जाएगा। लेकिन एक ही बात याद रखें, संदेह हो पूरा। फिर कहीं भी बीच में रुकने को राजी न हों, जब तक कि, जब तक कि ज्ञान का ही क्षण न आ जाए, तब तक रुकने को राजी न हों।
इसीलिए तो जैसे-जैसे हम बूढ़े होते जाते हैं और कमजोर होते जाते हैं,
हम धार्मिक होते जाते हैं। क्योंकि संदेह की क्षमता हमारी कम होती जाती है। डर लगने लगता है कि मौत करीब आ रही है, अब संदेह किया तो बहुत मुश्किल हो जाएगी। इसीलिए तो मंदिरों में, चर्चों में, मस्जिदों में बूढ़े लोग दिखाई पड़ते हैं, जवान दिखाई नहीं पड़ता। क्योंकि जब आदमी बूढ़ा होता है, तब संदेह की हिम्मत नहीं रह जाती और विश्वास की कमजोरी आ जाती है।
लेकिन सचाई यह है कि धर्म है उन लोगों के लिए, जिनके चित्त संदेह करने में समर्थ हैं। युवा है जिनका चित्त उनके लिए ही धर्म है। और युवा चित्त का कोई संबंध उम्र से नहीं है। एक आदमी बुढ़ापे में भी युवा हो सकता है। और एक आदमी जवान होकर भी बूढ़ा हो सकता है।
मैं एक जगह गया ग्वालियर में। एक मित्र ने मुझे खबर की कि मेरी मां भी आपके व्याख्यान सुनने आना चाहती है। लेकिन उसकी उम्र है नब्बे वर्ष की और इधर पचास वर्षों से वह निरंतर पूजा में लगी रहती है, चौबीस घंटे माला फेरती रहती है। कहीं आपकी बात सुन कर उसका चित्त अशांत न हो जाए! कहीं उसका चित्त परेशानी में न पड़ जाए! तो मैं उसे लाऊं या न लाऊं? उन्होंने मुझे पत्र लिखा। मैंने उनसे कहा कि जरूर लिवा लाएं।
वे अपनी मां को लेकर आए। पता नहीं मीटिंग में क्या हुआ! दूसरे दिन वे फिर आए मेरे पास और बोले कि मैं बहुत हैरान हूं। रास्ते में मैं डरा हुआ था कि मेरी मां के मन पर पता नहीं कैसा प्रभाव पड़े। लौटते में मैंने अपनी मां से पूछा कि चित्त में अशांति तो नहीं हुई आपको? मेरी मां ने कहा कि मैं अपनी माला, जिसे मैं हमेशा साथ रखती थी, वहीं छोड़ आई हूं। क्योंकि वे जो कह रहे थे, पचास साल का मेरा अनुभव भी कहता है कि यह व्यर्थ है। पचास साल मैंने इसको फेर कर देखा है। पचास साल का मेरा अनुभव भी कहता है, यह व्यर्थ है। लेकिन मुझमें हिम्मत नहीं जुटा पा रही थी मैं कि इसको छोडूं कि नहीं छोडूं। मैंने बात सुनी और मैंने कहा, अब एक क्षण को भी पोस्टपोन करना ठीक नहीं है। क्योंकि जितने दिन गए, गए। जो बचा है समय, उसमें कुछ किया जा सकता है। तो मैंने वहीं छोड़ दी है माला, उस मीटिंग में ही छोड़ आई हूं। उसको वापस लेकर नहीं आई।
इस बूढ़ी स्त्री को कौन बूढ़ा कहेगा? यह जवान है। यह युवा है।
तो मैंने उनसे कहा कि तुम बूढ़े हो और तुम्हारी मां जवान है। क्योंकि तुम डरते थे कि मां को लाएं या नहीं लाएं। मां को लाने में तुम डरते थे और मां पचास साल की माला छोड़ने में नहीं डरी है। तुम बूढ़े आदमी हो!
और हमारा दुर्भाग्य यही है कि हमारे देश में जवान आदमी पैदा होना बहुत दिन से बंद हो गए हैं। बस बूढ़े ही बूढ़े लोग हैं। बच्चे से सीधे बूढ़े हो जाते हैं; जवान होने का मौका ही नहीं आता। क्योंकि यंग माइंड का, जवान चित्त का पहला लक्षण है--संदेह, खोज।
तो मैं तो कहूंगा, शुभ है यह कि संदेह उठता है। भगवान न करे, यह उठना कहीं बंद न हो जाए, नहीं तो आप मर गए। यह अभी उठता है, इस बात की सूचना है कि अभी कुछ भीतर खोज के लिए गुंजाइश है। अभी पूरी तरह नहीं मरे, थोड़ी जिंदगी भीतर है। थोड़ी चिंगारी है, तो वह राख को उड़ा-उड़ा कर बाहर निकल आती है। उससे घबड़ाएं न। चिंगारी को पूरा निकाल लें, सारी राख को उड़ा दें। एक विश्वास को भी न टिकने दें मन में। और तब संदेह एक मुक्ति लाता है, एक स्वतंत्रता। और खोज की एक ऊर्जा पैदा होती है और खोज शुरू होती है।
इतना जरूर सच है कि अगर पूरे चित्त से कोई संदेह करने को इसी वक्त राजी हो जाए, इसी क्षण टोटल डाउट अगर हो, तो इसी क्षण सत्य उपलब्ध हो सकता है। क्योंकि टोटल डाउट, पूरा संदेह, सारे विश्वासों को गिरा देता है, सारे ज्ञान को गिरा देता है, जिसकी मैं सुबह आपसे बात कर रहा था, सारा ज्ञान झड़ जाता है। और तब स्टेट ऑफ नाट नोइंग पैदा होती है, न जानने की भाव-दशा पैदा होती है। और वह न जानने की भाव-दशा इतनी सरल, इतनी शांत, इतनी मौन होती है

कि उसी में जाना जाता है, वह जो है। धीरे-धीरे संदेह करेंगे, तो कभी जानेंगे; और अगर पूरा संदेह कर सकते हैं, तो अभी और यहीं जान सकते हैं।
बस एक छोटा प्रश्न और, फिर और जो प्रश्न बचेंगे वे रात में लूंगा।

एक प्रश्न छोटा सा पूछा है कि बुद्ध का परिवार छोड़ना क्या कमजोरी था?

अगर बुद्ध ने परिवार छोड़ा हो, तो जरूर कमजोरी था। लेकिन, मेरा निवेदन
यह है, कुछ लोग परिवार छोड़ते हैं और कुछ लोगों से परिवार छूट जाता है। जिनसे छूट जाता है, वह कमजोरी नहीं होती। जो छोड़ते हैं, वह कमजोरी होती है। छोड़ना कमजोरी है, छूट जाना कमजोरी नहीं है। जैसे सूखे पत्ते वृक्षों से गिर जाते हैं। वृक्ष को वे पत्ते छोड़ते नहीं हैं, बस छूट जाते हैं। ऐसे ही जीवन में जितना-जितना बोध विकसित होता है, कुछ चीजें छूटनी शुरू हो जाती हैं, उन्हें छोड़ना नहीं पड़ता। जिन चीजों को छोड़ना पड़ता है, वे तो कच्चे पत्तों की भांति टूटती हैं और पीछे उनका घाव छूट जाता है।
एक छोटी सी कहानी कहूंगा, उससे समझ में बात आ जाएगी।
एक गांव में एक दंपति रहता था--पति और पत्नी। वे दोनों बड़े सरल, सीधे, साधु चरित्र व्यक्ति थे। रोज लकड़ियां काट लाते थे, जो पैसा होता था, सांझ खाना खा लेते थे। जो बचता था, वह बांट देते थे। रात उनके पास कुछ भी नहीं होता था। अपरिग्रही होकर सो जाते थे। सुबह फिर लकड़ियां काट लाते थे। लेकिन एक दफा वर्षा गिरी सात दिन तक, अनायास, बेमौसम में, और वे लकड़ियां नहीं काटने जा सके। उन्होंने भिक्षा मांगनी भी उचित न समझी, किसी के ऊपर भार बनना भी ठीक न समझा। तो वे भूखे रहे, उन्होंने उपवास किया।
फिर सात दिन बाद सूरज निकला, तो वे लकड़ियां काटने गए। सात दिन के भूखे, उन्होंने लकड़ियां काटीं, मौरियां बांधीं और घर की तरफ चलते थे। पति आगे था, पत्नी पीछे थी, थोड़ा फासला था। पति रास्ते से निकलता था जंगल के, देखा कि पास में, किनारे पर पगडंडी के, कोई राहगीर की थैली गिर गई है अशर्फियों से भरी। कुछ अशर्फियां बाहर पड़ी हैं, कुछ थैली में हैं। उसके मन को हुआ कि मैंने तो स्वर्ण को छोड़ दिया है, मैंने तो स्वर्ण को जीत लिया है। मैं तो हूं विजेता, मेरे मन को तो लोभ नहीं पकड़ता। लेकिन पत्नी का क्या भरोसा? एक तो पुरुष ने कभी स्त्री का भरोसा किया ही नहीं है और पति ने पत्नी
का भरोसा तो कभी किया ही नहीं है। उसने भी नहीं किया। क्या भरोसा! उसका मन डांवाडोल हो जाए! इसलिए पुरुषों ने जो शास्त्र लिखे हैं, उनमें स्त्रियों को मोक्ष जाने का अधिकार नहीं दिया। कोई भरोसा नहीं है स्त्रियों का। पुरुष भरोसा कर ही नहीं सकता। अगर स्त्रियां शास्त्र लिखतीं, तो वे भी पुरुष का भरोसा न कर सकती थीं, वे भी नहीं भेजतीं उसको। वे भी नियति बना देतीं कि जब तक स्त्री पर्याय में पैदा नहीं होओगे, तब तक मोक्ष नहीं जा सकते!
तो यह सोच कर कि कहीं स्त्री का मन न डोल जाए, कहीं उसके मन में कमजोरी
न आ जाए--सात दिन की भूख, परेशानी--उसने जल्दी से एक गड्ढे में उस थैली को सरका दिया और मिट्टी से ढंक दिया। वह ढंक भी न पाया था कि पीछे से आ गई स्त्री और उसने पूछा कि क्या कर रहे हैं? अब बड़ी मुश्किल हो गई। सत्य बोलने का नियम लिया हुआ था। झूठ बोल सकते नहीं थे। जिद्द के पक्के थे। नियम था, उसको तोड़ नहीं सकते थे। और बताना भी कठिन हो गया। लेकिन बताना पड़ा। तो कहा कि मेरे मन में ख्याल आया कि मैंने तो स्वर्ण को जीत लिया, मैंने तो छोड़ दिया संपत्ति का मोह, और यहां पड़ी थी थैली, स्वर्ण की अशर्फियां थीं, सोचा कि कहीं तेरा मन उनके ऊपर लालच न खा जाए, इसलिए उनको गड्ढे में डाल कर मिट्टी से ढंकता हूं। उसकी पत्नी ने कहा, तुम्हें स्वर्ण अभी दिखाई पड़ता है? और तुम्हें मिट्टी के ऊपर मिट्टी डालते हुए शर्म नहीं आती!
पति ने स्वर्ण छोड़ा था, पत्नी से स्वर्ण छूट गया था, इतना फर्क था।
बुद्ध ने परिवार कभी नहीं छोड़ा। महावीर ने परिवार कभी नहीं छोड़ा। परिवार छूट गया। वह अर्थहीन हो गया, उसमें कोई भी अर्थ न रहा। जैसे सांप अपनी केंचुली को छोड़ देता है, निकल जाता है उसके बाहर, वैसे ही कुछ छूट गया,

कुछ व्यर्थ हो गया। छोड़ने का और छूट जाने का बुनियादी फर्क है। और फर्क बाद में भी काम करता है। बुद्ध ने अपने पूरे जीवन में बाद के कभी यह नहीं कहा कि मैंने राज्य छोड़ा, मैंने पत्नी छोड़ी, मैंने धन छोड़ा, यह कभी नहीं कहा।
एक साधु के पास था मैं। उन्होंने कहा कि मैंने लाखों रुपये छोड़े हैं। मैंने पूछा, यह कब छोड़े थे? उन्होंने कहा, कोई बीस-पच्चीस वर्ष हो गए; लात मार दी थी मैंने उन पर। मैंने कहा, वह लात ठीक से नहीं लग पाई। क्योंकि तीस वर्षों तक उनकी याद! उसकी याद, उसकी स्मृति कि मैंने छोड़ी थी, मैंने लाखों पर लात मार दी थी! उसकी स्मृति क्यों बनी है? अगर लात पूरी लग गई होती, तो स्मृति नहीं होती। स्मृति है! तो जब लाखों रुपये रहे होंगे, तब यह ख्याल रहा होगा--मेरे पास लाखों हैं! और अब तीस वर्ष से अहंकार दूसरा मजा ले रहा है। वह यह मजा ले रहा है कि मैंने लाखों छोड़ दिए!
छोड़ता है जब कोई तो अहंकार में कोई फर्क नहीं पड़ता, अहंकार फिर से उस छोड़ने को पकड़ लेता है और कहता है, मैं त्यागी हूं, मैंने छोड़ा! लेकिन जब चीजें छूट जाती हैं तो पता भी नहीं चलता वे कब छूट गईं। और उनके पीछे त्याग का भाव भी पैदा नहीं होता कि मैंने त्यागा, मैंने छोड़ा। चीजें व्यर्थ हो गईं और चली गईं।
आप अपने घर के बाहर रोज कचरा फेंक देते हैं, तो आप अखबार में जाकर खबर छपाते हैं कि आज मैंने घर का कचरा छोड़ दिया? धन्य हूं मैं! और मेरा स्वागत करो और सम्मान करो! नहीं, आप कचरा फेंक आते हैं और भूल जाते हैं।
एक दिन जीवन में ऐसा भी होता है कि जिसको हम बहुत मूल्यवान समझ रहे हैं, बोध के विकास के साथ-साथ वह कचरे जैसा हो जाता है। उसे छोड़ना नहीं पड़ता, बस छूट जाता है। उसके पीछे कोई याद भी नहीं रह जाती।
तो अगर बुद्ध ने छोड़ा हो, तो वे जरूर कमजोर रहे होंगे। अगर महावीर ने छोड़ा हो, तो वे जरूर कमजोर रहे होंगे। जैसा उनके भक्त कहते हैं कि उन्होंने महान त्याग किया। अगर यह सच है, तो वे कमजोर रहे होंगे।
लेकिन मैं तो यह कहता हूं कि उन्होंने कभी छोड़ा नहीं। उनको त्याग का पता भी नहीं था। यह भक्तों भर को पता है कि बुद्ध ने त्याग किया और महावीर ने त्याग किया। उन्होंने कभी नहीं छोड़ा था। चीजें व्यर्थ हो गई थीं, वे उनके बाहर निकल गए थे। वैसे ही जैसे रोज सुबह आप कचरा फेंक आते हैं घर के बाहर, ऐसे ही जो कचरा हो गया था, उसके वे बाहर आ गए थे। इसमें कौन सा छोड़ना है? कौन सा त्याग है?
त्याग किया है सिर्फ अज्ञानियों ने; ज्ञानियों ने कभी कोई त्याग नहीं किया। अज्ञानी त्याग कर सकता है, ज्ञानी कभी त्याग नहीं करता, उससे चीजें छूट जाती हैं, उससे त्याग का कोई संबंध ही नहीं है।
कुछ और प्रश्न हैं, वह रात मैं आपसे बात करूंगा।

माटी कहै कुम्हार सूं
चौथा प्रवचन

प्रेम की सुगंध

मेरे प्रिय आत्मन्!
बीती चर्चाओं में जो बहुत सी बातें मैंने आपसे कहीं, उनके संबंध में अनेक प्रश्न आए हैं। कुछ थोड़े से प्रश्नों पर आज की अंतिम रात हम और बात कर सकेंगे।

एक प्रश्न जो बहुत से मित्रों ने पूछा है, बहुत-बहुत रूपों में पूछा है, उसे मैं सबसे पहले ले लूंः उन्होंने पूछा है कि मैं शब्दों, सिद्धांतों और शास्त्रों के विरोध में मालूम पड़ता हूं। क्या परमात्मा की खोज में सिद्धांत और शास्त्र सहयोगी नहीं हैं? क्या वे हमारे और प्रभु के बीच में बाधा बनते हैं?

प्रभु और मनुष्य के बीच में ही नहीं, जीवन के सभी अनुभवों के बीच में शास्त्र और शब्द बाधा बनते हैं। जीवन के किसी भी अनुभव के बीच में, जो हमने सीख रखा है, वह बाधा बनता है। एक फूल के पास आप खड़े हैं। उस फूल के संबंध में आप जो भी जानते हैं--वह किस जाति का फूल है, छोटा है या बड़ा, सुंदर है या असुंदर, पहले देखे गए फूलों जैसा है या नहीं--ये जितनी बातें आप जानते हैं उस फूल के संबंध में, ये आपके और फूल के बीच में खड़ी हो जाती हैं। वह जो फूल सामने है, वह ओझल हो जाता है; फूल के संबंध में जो आप पीछे से जानते हैं, वह आंख के आगे आ जाता है। उस जानकारी के कारण फूल का सीधा साक्षात, सीधा एनकाउंटर नहीं हो पाता। उससे सीधी मुलाकात नहीं हो पाती, सीधा मिलन नहीं हो पाता।
मैंने कल आपके संबंध में जो समझ लिया था, अगर आज आप मुझे मिलें और कल
का स्मरण बीच में आ जाए, तो मैं आपको नहीं देख सकूंगा जो आप आज हैं, वह कल की ही बात मेरे सामने खड़ी हो जाएगी।
एक आदमी एक सुबह बुद्ध के ऊपर थूक गया। क्रोध में था, बहुत गुस्से में था, उसने बुद्ध के मुंह पर थूक दिया। बुद्ध ने चादर से थूक पोंछ लिया और उससे कहा कि मेरे दोस्त, तुम्हें कुछ और भी कहना है?
उसने नहीं सोचा था कि थूकने का और यह प्रत्युत्तर मिलेगा--कि तुम्हें कुछ और कहना है? बुद्ध के पास बैठे भिक्षुओं को भी आशा नहीं थी। उनके एक भिक्षु आनंद ने कहा, वह थूक रहा है और आप पूछते हैं--और कुछ कहना है?
बुद्ध ने कहा, जहां तक मैं समझता हूं, वह इतने क्रोध से भर गया है कि उस क्रोध को प्रकट करने के लिए शब्द असमर्थ हैं, इसलिए थूक कर उसने क्रोध को प्रकट किया है। क्यों मेरे मित्र, मैं गलत तो नहीं समझा? उन्होंने उस आदमी को पूछा।
वह आदमी तो हतप्रभ हो गया और वापस लौट गया। रात भर सो नहीं सका--बेचैन, परेशान! कि उसने कैसे आदमी पर थूक दिया है, भूल हो गई है। पश्चात्ताप से भरा हुआ सुबह फिर भागा हुआ बुद्ध के चरणों में आकर सिर रख दिया और कहा, क्षमा कर दें मुझे। मैं कल थूक गया था, भूल हो गई। मैं रात भर रोता रहा, पछताता रहा। मुझे ख्याल आया कि जिस बुद्ध का इतना प्रेम मुझे मिला, अब वह प्रेम मिलना बंद हो जाएगा। मैंने अपने हाथ से वह प्रेम की धारा खो दी। मैंने वह खजाना खो दिया।
बुद्ध हंसने लगे। उन्होंने कहा, तू पागल है। कल तू थूक गया था। वह आदमी कल था, आज कहां है? जिस पर तूने थूका था, वह भी कल था। जिसने थूका था, वह भी कल व्यतीत हो गया। गंगा का बहुत पानी तब से बह चुका। अब तू कहां है वह? अब मैं कहां हूं वह? मैं अब वह कहां हूं जो कल था? अब तू कहां है वह जो कल था?
रात हम दीये को जलाते हैं, सुबह तक कितनी धारा ज्योति की बह चुकी, धुआं
हो चुकी! सुबह हम कहते हैं कि वही ज्योति जल रही है जो रात हमने जलाई थी। गलत कहते हैं। वह ज्योति तो बहुत-बहुत बह गई, बह गई। अब तो बिल्कुल नई धारा

जल रही है। गंगा को देख आए थे पिछले वर्ष, वही नहीं है अब वह, सब बह गया।
आदमी भी प्रतिक्षण बहा जा रहा है। जीवन भी प्रतिक्षण बहा जा रहा है।
बुद्ध ने कहा, कल को पकड़ कर बैठ जाऊं तो फिर मैं तुझे देख ही न सकूंगा। अगर मुझे ख्याल रहे कि यह वही आदमी है जो थूक गया था, और यह भाव मेरे बीच खड़ा हो जाए, तो मैं तुझे देख ही नहीं सकूंगा। मैं देखूंगा कि वही आदमी आ गया जो थूक गया था। और आज तू वही आदमी नहीं है, क्योंकि कल तू क्रोध से भरा आया था, आज क्षमा मांगने के लिए आया है। आज तू प्रेम से भरा आया है, पश्चात्ताप से भरा आया है। तू वही आदमी नहीं है। फिर तू क्षमा क्यों मांगता है?
उस आदमी ने कहा, इसलिए कि मुझे लगा कि जो प्रेम मुझे मिलता था, शायद अब नहीं मिलेगा।
बुद्ध हंसने लगे। उन्होंने कहा, पागल! क्या तू सोचता है मैं तुझे इसलिए प्रेम करता था कि तू मेरे ऊपर थूकता नहीं था? क्या इसलिए प्रेम करता था कि तू थूकता नहीं था? अगर इसलिए प्रेम करता होता, तो तेरे थूकने से प्रेम बंद हो जाता। मैं तो प्रेम इसलिए करता हूं कि मैं प्रेम ही कर सकता हूं, और कुछ नहीं कर सकता हूं। जैसे दीये से रोशनी गिरती है, और जैसे फूल से सुवास बहती है, वैसे ही मुझसे प्रेम बहता है। तू थूके या न थूके, तू क्या करता है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।
ये जो बुद्ध ने दो बातें कहीं, इनमें पहली बात कि हम जीवन से जो-जो रोज सीख लेते हैं, जो-जो हमारा ज्ञान बन जाता है, उसे जीवन के नये अनुभव के सामने हम खड़ा न करें, अन्यथा वह बाधा बन जाएगी।
एक बहुत बड़े भक्त के संबंध में मैंने सुना है--नाम उनका नहीं लूंगा, क्योंकि नाम से बड़ी बेचैनी होती है, लोगों के घाव छू जाते हैं। कल एक-दो नाम मैंने ले दिए, उससे बड़ी परेशानी हो गई, बड़े ही क्रोध से भरे हुए पत्र आ गए। तो नाम छोड़ देता हूं, शायद आप नाम समझ ही जाएंगे। क्योंकि किसी को चोट पहुंचाने की मेरी क्या मर्जी है? और किसी के नाम से मेरा क्या झगड़ा है? एक बड़े संत को, जिनकी किताब घर-घर में पढ़ी जाती है, एक कृष्ण के मंदिर में ले जाया गया। उन्होंने कृष्ण को हाथ जोड़ने से इनकार कर दिया। और उन्होंने कहा कि जब तक धनुष-बाण हाथ में नहीं लोगे, मैं तुम्हें नमस्कार करने वाला नहीं हूं!
वे राम के भक्त हैं, वे कृष्ण को कैसे नमस्कार कर सकते हैं? राम की तस्वीर बीच में हो, तो ही भगवान भी स्वीकार हो सकता है, अन्यथा भगवान भी अस्वीकृत हो जाएगा! राम--मेरे राम--सामने हों तो ठीक, अन्यथा सब गड़बड़ है। वह जो हमने कल तक पकड़ रखा है, वह हमेशा सामने लेकर हम जीवन को देखेंगे,
तो जीवन दिखाई नहीं पड़ेगा, हमारे आग्रह का चश्मा ही हमें दिखाई पड़ेगा। वे ही रंग दिखाई पड़ेंगे, वे ही शक्लें दिखाई पड़ेंगी।
यह जीवन को देखने की बात न हुई, यह जीवन का दर्शन न हुआ, यह सत्य की आकांक्षा न हुई। यह तो जीवन के ऊपर भी अपने को थोप देना हुआ, अपने को इम्पोज कर देना हुआ, आरोपित कर देना हुआ। और हम सब ऐसे ही देखते हैं। यह देखना गलत है।
जीवन के दर्शन के लिए खाली जाएं--बिना सिद्धांतों के, बिना शब्दों के, बिना शास्त्रों के। जीवन को सीधा आमने-सामने आने दें और फिर देखें। फिर जो दिखाई पड़ेगा, वह वह है, जो है। और जब तक आप कहते हैं कि मैं इस भांति देखूंगा, इस ज्ञान से देखूंगा, तब तक आप वही देख रहे हैं, जो देखना चाहते हैं; वह नहीं, जो है।
एक घटना से आपको समझाऊं।
चीन के एक बहुत बड़े गांव में एक बड़ा मेला लगा हुआ था। हजारों-लाखों लोग इकट्ठे हुए हैं मेले में। एक छोटा सा कुआं है और उस कुएं के ऊपर दीवाल नहीं है। एक आदमी भीड़ में उस कुएं में गिर गया है। वह चिल्ला रहा है कुएं के भीतर से कि मुझे बचाओ, मैं मरा जा रहा हूं! लेकिन इतना शोरगुल है बाजार में, मेले में कि कौन सुनता है।
लेकिन तभी एक बौद्ध भिक्षु पानी पीने के लिए रुका है उस कुएं पर। नीचे देखा है, तो वह आदमी चिल्ला रहा है कि मुझे बचाओ! उसने भिक्षु को देखा तो

उसने हाथ जोड़े, कहा, मुझे जल्दी निकालें। मैं मरा जा रहा हूं। मैं तैरना नहीं जानता हूं। मेरे हाथ कंप रहे हैं, मैं किसी तरह ईंटों को पकड़े हुए रुका हूं।
उस भिक्षु ने कहा, मेरे दोस्त! तुम्हें पता नहीं, भगवान बुद्ध ने क्या कहा है? भगवान बुद्ध ने कहा है कि जीवन तो दुख है, बच कर भी क्या करोगे? जीवन तो दुख है, जीवन तो असार है, जीवन तो व्यर्थ है। जीवन से तो छूट जाने की कोशिश करनी है। तो बच कर भी क्या करोगे? दुख से निकल कर जाओगे कहां? जीवन तो खुद एक बड़ा कुआं है। इसलिए व्यर्थ की वासना छोड़ो, जीने की वासना छोड़ो। यह जो लस्ट फॉर लाइफ है, यह जो जीवन की तीव्र वासना है, यही तो पाप का मूल है। मोक्ष की कामना करो, जीवन की क्यों कामना करते हो?
वह आदमी चिल्लाने लगा कि यह समय उपदेश का नहीं। मुझे बाहर निकाल लें, फिर मैं आपकी बातें सुनूंगा।
लेकिन उस भिक्षु ने कहा, तुम समझे नहीं। भगवान ने शास्त्रों में यह भी कहा है कि आदमी को जो भी भोगना पड़ता है, अपने पिछले जन्मों के कर्मों के कारण। तुमने कभी किसी को कुएं में गिराया होगा, इसलिए गिरे हो। स्वभावतः जो तुमने किया है, वह भोग रहे हो। जो जैसा करता है, वैसा भोगता है। नहीं लिखा है शास्त्र में? तो अब निकलने की क्यों कोशिश कर रहे हो? अब भोगो। अब पूरे कर्म को भोग लो, तो कर्म से मुक्त हो जाओगे। और मैं तुम्हें बीच में निकाल कर क्यों झंझट में पडूं? क्योंकि भगवान ने यह भी कहा है कि तुम जो करते हो, सब आगा-पीछा सोच लेना, अन्यथा तुम भी कहीं पाप में भागीदार न हो जाओ। मैं तुम्हें निकाल लूं और कल तुम चोरी कर लो, तो मैं भी जिम्मेवार हुआ! मैं तुम्हें बचा लूं, परसों तुम किसी की हत्या कर दो, तो मैं भी पापी हुआ! क्षमा करो, मैं मोक्ष की कोशिश में लगा हूं। मैं झंझट में, मैं कोई इनवाल्वमेंट में, मैं किसी उपद्रव में नहीं पड़ना चाहता। नमस्कार! भगवान तुम्हारी रक्षा करे!
वह भिक्षु आगे बढ़ गया। वह आदमी तो हैरान रह गया। लेकिन उस भिक्षु ने
जो भी कहा, सब शास्त्रों में लिखा हुआ है। हंसें मत। क्योंकि आप भिक्षु पर नहीं हंस रहे हैं, शास्त्रों पर हंसना हो जाएगा। यह सब लिखा हुआ है। इसमें शब्द भी उसने नहीं कहा, जो उसका अपना हो। शास्त्र उसे कंठस्थ हैं, वही उसने कहा है!
वह भिक्षु गया है कि कनफ्यूशियस को मानने वाला एक दूसरा फकीर, एक दूसरा मांक कुएं पर आ गया। उसने भी नीचे झांक कर देखा। वह आदमी चिल्लाया कि बचाओ! अब मेरी ज्यादा संभावना नहीं है बचने की, रुकने की। जल्दी मुझे नहीं निकाला गया तो मैं मर जाऊंगा!
उस आदमी ने कहा कि देखो, यही तो कनफ्यूशियस ने कहा है अपनी किताब में
कि हर कुएं के ऊपर दीवाल जरूर होनी चाहिए, पाट होना चाहिए। जिस राज्य के कुएं पर दीवालें नहीं होतीं, जिस राज्य के कुएं पर पाट नहीं होते, वह राज्य अन्यायी है। तुम घबड़ाओ मत। मैं आंदोलन चलाऊंगा और हर कुएं पर पाट बंधवा दूंगा। मैं एक मूवमेंट पैदा करूंगा समाज-सेवा का और मैं जाकर लोगों को कहूंगा कि हर कुएं पर पाट होना चाहिए। तुम बिल्कुल बेफिक्र रहो।
उस आदमी ने कहा, क्या बातें कर रहे हैं? बेफिक्र! मैं मर जाऊंगा, ये पाट कब बनेंगे? और मैं तो गिर ही चुका हूं, अब पाटों के बनने से क्या होगा? कृपा कर मुझे पहले बाहर निकाल लो।
उसने कहा, इतनी फुर्सत कहां एक-एक आदमी की फिक्र करने की? मैं पूरे समाज का ही परिवर्तन चाहता हूं। सामाजिक क्रांति, सोशल रिवोल्यूशन चाहिए। एक आदमी के बनने-मिटने से क्या होता है? तुम शहीद हो जाओ। तुम फिक्र मत करो, तुम्हारा नाम किताबों में लिखा जाएगा। और शहीदों की मजारों पर जुड़ेंगे मेले! तुम घबड़ाओ मत, शहीदों की तो मजारों पर मेले भरते हैं, तुम्हारी मजार पर भी मेले भरेंगे। लोग हजारों साल तक याद रखेंगे कि एक आदमी ने कुएं में गिर कर सब कुओं पर पाट बंधवा दिए थे! बेफिक्र रह तू, मैं अभी जाता हूं और आंदोलन खड़ा करता हूं।
वह आदमी चिल्लाता रहा, वह भिक्षु चला गया भीड़ में और मंच पर खड़ा हो गया
और लोगों को समझाने लगा कि देखो, जब तक कनफ्यूशियस की बात नहीं सुनी जाएगी,

दुनिया में इसी तरह के कष्ट होते रहेंगे। देखो, वह आदमी कुएं में पड़ा है! यह आदमी भी एक सबूत बन गया कनफ्यूशियस की बात को सिद्ध करने का, एक प्रूफ, एक प्रमाण बन गया!
मत हंसें उस आदमी पर। वह आदमी वही कर रहा है जो दुनिया के सब समाज-सुधारक करते हैं। लेकिन वह आदमी मरा जा रहा है, वह घबड़ाया जा रहा है, उसके प्राण निकले जा रहे हैं। आज उसे पहली दफे पता चला कि ये अच्छी बातें करने वाले लोग क्या कर सकते हैं!
और तभी एक ईसाई मिशनरी भी आ गया उस कुएं पर। उसने भी झांक कर देखा। आदमी बोल भी नहीं पाया था कि उसने कहा, मत घबड़ा। उसने अपने झोले से रस्सी निकाली। वह झोले में हमेशा रस्सी साथ ही रखता है। कब कोई कुएं में गिर पड़े, मौका मिल जाए बचाने का! उसने रस्सी नीचे फेंकी, कुएं में उतरा, उस आदमी को बाहर निकाला।
वह आदमी कहने लगा कि धन्य हैं आप! आप सच्चे आदमी मिले एक। बाकी दो भिक्षु आए थे, उन्होंने मुझे उपदेश दिया। आपकी बड़ी कृपा है जो आपने मुझे बचाया!
उस मिशनरी ने कहा, क्षमा करो। तुम गलत मत समझ लेना। मैंने तुम्हें नहीं बचाया। वह तो जीसस क्राइस्ट ने कहा है कि जो सेवा करता है, वह भगवान का प्यारा हो जाता है। सो हम सेवा कर रहे हैं, ताकि भगवान के प्यारे हो जाएं। हमें तुमसे क्या लेना-देना है! यह तो हम स्वर्ग की खोज कर रहे हैं। और हम तो खुश होते हैं जब कोई कुएं में गिरा दिखाई पड़ जाता है, क्योंकि हमें सेवा का मौका मिल जाता है! हम तो ऑपरच्युनिटी, अवसर की खोज में हैं कि कहीं सेवा का कोई मौका मिल जाए तो हम किसी को बचा लें। इसलिए हम रस्सी हमेशा पास रखते हैं, जहां मौका आ जाए! मकान में आग लग जाए, हम कूद कर अंदर हो जाते हैं। कोई पानी में कूदने लगे, डूबने लगे... । तुम बड़े अच्छे हो, तुमने हमारे स्वर्ग की एक सीढ़ी बना दी। अपने बच्चों को भी समझाना कि कुओं में गिरते रहें, तो हम बचाते रहें। सर्विस, सेवा--सेवा का मौका भी तो मिलना चाहिए!
सेवा का जो मौका देते हैं, वे स्वर्ग की सीढ़ियां बनते हैं। उनके कंधों
पर पैर रख-रख कर कुछ लोग स्वर्ग चले जाते हैं। बीमारों की सेवा करके, गरीब की सेवा करके, कुएं में गिरे की सेवा करके कुछ लोग स्वर्ग की यात्रा तय करते हैं!
इन तीनों आदमियों पर आपको हंसी क्यों आती है? गलती क्या है इन तीनों की? ये तीनों किताबों को बीच में ले लेते हैं। मरते हुए जीवित आदमी को, तथ्य को, वह जो फैक्ट है, वह जो सामने घटित हो रहा है, वह उन्हें उतना मूल्यवान नहीं, जितनी वह किताब, जो उन्होंने पढ़ी है। इसलिए वह मरता हुआ आदमी, वह टूटती हुई श्वास, वह सामने एक जीवन के दीये का बुझ जाना, उन्हें दिखाई नहीं पड़ता है। उन्हें अपनी किताब दिखाई पड़ती है।
हम सबको भी यही होता है। एक आदमी को हम गरीब देखते हैं, भूखा मरते देखते हैं, सड़क पर भीख मांगते देखते हैं--हम क्या कहते हैं? हम कहते हैं कि यह तो अपने-अपने कर्मों का फल है। किताब आ गई बीच में। आपको पता है कि कर्मों का फल है? कि सामाजिक शोषण, बेईमानी और चालाकी है?
लेकिन किताब आ जाती है बीच में। वह एक गरीब को भुला देती है फिर। क्योंकि तब हम एक एक्सप्लेनेशन, एक शाब्दिक सिद्धांत बीच में ले आते हैंः अपना-अपना फल है; कोई अमीर पैदा होता है, कोई गरीब पैदा होता है; अपना-अपना कर्म, अपने-अपने फल!
चार हजार वर्षों से भारत में इसी व्याख्या के कारण गरीब को नहीं मिटाया जा सका है। और जब तक यह व्याख्या नहीं मिट जाती, तब तक गरीब मिटाया भी नहीं जा सकता है। इस व्याख्या पर सारी गरीबी खड़ी है। लेकिन शास्त्र बीच में आ जाता है। और तब, तब सब बात वहीं की वहीं रुक जाती है। क्योंकि शास्त्र पर शक करना पाप है। शास्त्र को आंखों से हटाना पाप है। शास्त्र को तो हमेशा छाती से बांध कर रखना जरूरी है। चाहे आदमी डूब जाए शास्त्रों के वजन से! डूब जाए, लेकिन शास्त्र छाती से कभी मत छोड़ना।

तो मैं कोई शास्त्रों का विरोधी नहीं हूं। मैं केवल इतना कह रहा हूं
कि जीवन का साक्षात, जीवन का सीधा, इमीजिएट साक्षात केवल उनको हो सकता है, जो बीच से शब्दों, सिद्धांतों को हटा दें, सीधा देख सकें, आंखों पर शब्द और सिद्धांत न रह जाएं।
लेकिन आदमी? आदमी बिना शब्दों के किसी को देखता ही नहीं। एक स्त्री को देखता है, तो उसे ख्याल आ जाता है--स्त्री नरक का द्वार है, फलां-फलां संत कह गए हैं! स्त्री नहीं दिखाई पड़ती, नरक का द्वार दिखाई पड़ता है, जो एक सिद्धांत है, एक कोरा और थोथा सिद्धांत है। लेकिन हम जीवन को देखते ही इस भांति हैं--जीवन पीछे और सिद्धांत पहले।
यह दृष्टि आमूल गलत है। जीवन पहले है, जीवन प्रथम। और जो जीवन को देखने में समर्थ हो जाता है, उसके लिए सत्य का उदघाटन हो जाता है, उसके लिए सिद्धांतों का कोई सवाल ही नहीं रह जाता। श्री अरविंद को कोई पूछता था, डू यू बिलीव इन गॉड? क्या आप ईश्वर में विश्वास करते हैं? श्री अरविंद ने कहा कि नो, आई डू नाट बिलीव, आई नो। मैं विश्वास नहीं करता, मैं जानता हूं।
जब कोई जीवन को देखता है, तो वह यह नहीं कहता कि मैं ईश्वर में विश्वास करता हूं। वह कहता है, मैं ईश्वर को जानता हूं। जब कोई जीवन को सीधा देखता है, तो शास्त्रों की गवाही नहीं रह जाती, तब अपने अनुभव की गवाही खड़ी हो जाती है। तब वह खुद साक्षी हो जाता है किसी सत्य का। लेकिन जीवन को देखने से यह गवाही मिलती है।
लेकिन हम तो जीवन को देखते ही नहीं। हमारा जीवन सब बासा और उधार देखने
का ढंग हमने पकड़ रखा है।
इसलिए मैं कहता हूंः पढ़ें शास्त्रों को, पढ़ें किताबों को, लेकिन किसी किताब को आंखों पर बोझ न बन जाने दें। हटा दें; पढ़ लें और भूल जाएं। जान लें और भूल जाएं। आंख हमेशा ताजी और नई हो, धूल न भर जाए उसमें। देखने में हमेशा समर्थ रहे। और यह मैं किन्हीं औरों की किताबों के बाबत ही नहीं कह रहा हूं, अपनी मेरी किताबों के बाबत भी यही सच है।
एक मित्र ने यह भी पूछा कि आप कहते हैं सब किताबें छोड़ दें, लेकिन आपकी किताबें?

जब मैं कहता हूं सब किताबें छोड़ दें, तो उसमें मेरी किताब आ गई। मेरी किताब कोई अलग किताब नहीं है। सब किताब यानी सब किताब। सब शब्द यानी मेरे शब्द भी। और सब सिद्धांत यानी मेरे सिद्धांत भी। आपकी आंख सबसे मुक्त होनी चाहिए, ताकि आपकी आंख सीधे साक्षात को उपलब्ध हो सके।

कुछ और मित्रों ने अनेक रूपों में एक दूसरा प्रश्न भी बहुत तरह से पूछा है। वह भी आपसे बात कर लेनी जरूरी है। उन्होंने पूछा है कि जीवन में संयम, नियम, ब्रह्मचर्य, इनका कोई स्थान है कि नहीं? क्योंकि आप तो इनकी कोई बात ही नहीं कहते हैं!

इनका कोई भी स्थान नहीं है, इसलिए इनकी बात नहीं कह रहा हूं।
लेकिन इससे बड़ी घबड़ाहट होगी। क्योंकि संयम, नियम, अगर इनका स्थान नहीं तो फिर? फिर क्या करेंगे हम?
एक अंधा आदमी एक लकड़ी के सहारे चलता है। वह एक चिकित्सक के पास गया है, उसकी आंखें ठीक करने को है। वह अंधा आदमी पूछता है कि मेरी आंखें ठीक हो जाएंगी, फिर इस लकड़ी का मेरे जीवन में कोई स्थान है कि नहीं?
वह चिकित्सक कहता है, फिर लकड़ी का कोई स्थान नहीं है जीवन में। क्योंकि जब आंख ठीक हो गई तो लकड़ी के टेकने की, सहारे की जरूरत क्या है? आंख नहीं है इसलिए लकड़ी का स्थान है। और आंख है तो लकड़ी का हाथ में कोई स्थान नहीं है।
लेकिन अंधा बड़ा डरता है। वह कहता है, लकड़ी के बिना मैं चल कैसे पाऊंगा! क्योंकि लकड़ी न होगी तो बड़ी अराजकता हो जाएगी, मैं कहीं भी टकरा जाऊंगा। उसके ख्याल में नहीं आता कि लकड़ी केवल आंख की कमजोर परिपूरक है, सब्स्टीट्यूट है। और जिस दिन आंख है, उस दिन लकड़ी की कोई जरूरत नहीं है।

संयम और नियम अंधी चेतना की लकड़ियां हैं। जिस दिन चेतना के पास शांत अपनी आंख होती है, उस दिन संयम-नियम की कोई गुंजाइश, कोई जगह नहीं रह जाती। चूंकि आदमी के पास चेतना नहीं है, होश नहीं है, जागृति नहीं है, ध्यान नहीं है, इसलिए हम उसे संयम और नियम में बांध-बांध कर रखते हैं। हालांकि संयम और नियम में बंधने से उसकी आंख पैदा नहीं हो जाती, सिर्फ जिंदगी का कामचलाऊ काम चल जाता है।
सारा संयम और नियम है क्या? संयम और नियम का बुनियादी अर्थ सिवाय सप्रेशन और दमन के क्या हो सकता है? संयम और नियम सिवाय पाखंड के और क्या पैदा करता है? सिवाय डिसेप्शन के, आत्मवंचना के और क्या फलित होता है! जब हम कहते हैं, एक आदमी ने अपने क्रोध पर संयम कर लिया, तो उसका मतलब क्या है? उसका मतलब यह है कि उसने अपने क्रोध को दबा लिया अपने भीतर। वह क्रोध को पी गया, वह क्रोध के ऊपर बैठ गया। उसने क्रोध को नीचे कर लिया, वह उसकी छाती पर सवार हो गया।
लेकिन आपको पता है क्रोध की छाती पर सवार होने का क्या मतलब है? वह आदमी चौबीस घंटे भीतर क्रोध में जीने लगा। बाहर क्रोध की अभिव्यक्ति बंद हो गई, बाहर निकास बंद हो गया, बाहर क्रोध नहीं बहने देता, तो भीतर क्रोध सरकने लगा उसकी चेतना में।
इसलिए जिनको आप सज्जन कहते हैं, अच्छे आदमी कहते हैं, संयमी आदमी कहते हैं, कभी आपने ख्याल किया कि उनका जीवन चौबीस घंटे क्रोध से भरा हुआ होता है? जिनको आप मंदिर जाने वाले, पूजा करने वाले, प्रार्थना करने वाले लोग कहते हैं, आपने कभी ख्याल किया कि उनका जीवन क्रोध का जीवन है?
क्रोध को दबा लेने का मतलब यह नहीं है कि आप क्रोध से मुक्त हो गए। क्रोध को दबा लेने का मतलब यह है कि जो जहर बाहर फिंक सकता था, वह आपके ही खून में फैलना शुरू हो गया।
एक आदमी दफ्तर में है। उसका बास, उसका मालिक उसको गाली देता है। वह बेचारा नौकर क्या कर सकता है? क्रोध को पी जाता है, दबा लेता है। क्रोध भीतर कर लेता है, ओंठों पर मुस्कुराहट। ओंठों से हंसता है और कहता है, आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं! और भीतर जानता है कि मौका मिल जाए तो गर्दन दबा दूं। लेकिन गर्दन दबाने का भाव भीतर जोर पकड़ लेता है, मुट्ठी भिंच जाती है, लेकिन ऊपर से मुस्कुराता रहता है।
फिर घर लौट आता है। क्रोध ऊपर की तरफ नहीं चढ़ता, जैसे कि नदी ऊपर की तरफ नहीं चढ़ती, नीचे की तरफ जाती है, ऐसे ही क्रोध नीचे का रास्ता खोजता है। तो मालिक की तरफ नहीं चढ़ सकता तो वह घर आ जाता है, वहां आते से ही पांच-दस मिनट के भीतर कोई न कोई बहाना मिल जाएगा कि वह अपनी पत्नी पर टूट पड़ेगा। रोटी जल गई है आज, या कपड़े ठीक से लोहे नहीं किए गए हैं, या घर गंदा पड़ा है, या उसकी चाय ठंडी है, या कोई और पच्चीस बहाने हैं। कल भी चाय ऐसी थी, कल भी रोटी ऐसी थी, लेकिन कल क्रोध नहीं था। आज भीतर क्रोध तैयार है, मौजूद है, खोज कर रहा है निकल जाए। कोई कमजोर मिल जाए तो निकल जाए। तो पत्नी पर टूट पड़ता है।
पत्नी हैरान हो जाती है कि ऐसी तो खास बात न हुई थी। कुछ समझ में नहीं पड़ता कि क्या हो गया! दबाया गया क्रोध दूसरे रास्ते खोजता है। वह पत्नी पर चिल्लाता है। गालियां बक सकता है, मार सकता है। क्योंकि पुरुषों ने ही सारी किताबें लिखी हैं और उन्होंने अपने हिसाब से किताबें लिखी हैं। स्त्रियों को मारने से कोई पाप नहीं लगता। चीन में तो यह हालत रही तीन हजार वर्षों तक कि अपनी स्त्री की हत्या कर देने से भी अदालत में मुकदमा नहीं चल सकता था, क्योंकि अपनी स्त्री! स्त्री-धन तो हम भी कहते रहे हैं। टूट पड़ता है।
स्त्री क्या करे बेचारी! पति परमात्मा है। पतियों ने ही जो किताबें लिखी हैं, उनमें यह लिखा हुआ है कि पति परमात्मा है। और इस पति परमात्मा पर क्रोध कैसे किया जाए! लेकिन क्रोध पी जाती है वह। उसका छोटा सा बच्चा स्कूल से निकलेगा, तब तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। और आते ही बहाना मिल जाएगा--कि किताब फट गई, बस्ता टूट गया, कपड़े गंदे हो गए, गंदे लड़कों के साथ

खेल रहे थे--और बच्चे की पिटाई शुरू हो जाएगी। उसको ख्याल भी नहीं होगा कि यह दबाया हुआ क्रोध दूसरा रास्ता खोज रहा है।
बच्चा पिट लेगा। बच्चा क्या कर सकता है! बच्चे को प्रतीक्षा करनी पड़ती है, जब मां-बाप बूढ़े हो जाते हैं, तब बदला निकाल पाता है। लंबी प्रतीक्षा है। फिर मां-बाप को समझ में नहीं आता कि यह वही प्रतीक्षा किया हुआ, दबा हुआ निकल रहा है। लेकिन तत्काल भी बच्चे को कुछ उपाय करना पड़ता है, क्योंकि पीया क्रोध कष्ट देने लगता है, घूमने लगता है भीतर, चक्कर खाने लगता है। कुछ न कुछ रास्ता निकालना पड़ता है। जाकर अपनी गुड़िया की टांग तोड़ देता है, किताब फाड़ डालता है। क्या कर सकता है और!
क्रोध को दबाए जाने की जो शिक्षा है, जिसको हम संयम और नियम कहते हैं। इसी तरह सेक्स को दबाए जाने की शिक्षा है, जिसको हम ब्रह्मचर्य कहते हैं। और जो आदमी कामवासना को दबा लेगा, उससे ज्यादा अब्रह्मचर्य में दुनिया में कोई भी नहीं जीता है। चौबीस घंटे उसके मन में सिवाय सेक्स और सेक्सुअलिटी के और कामुकता के कुछ भी नहीं घूमता है चौबीस घंटे, श्वास-श्वास में, जिसको आप ब्रह्मचारी कहते हैं, उसके चित्त में सिवाय वासना के और कुछ भी नहीं घूमता।
मैं मुल्क के कोने में सैकड़ों-हजारों साधुओं से मिला हूं। जब वे साधु मुझे सबके सामने कुछ पूछते हैं, तब वे आत्मा-परमात्मा की बात पूछते हैं। जब अकेले में पूछते हैं, तो सिवाय सेक्स के और किसी चीज की बात नहीं पूछते हैं!
वह प्राणों को खाए जा रहा है, जो दबाया गया है। मन के कुछ सूत्र हैं, कुछ नियम हैं। मन का कोई विज्ञान है। मन के नियम, मन के सूत्रों में, मन के विज्ञान में पहली बात यह है कि मन को आप जिस बात का निषेध करेंगे, मन उसी तरफ आकर्षित हो जाएगा। निषेध निमंत्रण है। इनकार बुलावा है।
यहां जूनागढ़ के किसी मकान के ऊपर लिख दें कि यहां झांकना मना है। फिर
आप जानते हैं, जूनागढ़ में ऐसा एकाध भी संयमी आदमी होगा जो वहां बिना झांके निकल जाए! और अगर कोई डर के मारे निकल गया कि इलेक्शन में अभी खड़ा होना है, कहीं लोग न देख लें कि यह ऐसे मकान में झांक रहा है जहां लिखा है, यहां झांकना मना है; या कोई इसलिए निकल जाए कि वह गेरुवे वस्त्र पहने हुए है, कोई देख लेगा तो क्या कहेगा; कोई अगर निकल गया उस दरवाजे से बिना झांके, तो उसकी मुसीबत का आपको पता नहीं है। वह आगे चला जाएगा, लेकिन मन पीछे ही पीछे भागेगा। वह घर पहुंच जाएगा, लेकिन उदास-उदास, एब्सेंट-एब्सेंट, अनुपस्थित-अनुपस्थित। मन उसका वहां है, उस दरवाजे के पास जहां लिखा है कि यहां झांकना मना है। और अगर वह कमजोर हुआ... हिम्मतवर हुआ, तब तो किसी न किसी तरह चोरी-चपाटी से जाकर झांक ही लेगा, कोई रास्ता खोज लेगा... और अगर बिल्कुल कमजोर हुआ और हिम्मत नहीं जुटा पाया, तो फिर उसकी जिंदगी बर्बाद हो गई। रात भर सपने एक ही बात के देखेगा कि उसी दरवाजे के सामने खड़ा है और पर्दे को उठा कर देख रहा है कि भीतर क्या है। उसके सारे सपनों में वही मकान दिखाई पड़ेगा, जो वह बिना दिखा छोड़ आया है!
जब हम मन को निषेध करते हैं, तो मन वहीं-वहीं घूमने लगता है। जिन मुल्कों ने सेक्स की निंदा की है--और उन अभागे मुल्कों में से हमारा मुल्क अग्रणी है--जिन मुल्कों ने काम की निंदा की है, सेक्स की निंदा की है, यौन की निंदा की है, वे मुल्क उतने ही सेक्सुअल हो गए हैं। इस बात को बताने के लिए किसी से पूछने जाना पड़ेगा कि अपने चारों तरफ आंख डाल लेनी काफी है? बचपन से लेकर बुढ़ापे तक, एक ही चीज के इर्द-गिर्द हमारा मन घूमता रहता है। और उसका कारण यह नहीं है कि कोई सेक्स ऐसी चीज है कि चौबीस घंटे घूमे। उसका कारण कुल इतना है कि हमने आब्सेशन बना लिया है, हमने सेक्स पर जो संयम करने की कोशिश की है, जबरदस्ती जो की है, रोकने की जो कोशिश की है, उससे चित्त में घाव बन गया है और वहीं-वहीं, वहीं-वहीं हमारा चित्त घूमता रहता है।
एक फकीर था नसरुद्दीन। एक सांझ अपने घर से निकलता था कि एक मित्र घर
के सामने हाजिर हो गया। मित्र परदेश से आ रहा है, दूर से आ रहा है, उसी से मिलने आ रहा है। नसरुद्दीन ने कहा कि तुम ठहरो। मैं जरा तीन जगह मिलने जा

रहा हूं। बहुत जरूरी है मेरा मिलना वहां, और समय दे चुका हूं। और तुम तो बिना खबर किए आ गए हो। तो तुम रुको, मैं अभी आता हूं।
उस मित्र ने कहा कि अच्छा होगा कि मैं भी तुम्हारे साथ चला चलूं।
रास्ते में कुछ बात हो लेगी, फिर जल्दी मुझे लौट जाना है। लेकिन एक काम करो, मेरे कपड़े गंदे हो गए हैं, धूल से भर गए हैं रास्ते की, तुम्हारे पास अच्छे कपड़े हों तो मुझे दे दो।
नसरुद्दीन ने कहा कि ठीक है।
मन तो उसका नहीं हुआ। क्योंकि फकीर, दिखाई भर पड़ते हैं कि उनके पास कपड़े कम हैं, लेकिन फकीर का मन जितना कपड़ों से जुड़ा रहता है, उतना उन लोगों का नहीं जिनके पास कपड़े बहुत हैं। कम करने की कोशिश भी कपड़ों से ही जोड़ देती है, ज्यादा करने की कोशिश भी कपड़ों से ही जोड़ देती है--चौबीस घंटे। एक जोड़ी थी बहुत अच्छी उसके पास, जो सम्हाल कर रखी थी। कभी सभा, मीटिंग में जाता था तो पहन कर जाता था। वही थी तैयार। मजबूरी में, बहुत मन हुआ कि रहने दें, कह दें कि नहीं है। लेकिन हां भर दी थी। फिर किसी तरह निकाल कर, कई बार रखा-निकाला, फिर निकाल कर बाहर आया। फिर कहा कि यह पहन लें। बहुत शानदार कोट था, पगड़ी थी। उस मित्र ने पहन ली। फिर वे दोनों गए। रास्ते भर मित्र से बात तो करता था, लेकिन बार-बार देख लेता था अपने कपड़ों को। क्योंकि आज खुद तो साधारण पहने था और मित्र, जो उसके ही कपड़े थे, अच्छे पहने था और शानदार मालूम हो रहा था। बड़ी गलती हो गई। जिसके घर मिलने गया था, वहां गया। वहां जाकर परिचय दिया कि ये हैं मेरे मित्र जमाल, ये फलां- फलां गांव में रहते हैं। और रह गई कपड़ों की बात, सो कपड़े मेरे हैं!
वह जमाल तो बहुत हैरान हो गया कि यह क्या मामला है। कपड़े की बात कहने
की क्या जरूरत थी! नसरुद्दीन भी घबड़ाया। कह कर पता चला कि यह तो गलती हो गई। यह तो कहने की बात न थी कुछ। लेकिन मन में वही कपड़े घूम रहे थे, तो निकल गए। जो मन में घूमता है, वह रास्ता खोज लेता है। जो मन में घूमता है, वह रास्ता खोज लेता है।
बाहर निकल कर क्षमा मांगने लगा मित्र से कि माफ करना, माफ करना। मित्र
ने कहा, माफ करने की बात है? तुम पागल हो गए हो! यह कोई कहने की बात थी कि कपड़े किसके हैं! नसरुद्दीन ने कहा कि नहीं, गलती हो गई। क्षमा करें!
फिर दूसरे घर में मिलने गए। वहां जाकर फिर उसने परिचय दिया और कहा, ये मेरे मित्र जमाल, फलां-फलां गांव से आए हैं। रही कपड़ों की बात, सो कपड़े इनके ही हैं। कौन कहता है कि मेरे हैं?
वह मित्र तो हैरान हो गया कि यह हो क्या गया इसको? यह कपड़ों का... ?
अब उसके मन में यह ख्याल पकड़ा रहा कि बड़ी गलती हो गई, बड़ी गलती हो गई।
यह कपड़ों की बात उठाई तो गलती हो गई। अब किस तरह क्षमा मांगूं, क्या करूं! तो उसने कहा कि उलटा कर गुजरो। फिर निकल गई थी बात, तो उसने कहा कि कौन कहता है कि मेरे हैं! कपड़े इन्हीं के हैं। और घरवालों को तो कुछ पता ही नहीं था। वे कुछ हैरान ही हुए कि मामला क्या है!
फिर बाहर निकले, तो उस मित्र ने कहा, मैं जाता हूं। तुम्हारे साथ जाना खतरनाक मालूम पड़ता है।
नहीं, उसने कहा, बिल्कुल क्षमा कर दो। अब मैं इनकी बात ही नहीं उठाऊंगा। इनका ख्याल ही छोड़ दूंगा।
लेकिन जिस चीज का कोई ख्याल छोड़ना चाहता है, वही चीज पीछा पकड़ लेती है। देख लें किसी भी चीज का ख्याल छोड़ कर। फिर फंस गए आप उसी चक्कर में। फिर वे तीसरे मित्र के घर गए और जाकर... । अब तो जमाल निश्चिंत हो गया
है कि यह कह चुका, दो दफे भूल हो गई, हर बार भूल नहीं होती। फिर उसने परिचय दिया कि ये रहे मेरे मित्र जमाल, फलां-फलां गांव में रहते हैं। रह गई कपड़ों की बात, तो करनी फिजूल है; करनी ही नहीं चाहिए। कौन करता है? कोई नहीं करता है! कपड़ों की बात करनी ही नहीं चाहिए। मैं कपड़ों की बात करना ही नहीं चाहता हूं। किसी के भी हों, इससे क्या लेना-देना है? अरे कपड़े कपड़े हैं।
फिर मुझे पता नहीं। वे चौथे घर में शायद गए ही नहीं। उसके मित्र ने कहा, क्षमा कर दो, काफी हो गया। यह हो क्या गया है तुम्हें?

आप भी अपने से पूछ लेना। जो बात बार-बार मन में घूमती हो, कहीं आपने भी कोई ऐसी गलती तो नहीं कर ली है? यह ब्रह्मचर्य के नाम पर यही हो गया है। यह तीन-चार हजार वर्षों की रट--कि स्त्री नरक है, पाप का द्वार है, फलां है--ये सारी बेवकूफी की बातें, यह आदमी के मन में गहरी हो गई हैं।
और बच्चे को हम बचपन से ही रुग्ण कर देते हैं, स्त्री और पुरुष के बीच फासला खड़ा कर देते हैं, दूरी खड़ी कर देते हैं। छोटे-छोटे बच्चों के बीच जहर बो देते हैं। और फिर वह जहर जिंदगी भर उनका पीछा करता है। स्त्री से मुंह चुराना चाहते हैं; स्त्री पुरुष से मुंह चुराना चाहती है। एक-दूसरे को देखने से बचना चाहते हैं। और इस सारे बचने की कोशिश में कपड़ों वाली हालत हो जाती है कि सारे बचने की कोशिश करते हैं और बार-बार पुरुष को स्त्री दिखाई पड़ जाती है, स्त्री को पुरुष दिखाई पड़ जाता है। जितना भागते हैं एक-दूसरे से, पाते हैं, उतना ही थोड़ी दूर भाग कर फिर मिलना हो जाता है। यह जो रोग हमने पैदा कर लिया है, यह किस बात से पैदा कर लिया है?
यह कोई बुनियादी भूल हो गई है हमारी साइकोलाजी में, हमारे मनोविज्ञान में, कोई लोकमानस में कोई बुनियादी भूल की बात खड़ी हो गई है।
वह भूल यह हो गई है कि सेक्स से ज्यादा पवित्र, सेक्स से ज्यादा डिवाइन, सेक्स से ज्यादा भागवत और ईश्वरीय कोई तथ्य नहीं है संसार में। क्योंकि उससे ही जीवन पैदा होता है। उससे ही जीवन विकसित होता है। उससे ही सारे जीवन के फूल खिलते और जगत निर्मित होता है। उसको, जो जीवन में केंद्र है और जो जीवन का आधार है और जो परमात्मा की प्रक्रिया है जीवन को जन्म देने की, उस प्रक्रिया की ही हम निंदा कर रहे हैं! तो उस निंदा का फल यही हो सकता है कि हम उसमें निंदा करके डूब जाएं, उलझ जाएं और आब्सेशन बन जाए, रोग बन जाए, चित्त रुग्ण हो जाए और सेक्स के आस-पास ही घूमने लगे, घूमने लगे, घूमने लगे। यह जो भूल हमने कर ली है, यह भूल तब तक दूर नहीं होगी, जब तक सेक्स के प्रति सम्मान का भाव पैदा नहीं होगा--रेवरेंस का भाव।
परमात्मा के प्रेमी परमात्मा की जीवन-प्रक्रिया के विरोधी नहीं हो सकते हैं। और मैं आपसे कहता हूं कि जिस आदमी के मन में यौन के प्रति, जो कि परमात्मा की प्रक्रिया का सूत्र है, क्रिएटिविटी का राज और रहस्य है, जिसके मन में उसके प्रति सम्मान है, आदर है, मंदिर जैसी पवित्रता का भाव है, वह आदमी सेक्स से मुक्त हो सकता है। निंदा करने वाला कभी मुक्त नहीं हो सकता। वह आदमी मुक्त हो सकता है। वह आदमी मुक्त हो सकता है, लेकिन जो आदमी निंदा के भाव से भरा है वह कभी मुक्त नहीं हो सकता।
लेकिन यह निंदा का भाव हमारे भीतर गहरा है। और यह भाव हमें खाए जा रहा
है, परेशान किए जा रहा है। फिर इसको दबा लिया है सब तरफ से, तो अनेक रूपों में निकलता है। अनेक रूपों में निकलता है। फिल्म बनती है, तो अश्लील और गंदी। और तब देश भर के नेता, देश भर के गुरु, देश भर के विचारक चिल्लाने लगते हैंः गंदी फिल्म नहीं बननी चाहिए! गंदी फिल्म बनती किसलिए है, यह कोई नहीं पूछता। गंदी फिल्म देखता कौन है, क्यों देखता है, यह कोई नहीं पूछता। अश्लील पोस्टर नहीं लगने चाहिए! आंदोलन चलते हैं कि अश्लील पोस्टर हटाओ! लेकिन यह कोई नहीं पूछता कि अश्लील पोस्टर को जो लोग देखने को तैयार हैं, उनके मन में कहीं कोई बुनियादी भूल हो गई है। अन्यथा अश्लील पोस्टर को देखने को तैयार कौन होता?
और कोई अश्लील पोस्टर आज बनाए जा रहे हैं? फिल्म आज बन रही है? दुनिया
की पुरानी से पुरानी किताबें अश्लील हैं। और दुनिया के पुराने से पुराने मंदिरों के ऊपर इस तरह के चित्र हैं, जो कोई फिल्म आज भी नहीं बना सकती है। जाओ खजुराहो देखो! जाओ पुरी और कोणार्क देखो! और पूछो अपने से कि फिल्में अश्लील हैं कि इन मंदिरों को बनाने वाले लोग अश्लील रहे होंगे? तो कौन अश्लील है और क्यों अश्लील है, सवाल यह है।
पोस्टर मिटाने से कुछ भी नहीं होगा और खजुराहो के मंदिर गिरा देने से कुछ भी नहीं होगा। फिर आदमी नया तैयार कर लेगा। अगर मन की मांग है, तो आप कुछ रोक नहीं सकते। कालिदास और भवभूति जैसे बड़े-बड़े साहित्यकारों का सारा साहित्य सेक्स से भरा हुआ है। क्या करोगे? ऐसे अश्लील कि पता न चले!

यह जो सारा का सारा रोग पैदा हुआ है, यह हुआ क्यों है? यह सारा साहित्य, यह सारा संगीत, ये सारे नृत्य, ये सारे चित्र, ये सारी मूर्तियां, ये क्यों सेक्स के आस-पास खड़ी हो गई हैं? यह आदमी के बुनियादी जीवन में कोई भूल हो गई है, इसलिए।
अगर एक गांव को कुछ दिनों तक भूखा रखा जाए, तो उस गांव में आपको पता है, सपने लोग किस चीज के देखेंगे--औरतों के? नहीं! रोटी के, राजभोज के, महलों के, जहां राजा ने बुलाया है भोजन के लिए। अगर एक गांव को निरंतर भूखा रखा जाए, तो उस गांव के साहित्यकार किस चीज के गीत गाएंगे--स्त्रियों के? नहीं, रोटी के। वह गांव रोटी ही रोटी के पास घूमने लगेगा। उस सारे गांव की चेतना रोटी से ही पकड़ जाएगी।
एक जर्मन कवि हेन ने लिखा है कि एक बार मुझे तीन दिन भूखा रह जाना पड़ा।
जब तक मेरा पेट भरा था, तो चांद में मुझे अपनी प्रेयसी की तस्वीर दिखती थी।
जब तीन दिन भूखा रहा, तो चांद मुझे ऐसा लगा कि रोटी आकाश में लटकी हुई है।
तब मुझे पहली दफा पता चला कि चांद न तो प्रेयसी का चेहरा है, न रोटी है। मन में जो होता है, वह वहां दिखाई पड़ने लगता है।
मनुष्य के चित्त के संबंध में सेक्स के बाबत सबसे बड़ी भूल हो गई है।
और यह भूल अच्छे लोग, ऋषि-मुनि करवाते रहे हैं। इसका जिम्मा और पाप किन्हीं के ऊपर है तो उनके ऊपर है। अब तक आदमी को सेक्स के संबंध में स्वस्थ, विज्ञानयुक्त दृष्टि नहीं मिल सकी है। अब तक हम घबड़ाए हुए और भागे हुए हैं। और हम भागे हुए रहेंगे।
मैं आपसे यह कहना चाहता हूंः धार्मिक व्यक्ति वह है जो जीवन के सारे तथ्यों को स्वीकार करता है, उनके मूल्य को समझता है और समझने की कोशिश करता है कि किसी चीज का जीवन में क्या स्थान है।
सेक्स जीवन में केंद्रीय तथ्य है। आपकी निंदा से केंद्र से नहीं हट जाएगा। सिर्फ इतना होगा कि आप रुग्ण हो जाएंगे। सेक्स जीवन में केंद्रीय तत्व है। इस केंद्रीय तत्व को किसने स्थापित कर दिया है केंद्र में--शैतान ने? पश्चिम के वैज्ञानिकों ने? फिल्म इंडस्ट्री के मालिकों ने? अश्लील किताबें लिखने वालों ने? किसने स्थापित कर दिया है बीच में?
वह है। परमात्मा की यह सारी प्रकृति... फूल भी पैदा होते हैं, पक्षी भी पैदा होते हैं, पौधे भी पैदा होते हैं, सारे पैदा होने की प्रक्रिया यौन-प्रक्रिया है। जीवन उसी धारा से बहता है, उसी गंगोत्री से बहता है। तो जहां से जीवन निकलता है, उस मूल स्रोत की निंदा करेंगे तो रुग्ण हो जाएंगे, अस्वस्थ हो जाएंगे, परेशान हो जाएंगे। और फिर वह दमन दूसरे रास्ते खोजेगा, नये-नये रास्ते खोजेगा, नये-नये रास्ते खोजेगा।
मैं आपसे क्या कहना चाहता हूं? मैं आपसे यह कहना चाहता हूंः पहली तो बात यह कि सेक्स के प्रति अत्यंत सम्मान, समादर का भाव चाहिए--निंदा और शत्रुता का नहीं। सेक्स को उसी भांति लेना चाहिए जैसे परमात्मा को--उतनी ही पवित्रता से। क्योंकि स्रष्टा कहते हैं हम परमात्मा को। सेक्स सृष्टि है। उतने ही सम्मान और आदर से! और जब आपकी पत्नी, जिसे आप प्रेम करते हैं, वह जब आपके लिए इतनी सम्मान की पात्र हो जाएगी--नरक का द्वार नहीं; क्योंकि नरक का द्वार कहने वाले लोग अधार्मिक लोग रहे होंगे--जब वह इतने सम्मान का भाव ले लेगी, तो आप पाएंगे कि सेक्स खिलवाड़ नहीं रह गया। क्योंकि जिस बात को हम जितने सम्मान और श्रद्धा से देखते हैं, वह बात उतनी ही गुरु-गंभीर हो जाती है। वह खेल नहीं रह गया, वह भोग नहीं रह गया। वह पवित्रतम घटना है। वह प्रभु की प्रक्रिया में प्रविष्ट होना है। तो उसकी तैयारी चाहिए। उसके लिए पवित्र और शांत और मौन हृदय चाहिए।
संभोग की घटना उतनी ही मूल्यवान है, जितनी ध्यान और समाधि की घटना, जितनी प्रार्थना की घटना। जो व्यक्ति संभोग की प्रक्रिया में इतनी शांति और पवित्रता से जाता है जैसे मंदिर में, वह आदमी जान पाता है कि सेक्स क्या है। और जो सेक्स को जान पाता है, वह जिस दिन चाहे उसी दिन उससे मुक्त हो सकता है, एक क्षण भी रुकने की कोई जरूरत नहीं।
और फिर यह भी स्मरण रखें कि इतनी निंदा के बावजूद भी सेक्स हटता तो नहीं है और इतनी निंदा के बावजूद सेक्स से जो बच्चे पैदा होते हैं, अगर वे

बच्चे दीन-हीन, कुरूप, अस्वस्थ, रुग्ण, मन से विक्षिप्त पैदा होते हों तो आश्चर्य नहीं है। क्योंकि उनके मां-बाप दोनों ने ही जन्म की प्रक्रिया की निंदा की है और दुश्मन की तरह भाव से देखा है। लेकिन अगर मां-बाप ने, दोनों ने पवित्रता के भाव से सेक्स को देखा होता, पूज्य भाव से, परमात्मा के भाव से, तो शायद ये बच्चे बिल्कुल दूसरे ढंग के पैदा होते।
यह जो सारी मनुष्यता रुग्ण होती जा रही है--बीमार और अस्वस्थ और परेशान और बेचैन और विक्षिप्त होती जा रही है, उसका और कोई कारण नहीं है। सेक्स के प्रति अपमान का भाव उसका बुनियादी कारण है। एक नया मनुष्य पैदा हो सकता है, जिस दिन हम यौन के प्रति, काम के प्रति पवित्रता की दृष्टि और प्रार्थना के भाव को अपना लेंगे। एक प्रेयरफुल मूड चाहिए। और जो व्यक्ति उतने पवित्रता से देखता है, उस पवित्रता में ही--निंदा में दमन पैदा होता है, पवित्रता में मुक्ति पैदा होती है--और उतनी पवित्रता से देखने पर एक ट्रांसफार्मेशन, एक मन के भीतर एक बुनियादी रूपांतरण होता है। वह रूपांतरण यह है कि सेक्स की सारी ऊर्जा प्रेम में परिवर्तित हो जाती है। सेक्स की सारी ऊर्जा प्रेम में परिवर्तित हो जाती है।
जैसे किसी घर के पास किसी आदमी ने कचरे का, खाद का ढेर लगा रखा हो और गंदगी फैल रही हो और सारे घर में दुर्गंध भर गई हो, पास-पड़ोस के लोगों का निकलना मुश्किल हो गया हो, राहगीर घबड़ा जाते हों। और वही आदमी उस खाद को अपनी बगिया में डाल दे और बीज बो दे फूलों के, तो थोड़े ही दिनों में बगिया हरियाली से भर जाएगी, फूलों से भर जाएगी नाचते हुए, और राह पर सुगंध बिखर जाएगी। यह सुगंध भी उस खाद की दुर्गंध का रूपांतरण है। लेकिन खाद को घर में रख लें तो दुर्गंध फैल जाती है। और खाद फूल बन जाए तो सुगंध बन जाती है। वही खाद सुगंध की तरह छितरा जाती है चारों तरफ। जो भी निकलता है, धन्यवाद देता जाता है, इतनी सुगंध!
ब्रह्मचर्य सेक्स का विरोध नहीं, रूपांतरण है। वह ट्रांसफार्मेशन है। सेक्स ही जब पवित्रतम भाव ले लेता है, सम्मान और प्रार्थनापूर्ण हो जाता है, ध्यानयुक्त हो जाता है, मेडिटेटिव हो जाता है, तब एक क्रांति होती है भीतर और वह क्रांति यह होती है कि सेक्स प्रेम में बदल जाता है। ये जो दुनिया में इतने बड़े-बड़े प्रेमी हुए हैं, बुद्ध या क्राइस्ट जैसे लोग, इनका क्या हुआ है? इनके भीतर जो सेक्स था, वही रूपांतरित हुआ है। जितनी ज्यादा सेक्स की शक्ति है मनुष्य के भीतर, उतने ही उसके जीवन में प्रेम के रूपांतरण की संभावना है।
सेक्स तो संपदा है। उससे लड़ कर उसको नष्ट मत कर लेना। उसे प्रेम से और आहिस्ता से बदलने की कीमिया है। खोजना है उसकी केमिस्ट्री कि वह कैसे बदल जाए। और मैं कहता हूं, उस कीमिया के दो सूत्र हैं। पहला सूत्रः सम्मान का भाव। और दूसरा सूत्र हैः प्रेम का निरंतर विकास। जितना प्रेम बढ़ेगा, उतनी सेक्स की शक्ति प्रेम के मार्गों से प्रवाहित होने लगेगी। और धीरे-धीरे आप पाएंगे--सारा प्रेम, सारा सेक्स, सारी सेक्स की शक्ति प्रेम के फूल बन गई है और जीवन प्रेम के फूलों से भर गया है। सिर्फ प्रेम को उपलब्ध व्यक्ति ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होता है। जितना बड़ा प्रेम, उतना बड़ा ब्रह्मचर्य।
लेकिन जिनको हम ब्रह्मचारी कहते हैं, वे तो प्रेम से ऐसे भागते हैं जैसे कि कोई जंगली जानवर से या भूत-प्रेत से भागता हो।
एक छोटी सी घटना, फिर मैं अपनी बात पूरी करूं।
रामानुज एक गांव में ठहरे थे। एक आदमी उनके पास आया और उसने कहा कि मैं परमात्मा को पाना चाहता हूं। मैं क्या साधना करूं?
रामानुज ने उसे नीचे से ऊपर तक देखा। शायद वे पहचान गए। और उन्होंने कहा कि इसके पहले कि मैं तुझे कुछ बताऊं, मैं पूछता हूं--तूने कभी किसी को प्रेम किया?
वह आदमी बोला, आप भी कहां की बातें पूछते हैं! कहां की फिजूल बातें! छोड़िए। मैं ईश्वर को पाना चाहता हूं, प्रेम-व्रेम से क्या लेना-देना? मैंने कभी किसी को प्रेम नहीं किया।

उसने समझा होगा कि अगर मैं कहूं मैंने प्रेम किया, तो यह तो एक डिसक्वालिफिकेशन, एक अयोग्यता होगी धर्म की दुनिया में। वहां प्रेम-व्रेम करने वालों की कहां सुविधा है! वहां तो रूखे-सूखे लोग चाहिए पत्थर की तरह, जिनके जीवन में कभी प्रेम का अंकुर न खिला हो, वही लोग वहां जा सकते हैं।
उस आदमी ने कहा कि नहीं-नहीं, प्रेम वगैरह से मेरा कोई संबंध-नाता नहीं रहा। आप तो मुझे प्रभु का रास्ता बताइए!
रामानुज ने कहा, मैं फिर पूछता हूं एक बार। कभी भी किसी को भी प्रेम किया हो?
उस आदमी ने कहा, नहीं, सच मानिए, मैंने कभी किसी को प्रेम नहीं किया। मुझे प्रभु का रास्ता बताइए।
रामानुज ने कहा, मैं तीसरी बार पूछता हूं तुझसे, न किया हो प्रेम, कभी किसी के प्रति सिर्फ अनुभव किया हो भाव में?
उसने कहा कि नहीं। मैं तो ईश्वर को खोजना चाहता हूं।
रामानुज उदास हो गए और उन्होंने कहा, फिर तू कहीं और जा। अगर तूने किसी को भी प्रेम किया होता, तो उसी प्रेम को और बड़ा बनाया जा सकता था, कि वह प्रार्थना बन जाए, वह प्रभु की यात्रा बन जाए। लेकिन तू कहता है, प्रेम तूने किया ही नहीं। तो तेरे पास बीज ही नहीं है, वृक्ष कैसे बन सकता है? मुझे क्षमा कर, तू कहीं और जा। तूने किसी को भी प्रेम किया होता, तो उस प्रेम को और बड़ा किया जा सकता था, और विराट किया जा सकता था, अनंत किया जा सकता था। लेकिन तू कहता है, प्रेम है ही नहीं मेरे भीतर। तो फिर मैं असमर्थ हूं। फिर कुछ भी नहीं किया जा सकता है।
एक व्यक्ति को भी जो प्रेम करता है, एक क्षुद्रतम व्यक्ति को भी जो प्रेम करता है, उसने भी परमात्मा की तरफ पहला कदम उठा लिया। हां, यहीं रुक जाए, तो पहले कदम से कोई यात्रा पूरी नहीं होती। प्रेम किया है एक को, वह एक पर किया गया प्रेम धीरे-धीरे अनेक पर फैलता चला जाए, अनंत पर फैलता चला जाए। प्रेम जितना विराट होता चला जाएगा, उतना ही भीतर सेक्स और काम रूपांतरित होगा। और धीरे-धीरे आप पाएंगे, जिस दिन प्रेम की सुगंध चारों तरफ आपके बरसने लगी, उस दिन आपके भीतर कोई वासना नहीं रह गई।
ब्रह्मचर्य ऐसा आंखें फोड़ने से नहीं उपलब्ध होता। और ब्रह्मचर्य ऐसा जंगलों में भाग जाने से उपलब्ध नहीं होता। और ब्रह्मचर्य स्त्रियों की तरफ पीठ कर लेने से या स्त्रियों के पुरुषों की तरफ पीठ कर लेने से उपलब्ध नहीं होता। और ब्रह्मचर्य राम-राम के जप से उपलब्ध नहीं होता। अपने को भुलाने की कोशिश मत करिए।
आदमी को ठंड लगती है, नदी में नहाता है, तो जोर-जोर से कहने लगता हैः हरे राम, हरे राम! वह ठंड को भुलाने की कोशिश कर रहा है। किसी आदमी को गली में, अंधेरे में डर लगता है, तो वह कहता हैः जय हनुमान, जय हनुमान! वह डर को भुलाने की कोशिश कर रहा है। ये जितने लोग सेक्स को भुलाने के लिए राम-राम, राम-राम जप रहे हैं, ये सिर्फ भुलाने की कोशिश कर रहे हैं; ये कहीं भी नहीं पहुंच सकते। ये कहीं भी नहीं पहुंच सकते, पहुंचने का कोई इनके लिए उपाय नहीं है।
एक अंतिम बात, जो और बहुत मित्रों ने पूछी है, वह मैं कह दूं। फिर हम ध्यान के लिए बैठें। वह यह राम-राम के जप से मुझे ख्याल आ गया।

अनेक मित्रों ने पूछा है कि क्या जप का कोई भी स्थान नहीं है? कि हम ओम
को जपते हैं, हम गायत्री को जपते हैं, कोई राम-राम, कोई नमोकार, कोई कुछ, कोई कुछ। इनका क्या कोई उपयोग नहीं है? आप तो इनके जप की कोई बात नहीं कहते!

इनका उपयोग तो कोई भी नहीं है, लेकिन इनसे पैदा होने वाली बाधा बहुत बड़ी है। किसी भी शब्द की पुनरुक्ति, किसी भी शब्द को बार-बार रिपीट करना, दोहराना, मनुष्य के मन में जड़ता पैदा करता है; ज्ञान नहीं, स्टुपिडिटी पैदा करता है; बुद्धिहीनता पैदा करता है; मंद बुद्धि पैदा करता है; मन की चैतन्य शक्ति को क्षीण करता है, शिथिल करता है।

यह हम सबको अनुभव है, लेकिन ख्याल नहीं। अगर यहां बैठ कर मैं एक ही शब्द को घंटे भर तक दोहराता रहूं, तो आपके भीतर क्या होगा? दो बातें होंगी--कुछ लोग तो बहुत ऊब जाएंगे, उठ कर चले जाएंगे। कुछ लोग ऊब जाएंगे, लेकिन शिष्टतावश उठेंगे नहीं, तो सो जाएंगे। बस दो ही बातें हो सकती हैं, तीसरी कोई बात नहीं हो सकती।
एक मां को अपने बच्चे को सुलाना होता है, तो उसके पास बैठ जाती है। कहती हैः राजा बेटा सो जा, राजा बेटा सो जा, राजा बेटा सो जा। यह गायत्री का प्रयोग कर रही है! राजा बेटा घबड़ा जाता है थोड़ी देर में कि यह क्या बकवास लगा रखी है--राजा बेटा सो जा, राजा बेटा सो जा, राजा बेटा सो जा! अब राजा बेटा उठ कर कहीं जा भी नहीं सकता है! छोटा सा बच्चा है, कहां भागेगा? एक ही रास्ता है उसका भागने का कि वह नींद में भाग जाए, सो जाए कि यह बकवास बंद हो, इससे छुटकारा हो। मां समझती है कि हमारी लोरी की बहुत मधुरता की वजह से राजा बेटा सो गए हैं। राजा बेटा बोर्डम की वजह से, ऊब की वजह से सो गए हैं। राजा बेटा तो अलग, राजा बेटा के बाप के साथ भी यही किया जाए, वे भी सो जाएंगे।
आदमी ऊबता है रिपीटीशन से। पुनरुक्ति से ऊब पैदा होती है, घबराहट पैदा होती है, बेचैनी पैदा होती है, नींद आ जाती है। एक आदमी बैठा हुआ राम-राम, राम-राम, राम-राम, राम-राम कर रहा है। सिर्फ नींद खोज रहा है, आटो- हिप्नोसिस खोज रहा है, सम्मोहन खोज रहा है, खुद को सुलाने की तरकीब खोज रहा है। थोड़ी देर के लिए तंद्रा पैदा हो जाएगी, अगर ऐसा दो-चार-छह महीने जपते रहें तो। लेकिन तंद्रा ध्यान नहीं है और तंद्रा परमात्मा तक जाने का मार्ग नहीं है। इसीलिए, जिन मुल्कों में इस तरह की रटंत की प्रक्रिया रही, उन मुल्कों की बुद्धि क्षीण हो गई।
भारत में कोई विज्ञान पैदा नहीं हो सका, यह राम-राम के जप जैसी प्रक्रियाओं की वजह से। भारत की सारी प्रतिभा नष्ट हो गई, क्योंकि पुनरुक्ति से प्रतिभा नष्ट होती है। दोहराएं और प्रतिभा नष्ट होगी। प्रतिभा चाहती है नया, प्रतिभा चाहती है नवीन। और दोहराने से--पुराने, पुराने, पुराने को दोहराने से--घबड़ाहट और ऊब पैदा होती है और नींद पैदा होती है।
कोई जप कहीं नहीं ले जा सकता। मौन ले जाता है; और जप मौन नहीं है।
शून्य भाव, मौन भाव, सायलेंस, चुप हो जाना प्रभु तक ले जाता है। यह जप वगैरह सब बकवास है। एक ही शब्द को बार-बार दोहराएं या अनेक शब्दों को अलग-अलग दोहराएं, कोई भी स्थिति में मौन नहीं होता, हर हालत में मौन टूट जाता है। मौन पहुंचाएगा। मौन है प्रार्थना, मौन है द्वार, मौन है मार्ग--जप नहीं। और अब तो सारी दुनिया इस तथ्य को अनुभव कर रही है। नया मनोविज्ञान नई-
नई खोजें कर रहा है। और उन खोजों में सबसे महत्वपूर्ण खोजों में से एक यह है कि पुनरुक्ति मनुष्य की चेतना को क्षीण करती है, डल करती है, शिथिल करती है, विकसित नहीं करती। इसीलिए धार्मिक लोग जगत में कोई प्रतिभा का लक्षण नहीं प्रकट कर पाते हैं। होना तो यह चाहिए कि धार्मिक मनुष्य के भीतर ऐसी प्रतिभा का जन्म हो कि सारा जगत आलोकित हो। लेकिन यह नहीं हो पाता। यह नहीं हो पाने का कारण है।
किसी नाम का मैं विरोध नहीं कर रहा हूं। मुझे राम से कोई विरोध नहीं है। आप यह मत समझ लेना कि मैं राम-राम जपने के संबंध में यह कह रहा हूं, तो मैं राम का विरोधी हूं। नहीं, कोई भी शब्द--राम हो, अल्लाह हो, ओंकार हो, ओम हो, कुछ भी हो। और शब्द कोई भी काम कर सकता है। अगर बैठ कर आप कुर्सी, कुर्सी, कुर्सी, कुर्सी कहें, तो भी वही फल होगा जो राम-राम कहने से होता है। उसका जो फल है चेतना पर, वह शब्द की पुनरुक्ति का परिणाम है। इसलिए कोई भी शब्द की पुनरुक्ति कर लें। अल्लाह-अल्लाह करें, राम-राम करें, कुछ भी करें, कुछ भी! और उससे वही फल हो जाएगा। यह फल कोई चेतना का ध्यान नहीं है। यह फल कोई प्रार्थना नहीं है। यह फल कोई मुक्ति का मार्ग नहीं है।
ध्यान या प्रार्थना का अर्थ मेरे लिए मौन है, सायलेंस है।

तो घड़ी, आधा घड़ी को चौबीस घंटे में बिल्कुल मौन होकर रह जाएं और चुपचाप जीवन के साथ एकता का अनुभव करें, वही प्रभु-स्मरण है। यह नाम-जप वगैरह प्रभु-स्मरण नहीं है।
फिर प्रभु का कोई नाम है जो आप उसका नाम-जप करेंगे?
नाम तो आदमियों के भी झूठे हैं। आप पैदा हुए, तब आपको नाम दिया गया। आए
आप बिना नाम के हैं--अनाम। फिर मां-बाप काम चलाने के लिए नाम दे देते हैं कि इनका नाम राम है, इनका नाम विष्णु है, इनका नाम कृष्ण है। ये नाम सब कामचलाऊ हैं, झूठे हैं, ऊपर से चिपकाए गए हैं। कोई आदमी का कोई नाम नहीं है।
यह सामने वृक्ष खड़ा है, इसका कोई नाम है? वृक्ष का कोई नाम नहीं है। सब नाम आदमियों के दिए हुए हैं। अगर पृथ्वी पर आदमी समाप्त हो जाए, तो किसी चीज का कोई नाम रह जाएगा? किसी चीज का कोई नाम नहीं रह जाएगा। फिर भी दरख्त होंगे, आम होगा; फिर भी होगा। चांद-तारे होंगे, लेकिन नाम नहीं होगा। नाम अभी भी नहीं है उनका। नाम कहीं है ही नहीं जगत में, सिर्फ आदमी की ईजाद है। और हम इतने होशियार हैं कि हमने चीजों के भी नाम रख लिए हैं और परमात्मा का भी नाम रख लिया है।
नाम जैसी चीज बिल्कुल मिथ, बिल्कुल कल्पना है। तो परमात्मा का कोई नाम नहीं है। सिवाय मौन के, शून्य भाव के उससे कहीं मिलन नहीं हो सकता। इसलिए शून्य भाव को, मौन भाव को ही मैं ध्यान कहता हूं।

और बहुत से प्रश्न रह गए हैं। प्रश्न तो हमेशा रह जाते हैं। मेरी इच्छा भी नहीं है कि मैं सारे प्रश्नों का उत्तर दूं। मेरी इच्छा तो इतनी है कि आप सोचने-विचारने में समर्थ हो जाएं। मैंने इतने जो प्रश्नों के उत्तर दिए, उसका यह मतलब नहीं कि मैं जो उत्तर दे रहा हूं, वही उत्तर है। यह मतलब नहीं है। ये मैं अपने उत्तर दे रहा हूं। ये आपके भी उत्तर बनें, यह जरूरी नहीं है। आप इन पर विश्वास करें, यह बिल्कुल आवश्यक नहीं है। आप इन पर सोचें, विचार करें, तो आपके सोचने और विचारने से आपके भीतर वह विवेक पैदा होगा, जो आपके जीवन-पथ पर दीया बन जाएगा और आपको ले जाएगा।
मेरे उत्तर का कोई सवाल नहीं है, कोई मूल्य नहीं है। आपका प्रश्न मूल्यवान है। और जिस दिन आपके भीतर अपना उत्तर आएगा, उस दिन वह उत्तर भी मूल्यवान होगा।
लेकिन वह उत्तर आएगा कैसे? जब तक आप दूसरों के उत्तर पकड़ते रहेंगे, तब
तक आपका अपना उत्तर नहीं आ सकता है। जिस दिन आप सब उत्तर छोड़ देंगे और अपने उत्तर की तलाश में शांत और शून्य होकर खोज करेंगे, उस दिन वह उत्तर आएगा जो आपके जीवन का समाधान बन जाता है।
तो मेरी बातों पर विश्वास कर लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिए मेरी बातों से क्रुद्ध होने की भी कोई आवश्यकता नहीं है। मेरी बातों पर सिर्फ आप सोच सकें, विचार कर सकें, चिंतन कर सकें--वे फिजूल मालूम पड़ें, फेंक दें उन्हें फिर। और अगर उनमें से कोई चीज आपको अपने विचार से ठीक मालूम पड़ी, तो फिर वह मेरी नहीं रह गई, वह आपकी अपनी हो गई। जो आपके विचार से आपको ठीक मालूम पड़ी, वह आपकी अपनी हो जाती है। और वही सत्य मूल्य का है, जो आपका अपना है। जो उधार और दूसरे का है, वह व्यर्थ है। अपने सत्य की इस खोज में प्रभु आपको ले जाए, यह अंतिम कामना करता हूं। इसके बाद हम ध्यान के लिए बैठेंगे।
इन तीन दिनों में मेरी इतनी बातें सुनीं, इतने प्रेम से, इतनी शांति से, उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

माटी कहै कुम्हार सूं
पांचवां प्रवचन

जीवन क्या है?

मेरे प्रिय आत्मन्!
जीसस से कोई पूछ रहा था कि आपका जन्म कब हुआ? तो जीसस ने जो उत्तर दिया
वह बहुत हैरानी का है। यहूदियों का एक बहुत पुराना पैगंबर हुआ है अब्राहम, जीसस से कोई दो हजार साल पहले। अब्राहम यहूदियों के इतिहास में पुराने से पुराना नाम है। जीसस ने कहा कि अब्राहम था, उसके भी पहले मैं था।
विश्वास नहीं हुआ होगा सुनने वाले को। क्योंकि विश्वास हमें केवल उसी बात का होता है, जिसका हमें अनुभव हो। बात पहेली ही मालूम पड़ी होगी, क्योंकि अब्राहम के पहले जीसस के होने की कोई संभावना नहीं मालूम होती। शरीर तो हो ही नहीं सकता। लेकिन जीसस जैसा आदमी व्यर्थ ही झूठ बोले, यह भी संभव नहीं है।
लाओत्से से किसी ने एक दिन पूछा कि तुम्हारा जन्म कब हुआ? तुम्हारे जन्म की तिथि कौन सी है? तो लाओत्से ने कहा, जहां तक मैं जानता हूं, मेरा जन्म कभी नहीं हुआ। और मेरे जन्म के संबंध में अगर दूसरे कहें, तो उनका भरोसा मत करना, क्योंकि अपने जन्म के संबंध में जितना मैं जानता हूं, उतना कोई दूसरा नहीं जान सकता।
लेकिन हम सब तो दूसरे जो हमें बताते हैं, उस पर भरोसा करते हैं। यह बहुत ही मजाक की बात है लाओत्से ने जो कही। क्योंकि आपको भी अपने जन्म का कोई पता नहीं है, सिवाय दूसरों की बताई हुई बात के। दूसरे कहते हैं कि आप कभी पैदा हुए। समझें कि दूसरे न कहें, समझें कि एक बच्चे को न बताया जाए कि वह कभी पैदा हुआ। तो क्या कोई भी उपाय है कि बच्चा अपनी तरफ से पता लगा ले कि वह पैदा हुआ है? अगर बाहर से सूचना न दी जाए, तो आपको कभी पता भी चलता कि आप कभी जन्मे? और बड़े मजे की बात है, जन्मे आप हैं और सूचना बाहर से दी गई है। और जिन्होंने सूचना दी है, उन्हें भी अपने जन्म की कोई खबर नहीं; उनको भी उनके जन्म की खबर दूसरों ने दी है। और ऐसा ही और भी आगे है।
जन्म एक झूठी बात है, लोकोक्ति है। लोग कहते हैं कि आप पैदा हुए। कोई आदमी कभी पैदा नहीं होता। फिर इसी तरह लोग कहते हैं कि मर गए। जिन्होंने अपना जन्म भी नहीं जाना, वे अपनी मृत्यु कैसे जान सकेंगे? लेकिन जन्म हमें दूसरे बता देते हैं कि कभी पैदा हुए, फलां तिथि, फलां तारीख में। और फिर कोई मरता है चारों तरफ और हम सोचते हैं कि शायद हम भी मरेंगे। दूसरों के मरने की घटना को देख कर हम अपने बाबत भी विचार कर लेते हैं कि हम भी मरेंगे। स्वयं के जन्म की खबर दूसरों से दी गई सूचना, और मरना एक अनुमान, इनफरेंस; चूंकि और कोई मरा है, इसलिए मैं भी मरूंगा।
लेकिन जब हम किसी आदमी को मरते देखते हैं, तब हम क्या देखते हैं? सच में हम क्या देखते हैं?
दक्षिण में एक संन्यासी था ब्रह्मयोगी। उसने आक्सफोर्ड, रंगून और कलकत्ता विश्वविद्यालय में तीन बार एक बहुत अदभुत प्रयोग किया। उसने मरने का प्रयोग किया। वह दस मिनट के लिए मर जाता था, मर जाता था मेडिकली, जिसे चिकित्सक कह सकें कि मौत हो गई।
कलकत्ता यूनिवर्सिटी में जब उसने प्रयोग किया, तो दस बड़े चिकित्सक मौजूद थे। कलकत्ता यूनिवर्सिटी के सबसे बड़े चिकित्सक, सर्जन, सब मौजूद थे। और जब ब्रह्मयोगी दस मिनट के लिए मर गया, तो उन दसों ने दस्तखत किए हैं सर्टिफिकेट पर कि यह आदमी मर गया है, इसकी हम गवाही देते हैं। सांस खो गई, हृदय की धड़कनें खो गईं, खून की गति खो गई, मरने की सारी की सारी लक्षणा पूरी हो गई।
दस मिनट बाद वह आदमी वापस लौट आया, और उस आदमी ने कहा कि अगर यह तुम्हारा सर्टिफिकेट सही है, तो मैं वापस नहीं लौट सकता। और अगर मैं वापस लौट आया हूं, तो तुमने अब तक जितने मृत्यु के सर्टिफिकेट दिए, सब झूठे थे। क्योंकि इन दो के सिवाय और क्या मतलब होगा?

और उन दस डाक्टरों ने दूसरी बात भी लिख कर दी है और वह लिख कर यह दी है
कि जहां तक हम समझते हैं और जहां तक हमारा विज्ञान जानता है, हम समझते हैं कि यह आदमी मर गया था। लेकिन हम अपनी आंखों को तो झूठा नहीं कह सकते, और यह आदमी फिर जिंदा है।
और इस घटना ने सारी दुनिया के चिकित्सकों को चिंता में डाल दिया था। क्योंकि इसका मतलब क्या होता है? जिसको हम मृत्यु कहते हैं, वह कुछ कामों का बंद हो जाना है--श्वास नहीं चलती, खून नहीं बहता, हृदय नहीं धड़कता। अगर जिंदगी इन्हीं चीजों का जोड़ है, तो जरूर मौत इनके बंद हो जाने से घटित हो जाती। लेकिन किसने कहा कि जिंदगी इनका जोड़ है? जिंदगी इससे बहुत बड़ी बात है। जन्म पर जो शुरू होता है, मौत पर बंद हो जाता है। लेकिन न तो जन्म पर जिंदगी शुरू होती है और न मौत पर जिंदगी समाप्त होती है।
लेकिन हम तो अपने शरीर की धड़कन, खून की गति, नाड़ी का चलना, इनको ही अपना होना समझते हैं। इससे बड़ी जटिलता पैदा हो जाती है। इसलिए दो झूठ के बीच हम जीते हैं--एक जन्म का झूठ और एक मृत्यु का झूठ। पृथ्वी पर इनसे बड़े झूठ नहीं हैं। लेकिन ये सबसे बड़े सत्य मालूम पड़ते हैं, क्योंकि अधिकतम लोग, कहना चाहिए सभी, इन्हें स्वीकार करते हैं। और जो असत्य भी स्वीकृत हो जाता है, वह सत्य मालूम पड़ने लगता है। लेकिन कभी-कभी कोई संदेह पैदा कर देता है। कभी-कभी कोई संदेह पैदा कर देता है।
सिकंदर हिंदुस्तान आया। और जब वह वापस लौट रहा था, तो हिंदुस्तान की सीमा को पार करते समय उसे ख्याल आया कि यूनान में उसके मित्रों ने उससे कहा था कि लौटते समय एक संन्यासी को भी ले आना भारत से। और सब तो लाओगे ही, लेकिन धन, हीरे-जवाहरात, मोती, वे सब यूनान में भी हैं, एक संन्यासी भी ले आना।
सिकंदर ने और सब तो लूट की, संन्यासी की याद न रही, आखिरी क्षण में याद आई, तो उसने कहा, जाओ, किसी संन्यासी को पकड़ लाओ।
सिपाही गांव में गए, उन्होंने गांव के लोगों से पूछा। तो गांव के लोगों ने कहा, संन्यासी तो गांव में एक है, लेकिन तुम ले जा सकोगे, इसकी हमें उम्मीद नहीं! उन्होंने कहा, इसकी तुम फिक्र छोड़ो। हम सिकंदर के सिपाही हैं। हम अगर पहाड़ों को कहें कि चलो, तो पहाड़ भी चलते हैं। ये नंगी तलवारें देखी हैं? संन्यासी क्या कर सकेगा? उन्होंने कहा, इसीलिए हम चिंतित हैं कि तुम्हारी तलवारें संन्यासी के साथ कुछ कर सकेंगी या नहीं कर सकेंगी! खैर, तुम जाओ, एक कोशिश कर लो।
वे गए। गांव के बाहर नग्न एक संन्यासी तीस वर्षों से नदी के तट पर था। यूनानी इतिहासकारों ने उसका नाम दंदामिस लिखा है। पता नहीं, उसका नाम क्या होगा। यूनानी नाम उन्होंने दंदामिस दिया है। हो सकता है दंडी साधु या ऐसा कुछ, दंडी स्वामी ऐसा कुछ उस आदमी का नाम रहा हो। डंडे वाला साधु, ऐसा कुछ नाम रहा हो। उन सिपाहियों ने जाकर दंदामिस को घेर लिया और उससे कहा कि सिकंदर की आज्ञा है कि हमारे साथ चलो!
वह फकीर नंगा हंसने लगा। उसने कहा कि हमने उसी दिन से आज्ञाएं माननी छोड़ दीं जिस दिन से हम संन्यासी हुए। हम आज्ञाएं तब तक मानते थे, जब तक हम डरते थे। जो नहीं डरता, उससे आज्ञा नहीं मनवाई जा सकती।
पर उन्होंने कहा, तुम्हें पता नहीं है, ये नंगी तलवारें देखते हो, हम तुम्हारी गर्दन काट देंगे!
तो उस संन्यासी ने कहा कि तुम काट दोगे, वह बहुत ठीक है, तुम काट सकते हो। हम कोई एतराज भी न करेंगे। लेकिन तुम्हारे गर्दन काटने से डरेंगे नहीं। क्योंकि गर्दन काटने से केवल वही डरता है, जो गर्दन कटने को मृत्यु समझता है।
ऐसे आदमी के सामने पहली दफा तलवारों पर जंग खा गई! नंगी तलवारें हाथ में थीं, लेकिन हाथ एकदम सुस्त हो गए। जो आदमी ऐसे मरने से राजी हो, इतनी मौज से, उसे मारना बिल्कुल बेकार है। और जो आदमी इतनी मौज से मरने को राजी न हो, उसको जिंदा रखना भी बिल्कुल बेकार है। लेकिन वह दूसरी बात फिर। सिकंदर से जाकर उन्होंने कहा कि वह आदमी ले जाया नहीं जा सकेगा। अजीब आदमी है! हमने बहुत लोग देखे--मरने वाले, मारने वाले, लड़ने वाले, भाग जाने

वाले। यह कुछ तीसरे तरह का है। न तो वह भागता है, न वह लड़ता है, उसके पास लड़ने को कुछ है नहीं, लेकिन वह भयभीत भी नहीं होता।
सिकंदर ने कहा, मैं खुद चलूंगा। और सिकंदर ने कहा कि हम तुम्हें स्वागत देंगे, सम्मान देंगे, शाही व्यवस्था देंगे--जो तुम चाहोगे देंगे। उस फकीर ने कहा, तुम कुछ न दे सकोगे, क्योंकि हम कुछ चाहते नहीं हैं।
बहुत बार भिखारी सम्राटों के सामने अपमानित हुए हैं, बहुत बार भिखारी सम्राटों के सामने अपमानित हुए हैं, क्योंकि भिक्षा देने से सम्राटों ने इनकार कर दिया। ये कभी-कभी ऐसे मौके आते हैं कि सम्राट भिखारियों के सामने अपमानित हो जाते हैं, क्योंकि भिखारी कुछ लेने से इनकार कर देते हैं! उसने कहा, तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है, क्योंकि हमें कुछ चाह ही नहीं।
सिकंदर ने कहा, तब भी कोई बात नहीं। चलना तो पड़ेगा ही, अन्यथा यह तलवार तुम्हारी गर्दन पर रखता हूं।
उस फकीर ने कहा, रखो।
सिकंदर ने कहा, तुम नासमझ हो, गर्दन कटेगी और नीचे गिर जाएगी!
उस संन्यासी ने कहा कि हम संन्यासी उसी दिन हुए, जिस दिन हमने देख लिया कि गर्दन कट जाए और नीचे गिर जाए, तो भी हम नहीं कटते हैं। अन्यथा हम संन्यासी ही नहीं होते। गर्दन गिरेगी तो तुम भी देखोगे कि गर्दन गिर रही है और मैं भी देखूंगा कि गर्दन गिर रही है। हालांकि तुम मुझे न देख पाओगे। मैं तुम्हें देखता रहूंगा।
सिकंदर ने अपने इतिहासकारों को कहा है कि लिख ली जाए यह बात--संन्यासी नहीं ले जाया जा सका। क्योंकि आखिरी उपाय था कि मौत से डरा दिया जाए। जन्म और मृत्यु हमारी जिंदगी के छोर हैं, इसलिए हमारे पास जिंदगी जैसी कोई चीज नहीं है। सिर्फ जिंदगी का एक भ्रम! ऐसा लगता है कि जी रहे हैं! जन्म से मौत की तरफ सरक जाते हैं और ऐसा लगता है कि जी लिए हैं। एक क्षण भी जिंदगी की किरण नहीं फूटती, और एक क्षण भी जिंदगी के फूल नहीं खिलते, और एक क्षण भी जिंदगी का संगीत नहीं बजता, और एक क्षण भी पता नहीं चलता कि हम क्या थे, क्या हैं। इस क्षण भी पता नहीं है।
हम सब यहां जिंदा हैं, कोई भी यहां मरा हुआ नहीं है। हम सब जिंदा हैं। लेकिन जिंदगी का हमको पता क्या है? और अगर हमको पता है, तो बुद्ध और महावीर पागल थे। फिर वे किस जिंदगी को खोज रहे थे? और अगर हमें पता है, तो फिर ये कृष्ण और क्राइस्ट, ये किस जिंदगी को खोज रहे थे? या तो जिसे हम जिंदगी कहते हैं वह जिंदगी नहीं है, और या फिर ये कृष्ण, क्राइस्ट, बुद्ध, महावीर विक्षिप्त हैं, पागल हैं। हम बुद्धिमान हैं!
हम अपने को बुद्धिमान भी नहीं कह पाते, नहीं कह सकते। क्योंकि बुद्धिमानी का अगर कोई अंतिम मापदंड हो सकता है, तो हमारे जीवन का आनंद हो सकता है। जो बुद्धिमानी आनंद तक न ला पाए, वह और क्या ला सकेगी? और तब मैं कहता हूं कि अगर बुद्ध और महावीर पागल भी रहे हों, तो उनका पागलपन स्वीकार कर लेने जैसा है, क्योंकि वह अपरिसीम आनंद से और जीवन के अभय से भर जाता है।
यह मैं क्यों कह रहा हूं? यह मैं इसलिए कह रहा हूं कि जन्मदिन के बहाने
हम यहां इकट्ठे हुए। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह किस आदमी के नाम के बहाने से इकट्ठे होते हैं। इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता कि अ का जन्मदिन है, कि ब का जन्मदिन है, कि स का जन्मदिन है। असल में, जन्मदिन को हम उत्सव क्यों बना लेते हैं? उत्सव बना लेते हैं इसीलिए कि जीवन का तो हमें कोई पता नहीं। अगर जीवन का हमें पता हो, तो प्रतिपल हमारा उत्सव हो जाए, फेस्टिवल हो जाए। जीवन का तो कोई पता नहीं। क्योंकि जीवन महोत्सव है। अगर उसका हमें पता हो जाए तो मैं समझता हूं कि जन्म का उत्सव फिर हम न मनाएं, क्योंकि जन्म तो सिर्फ एक शुरुआत है। और जिस जीवन में हम जी रहे हैं, अगर वह आनंद नहीं है, तो उस जीवन की शुरुआत कैसे आनंद हो सकती है? गंगोत्री आनंद हो सकती है और काशी के घाट पर बहती हुई गंगा में कोई आनंद नहीं है! काशी की गंगा अगर आनंदित नहीं है, तो गंगोत्री पर कौन सा आनंद होगा? यही गंगा और सिकुड़ी होकर और छोटी होकर।

जिसको हम जन्म कहते हैं, वह है क्या? वह हमारा यही जीवन बिल्कुल प्राथमिक। इस जीवन में, जब कि गंगा पूरी फैल गई है, कोई आनंद नहीं है, तो जन्म में क्या आनंद हो सकता है? सिर्फ जन्म जाना कोई आनंद हो सकता है? नहीं लेकिन हम झुठलाने में कुशल हैं। जीवन में दुख है, तो हम झूठे सुख कल्पित करते हैं कि जन्म में बड़ा सुख है, जन्मदिन में बड़ा सुख है! अगर हम कहें, जीवन में बड़ा सुख है, तो हमारी आंखें कह देंगी कि कहां है? अगर हम कहें, जीवन में बड़ा आनंद है, तो हमारे पैर बता देंगे कि नृत्य कहां है? अगर हम कहें, जीवन ही खुशी है, तो हमारे हृदय की धड़कनें कह देंगी कि कहां है? तो हम कहते हैं, नहीं, जन्म बड़ा खुशी का दिन है। अब कोई जन्म तो आज नहीं है, कभी था। उसको पकड़ा भी नहीं जा सकता, जांचा भी नहीं जा सकता, पहचाना भी नहीं जा सकता।
फिर हम सब एक-दूसरे को भी धोखा देने में सहयोगी होते हैं। यह जो हमारी दुनिया है झूठ की, यह बहुत म्युचुअल अंडरस्टैंडिंग पर, या म्युचुअल मिस-अंडरस्टैंडिंग पर खड़ी हुई है। इसमें हम एक-दूसरे को सहारा देते हैं। इसमें हम सब एक-दूसरे के जन्म पर इकट्ठे होकर उत्सव मना लेते हैं। फिर वे ही लोग हमारे जन्म के उत्सव पर भी आ जाएंगे। हमने उन्हें धोखा दिया, वे हमें भी दे जाएंगे। और ऐसे हम जीते हैं! इधर जन्म खुशी हो जाती है, तो मृत्यु दुख हो जाता है। वह उसी की कोरोलरी है, वह उसी तर्क का दूसरा हिस्सा है। जिसकी दुनिया में भी जन्म सुख है, उसकी दुनिया में मृत्यु दुख होगी। और ध्यान रखें, जन्म तो हो चुका, मृत्यु होने को है। इसलिए जन्म की खुशी तो ना-कुछ है, मृत्यु का दुख भारी है। शायद यह भी कारण है कि हम मृत्यु के दुख को भुलाने के लिए जन्म के उत्सव मनाए चले जाते हैं।
ऐसे प्रत्येक जन्मदिन जन्म की कम याद दिलाता है, आने वाली मौत का ज्यादा स्मरण कराता है। लेकिन हम पीछे की तरफ देखते हैं, हम आगे की तरफ नहीं देखते। हर जन्मदिन का मतलब सिर्फ यह है कि एक वर्ष और आदमी मरा, एक वर्ष मरने की और पूरी हुई, जिंदगी से एक वर्ष और रिक्त हुआ और चुका और समाप्त हुआ। लेकिन हम पीछे देखते हैं। और पीछे देख कर हम आगे देखने से बच तो नहीं रहे हैं? यह कोई शुतुरमुर्ग का उपाय तो नहीं है कि रेत में सिर गपा कर खड़े हो गए हैं, ताकि आगे दिखाई न पड़े?
लेकिन हम कितनी ही जन्मों की बातें करें, मौत चली आती है। हर जन्म के ऊपर पैर रख कर मौत चली आती है। हर जन्म को सीढ़ी बना कर मौत चली आती है। हर जन्म के पीछे मौत की छाया खड़ी है। इसलिए जो जन्म में खुश है, वह ध्यान रखे कि वह मौत में दुखी होगा। असल में, वह मौत के दुख को भुलाने के लिए जन्म की खुशी मनाए चला जा रहा है।
यह आत्मवंचना है। लेकिन यह जीवन इतना दुखी है कि इसमें हम कहीं कोई ओएसिस, इस मरुस्थल में कहीं कोई मरूद्यान खोज लेना चाहते हैं, झूठा ही सही, सपना ही सही, कहीं तो हम अपने सुख, कहीं अपनी खुशी को अटका लें! लेकिन अटकाई हुई खुशियां काम नहीं पड़ सकतीं। इसलिए मैंने उचित समझा कि आपको कहूं कि जब तक जीवन का पता न चल जाए... और जीवन का पता चल सकता है, क्योंकि जीवित हम हैं। अगर कुछ भी हमारे निकटतम है, तो वह जीवन है। अगर कुछ भी हमारे ठीक हाथ में है, तो वह जीवन है। अगर कुछ भी इस वक्त धड़क रहा है, तो वह जीवन है। अगर कुछ भी इस वक्त बोल रहा है, सुन रहा है, तो वह जीवन है। श्वास भीतर आ रही है, बाहर जा रही है, वह जीवन है। जीवन निकटतम है, हम जीवन हैं। लेकिन उससे हमारा कोई परिचय नहीं, उससे हमारी कोई पहचान नहीं। और हम न मालूम किन-किन बातों में इस मौके को गंवाते चले जाते हैं, इस परिचित होने के मौके को गंवाते चले जाते हैं।
नहीं, पीछे लौट कर देखने का कोई प्रयोजन नहीं है। जन्म के दिन से कुछ अर्थ नहीं है। अर्थ है तो अभी जो है, उससे अर्थ है। अगर कुछ भी जानने-पाने जैसा है, तो वह जो अभी है, वही जानने-पाने जैसा है।
लेकिन मन की एक तरकीब है कि जो मौजूद है, उसको चूकते चले जाओ और जो मौजूद नहीं है, उसे सोचते चले जाओ। इसलिए जो मैंने कहा कि हम सब जन्मे हैं, लेकिन हमें जन्म का पता क्यों नहीं है? हो सकता है... मैं कहता हूं "हो सकता है," आपकी तरफ से; अपनी तरफ से तो कहता हूं, ऐसा है। असल में, जब आप जन्म ले

रहे होते हैं, तब पिछली मृत्यु की याद आपके मन पर गहरी होती है और चूक जाते हैं मौका। पिछली मौत, इस जन्म के पहले जहां आप मरे हैं अभी, वह इतनी गहरी होती है मन पर कि मन वहीं अटका रहता है और जन्म का क्षण आप देखने से चूक जाते हैं। उसका भी कारण यही है जो कारण अभी है। अभी जीवन देखने से चूक रहे हैं, क्योंकि मन पीछे अटका है। फिर मौत आ जाएगी, मौत भी देखने से चूक जाएंगे, क्योंकि मन फिर पीछे अटका होगा--बाजार में होगा, दुकान में होगा; मकान में, मित्रों में, प्रियजनों में, दुश्मनों में, कहीं और होगा, जिंदगी में होगा।
अब यह बड़े मजे की बात है कि जो आदमी जिंदगी भर जी रहा था, वह जिंदगी को कभी न जाना, जब वह मरने लगता है तब उसका मन जिंदगी में है, और तब मौत सामने आ रही है, वह उसको चूके जा रहा है। अगर वह मौत को जान ले, अगर वह जन्म को जान ले, अगर वह जीवन को जान ले, तो एक बात भर पक्के रूप से पता चल जाती है कि जो भी हमारे भीतर है, उसका न कोई जन्म है, न कोई मृत्यु है।
लेकिन उसका यह मतलब मत समझ लेना... क्योंकि मैं सदा डरता हूं। जब मैं कहता हूं, उसका कोई जन्म नहीं, उसकी कोई मृत्यु नहीं, और आपकी तरफ देखता हूं, तो मैं डर जाता हूं। क्योंकि आपको लगता है कि आपका कोई जन्म नहीं, आपकी कोई मृत्यु नहीं। यह मैं नहीं कह रहा हूं। आप तो मरेंगे ही। मैं जो यहां दिखाई पड़ रहा हूं, वह तो मरेगा ही। इसलिए जब मैं कहता हूं, उसका कोई जन्म नहीं, उसकी कोई मृत्यु नहीं, तो आपकी बात नहीं कर रहा हूं। हां, आपके भीतर कोई है, उसकी बात कर रहा हूं, जिसका आपको भी कोई पता नहीं है।
इसलिए हम बड़े आश्वस्त हो जाते हैं यह सुन कर कि नहीं कोई मृत्यु, नहीं कोई जन्म, तो हम सोचते हैं कि ठीक है, बचेंगे।
आप नहीं बचेंगे। आपके बचने का कोई उपाय नहीं है। आप तो जाएंगे ही। आप
तो जा ही रहे हैं। यह भी कहना गलत है कि जाएंगे। यह हमारी भाषा की भूलें हैं, इसलिए हम ऐसे शब्द उपयोग करते हैं। जा ही रहे हैं। जाएंगे, इसमें तो ऐसा लगता है कि कभी भविष्य में कोई घटना घटने वाली है।
नहीं, यह ठीक ऐसा ही है, जैसे हम कहते हैंः नदी है। कहना नहीं चाहिए नदी है। कहना चाहिएः नदी हो रही है। क्योंकि नदी प्रतिपल हुई चली जा रही है। है की हालत में नदी कभी होती नहीं। इ.ज की हालत में दुनिया में कोई चीज कभी नहीं होती। सभी चीजें बह रही हैं। हम कहते हैं, फलां आदमी जवान है। है नहीं। कहना चाहिएः जवान हो रहा है या बूढ़ा हो रहा है। कुछ हो रहा होगा। है की हालत में कुछ ठहरता नहीं है।
इसलिए जब मैं कहता हूं कि आप तो जा ही रहे हैं, तो कारण है। कारण सिर्फ इतना ही है कि आप प्रफुल्लित न हों इस बात को जान कर कि नहीं, मरना नहीं है। धार्मिक लोग बहुत दिनों से बहुत प्रफुल्लित हैं इस बात को जान कर कि मरना नहीं है। इससे ऐसा नहीं है कि कुछ उनको पता चल गया है। इससे कुल इतना ही है कि वे सोचते हैंः जब मरना ही नहीं है, तो फिर ठीक है, जैसे जी रहे हैं वैसे ही जीए चले जाना है!
नहीं, आप तो जाएंगे, मैं जाऊंगा। मैं और तू के नाम से जिन्हें हम जानते हैं, वे तो पानी पर खींची गई रेखाओं से मिट जाएंगे। इधर खिंच भी नहीं पाते और मिटना शुरू हो जाते हैं। लेकिन फिर भी पीछे कुछ है, जो बच रहता है। उस दि रिमेनिंग, वह जो पीछे शेष रह जाता है, उसकी खोज ही धर्म है। उसकी खोज ही सत्य है। उसकी खोज ही मनुष्य को आत्मवान बनाती है। उसे पहली दफे पता चलता है कि कुछ और भी है, जो नहीं बदलता। जिस दिन उस न बदलने वाले पर हमारे पैर पड़ जाते हैं, उसी दिन हम किसी चट्टान पर खड़े होते हैं। उसके पहले सब रेत है। हम आंख कितनी ही बंद करें, अपने को समझाएं कितना ही, उससे बहुत अंतर नहीं पड़ता; वह सब रेत की तरह खिसकता चला जाता है।
लेकिन याद ही नहीं आता। याद ही नहीं आता। स्मरण ही नहीं आता।
जुंग ने कहीं कहा है कि ऐसा मालूम पड़ता है कि आदमी मृत्यु से इतना घबड़ा गया है कि उसने मृत्यु को अपने चेतन मन से बाहर कर दिया है। वह उसकी बात ही नहीं करता, उसका चिंतन नहीं करता, उसको सोचता नहीं, उसको ख्याल में नहीं लाता। क्योंकि उसके सारे हाथ-पैर कंप जाएंगे। वह अभी यहीं खड़ा-खड़ा गिर पड़ेगा। उसके भीतर कोई चीज कंपने लगेगी और डोलने लगेगी। उसका सारा

आश्वासन खो जाएगा। उसकी सब पक्की मंजिलें, सब एकदम ताश के पत्ते हो जाएंगी। जरा से हवा के झोंके, और सब गिरने लगेगा।
यह डर, शायद इसीलिए हम मृत्यु को बाहर रखते हैं और जन्म को भीतर रखते हैं। जन्म हमारे चित्त में बड़ा गहरा होकर बैठा रहता है। जन्म है मित्र का, तो हम फूल भेंट देते हैं, अभिनंदन कर आते हैं। सब भलीभांति जानते हुए कि कोई अभिनंदन काम नहीं पड़ेगा, कोई फूल काम नहीं पड़ेंगे, कोई शुभकामनाएं काम नहीं पड़ेंगी।
नहीं, यह नहीं कह रहा हूं कि ऐसा मत करें। जिंदगी आपकी शुभकामनाओं के बिना ही काफी बुरी है, उनको और घटा दें तो कुछ अच्छा नहीं हो जाएगा, यह नहीं कह रहा हूं। यह भी नहीं कह रहा हूं कि फूल मत भेज दें किसी के जन्मदिन पर। फूल के अलावा भेजने को और हो भी क्या सकता है! ऐसे फूल है बड़ा सुंदर प्रतीक। वह खबर ले जाता है कि आया नहीं कि कुम्हलाना शुरू हो गया! जन्मदिन पर फूल भेजना ही चाहिए, क्योंकि वह खबर भी लाता है साथ में। बड़ी से बड़ी भेंट फूल की हो सकती है। कीमती से कीमती भेंट फूल की हो सकती है। क्योंकि साथ खबर भी लाता है। सुबह आया नहीं कि सांझ उसे फेंक देना पड़ेगा। सुबह वह जन्मदिन की खबर लेकर आया था, सांझ मृत्यु के दिन की खबर लेकर जा चुका है। नहीं, फूल तो जरूर भेजते जाएं। अभिनंदन भी जरूर करें, शुभकामना भी जरूर करें। लेकिन इससे किसी भ्रांति को जन्म न दें। ये हमारी शुभकामनाएं ऐसी ही हैं, जैसा मैंने सुना कि जब भगतसिंह को फांसी की सजा हुई, तो उसके और दो-चार मित्र भी बंद थे जिनको फांसी की सजा थी। वे रोज सुबह उठ कर एक-दूसरे को शुभकामना करते थे। अब जिनको फांसी की सजा हुई हो, सेंटेंस टु डेथ, रोज सुबह सूरज का उग आना और फिर... । लेकिन शुभकामना भी तो सीधी नहीं कर सकते थे। हम भी नहीं कर पाते। अपनी-अपनी कोठरियों में बंद सिर्फ दीवालों को खटखटा कर नियम बना लिया था कि इतने खटके, तो समझना कि अभी हम जिंदा हैं और शुभकामना भेजते हैं कि परमात्मा तुम्हें जिलाए। तो वे नियम से खटके बना लिए थे, वे खटके बजा देते थे। फिर कोठरियों में खुशी फैल जाती थी कि अभी सब साथी जिंदा हैं। लेकिन कैसी विडंबना कि वह जीना सिर्फ मरने के लिए है! आज नहीं कल, कल नहीं परसों, फांसी तो होने ही वाली है। वह जीना सिर्फ कल मरने के लिए है। फिर भी एक दिन और, तो खुशी की लहर फैल जाती, गीत गाने लगते, क्योंकि अभी कोई साथी मरा नहीं, सब दरवाजों से खटके की आवाज आ गई, सब साथी जिंदा हैं। सबने एक-दूसरे को शुभकामना पहुंचा दी कि हम जीवित हैं, परमात्मा का धन्यवाद है! लेकिन किसलिए जीवित हैं? वह फांसी कल, कल नहीं परसों, वह फांसी राह देखती है। सिर्फ मरने के लिए?
हमारी हालत भी बहुत भिन्न नहीं है भगतसिंह से और उनके साथियों से। थोड़ा सा फर्क है। वह फर्क यह है कि वे कम से कम अपनी मौत के प्रति आश्वस्त भी थे। हम उतने आश्वस्त भी नहीं हैं, वह भी पक्का नहीं है। लेकिन हम जिस जगह खड़े हैं, वहां करीब-करीब हालत वैसी है, जैसे किसी कारागृह में फांसी पर जाने वाले लोग क्यू में खड़े हों। लेकिन कितना उपद्रव मचा लेते हैं उन थोड़े से क्षणों में, कितना फैलाव कर लेते हैं, कितना विस्तार कर लेते हैं! कितना क्या कुछ कर डालते हैं उन थोड़े से क्षणों में! सिर्फ एक चीज छोड़ जाते हैं कि वह थोड़े से क्षण में हम उस तत्व को जान सकते थे जो आया था और जाएगा, उसको नहीं जान पाते। बस उससे वंचित रह जाते हैं।
तो आप शुभकामनाएं लाए, उसके लिए धन्यवाद। लेकिन उस शुभकामना से आप अपने जीवन के प्रति आश्वस्त होकर मत चले जाना। मुझे उससे कोई आश्वासन मिलने की बात नहीं है। लेकिन आप मत सोचते हुए चले जाना कि जीवन है, जन्म है। मृत्यु को अलग काट कर मत रख देना। अच्छी दुनिया हो तो मैं मानता हूं-- हमें मृत्यु-दिन ही मनाना चाहिए।
लेकिन हम तो मृत्यु-दिन तब मनाते हैं जब आदमी मर जाता है। तब मनाने का कोई मतलब नहीं रह जाता। हमें मनाना ही ऐसा चाहिए, आदमी पांच साल का हो गया, तो कहना चाहिए कि मृत्यु पांच साल करीब आ गई। दस साल का हुआ, तो दस साल करीब आ गई। बीस साल का हुआ, तो बीस साल करीब आ गई। और मृत्यु का ही दिन मनाना चाहिए। वह ज्यादा रियलिस्टिक है, यथार्थ है। और शायद हम मृत्यु के दिन

मनाने लगें, तो शायद हमारे जीवन में अंतर पड़े। क्योंकि हर वर्ष हमें याद आए कि मौत एक वर्ष करीब आ गई, तो हम वही न हो सकें जो हम बने रहते हैं।
हम मरघटों को, कब्रिस्तानों को गांव के बाहर बनाए हुए हैं, इसी डर से
कि वे दिखाई न पड़ जाएं। मेरा वश चले तो गांव के बीच में ही होने चाहिए। हम दिन में दस बार निकलें, हमें मरघट दिखाई पड़े। दस बार ख्याल आए कि मौत है। क्योंकि बड़ी दुख की बात है कि मौत ही अकेला एक तत्व है, जिसकी पीड़ा हममें घनी हो जाए, तो हमारा जीवन परिवर्तित हो सकता है, अन्यथा नहीं। मौत ही एकमात्र दंश है, कांटा है, जो गहरा हमारी छाती में चुभ जाए, तो शायद कोई ट्रांसफार्मेशन, कोई क्रांति घटित हो जाए, अन्यथा नहीं। मौत ही हमें घेर ले और जोर से पकड़ ले, तो शायद हम कोई छलांग लगाएं, अन्यथा नहीं।
इसलिए बुद्ध के पास जब कोई भिक्षु आता और कहता कि मैं परमात्मा की खोज
पर आया हूं, सत्य की खोज पर आया हूं, आत्मा को जानना चाहता हूं; तो बुद्ध कहते, बंद करो, बंद करो ये बातें। पहले मैं तुमसे पूछता हूं, मौत को खोजने का कोई ख्याल है?
वह आदमी कहता, मौत से क्या लेना-देना? मुझे आत्मा खोजनी है। परमात्मा खोजना है।
बुद्ध कहते, नहीं, पहले मौत खोजनी है। क्योंकि जो मौत को जान लेगा, वह परमात्मा को भी जान लेगा। लेकिन जो मौत को नहीं जानेगा, वह परमात्मा को भी नहीं जान सकता।
मौत जिंदगी की जरूरी सिचुएशन है, वह जरूरी स्थिति है, जिसमें से हमारे भीतर सब कुछ पैदा होता है। तो बुद्ध उससे कहते कि तू जाकर कुछ दिन मरघट पर रह कर आ, फिर लौट आ। फिर अगर तू ब्रह्म की जिज्ञासा करेगा, तो मैं उत्तर दूंगा। फिर तू आत्मा की पूछेगा, तो हम बात करेंगे। पहले तू मरघट पर रह आ। अक्सर भिक्षुओं को वे मरघट पर भेज देते कि तुम वहीं चौबीस घंटे रहो।
अब चौबीस घंटे मरघट पर रहना। फिर कोई मुर्दा आया, फिर कोई जला। फिर कोई मरा, फिर कोई रोता हुआ आया। दिन भर, रात, आधी रात भी, सुबह भी, सांझ भी, न कोई समय, न कोई असमय, लोग मरते ही चले जाते हैं, मरघट पर आते ही चले जाते हैं! वह आदमी कब तक देखेगा! कितनी देर तक देखेगा! अंततः उसे ख्याल आ जाता है कि मैं भी इस क्यू में कहीं खड़ा हूं। यह ज्यादा देर की बात नहीं है।
वह तो मरघट हमारी चेतना के बाहर है। इसलिए हमें कभी पक्का पता नहीं चलता। और जब एक आदमी मरता है, तो हम कहते हैं, बेचारा! हमें पता नहीं लगता कि हम क्यू में थोड़े से आगे बढ़ गए। उस आदमी ने जगह खाली कर दी। हर मौत, हमारी ही मौत है। हर मौत, हमारी ही मृत्यु का स्मरण है। और अगर यह स्मरण बन सके, गहरा हो सके, तो शायद हम जीवन को भी जानने में सफल हो सकते हैं।
तो दो-तीन बातें अंत में आपसे कह दूं।
एकः जिसे जन्म कहते हैं, उसे जन्म मत समझ लेना। वह सिर्फ एक सोशल मिथ,
एक सामाजिक पुराणकथा है। जिसे मृत्यु कहते हैं, उसे मृत्यु मत समझ लेना। वह केवल हमारे अज्ञान का दूसरा नाम है। जिसे जीवन कहते हैं, उसे जीवन मत समझ लेना। क्योंकि रोज सुबह उठ आना और रोज सांझ सो जाना; रोज वही भोजन, वही कमाना, वही मित्र, वही शत्रु, वही सारा जाल, उसकी निरंतर पुनरुक्ति, अंतहीन पुनरुक्ति... बड़ी आश्चर्यजनक बात है कि उसकी अंतहीन पुनरुक्ति भी हम करते चले जाते हैं, ऊबते भी नहीं हैं!
कामू ने अपनी एक किताब का प्रारंभ एक अजीब से वाक्य से किया है। कहा
है कि दि ओनली मेटाफिजिकल प्रॉब्लम बिफोर मैन इ.ज स्युसाइड। एक ही आध्यात्मिक समस्या मनुष्य के सामने, आत्महत्या है।
और जब उससे किसी ने पूछा कि यह तुमने क्या लिखा है? तो उसने कहा कि जब
से मैं थोड़े से होश से भरा, तब से मैं पूछ रहा हूं अपने से कि अगर यही जिंदगी है, तो आत्महत्या में बुराई क्या है? अगर यही जिंदगी है--जो मैं कल जीया था, परसों जीया था, इसी को कल फिर दोहराना है, परसों फिर दोहराना है-- तो यह सोच कर ही कि इसी को दोहराए चले जाना है, मैं सोचता हूं, आत्महत्या में बुराई क्या है? अगर यही जिंदगी जिंदगी है!
लेकिन हममें से कितनों ने सोचा है यह कभी? कि जिसे हम जिंदगी कहते हैं, अगर यही जिंदगी है... । हमें तो अगर कोई भगवान मिल जाए और कहे कि यही जिंदगी

हम तुम्हें दुबारा देते हैं, तो हम कहेंगे कि बिल्कुल हम राजी हैं। साठ साल और फिर यही करेंगे। दि सेम डेड रूटीन, फिर यही करेंगे। लेकिन इसका मतलब सिर्फ इतना है कि हमारे पास कोई संवेदनशील चिंतन नहीं है, कोई सेंसिटिविटी नहीं है कि हम क्या कर रहे हैं।
इसलिए आप चकित न होना कि दुनिया में जो लोग आत्महत्या कर लेते हैं, अनिवार्य नहीं कि कायर हों, इसकी भी संभावना है कि आपसे ज्यादा संवेदनशील हों। और आप यह मत समझ लेना कि आत्महत्या नहीं करते हैं, तो बड़े बहादुर हैं। संभावना बहुत यह है कि मरने की भी हिम्मत नहीं जुटा पाते, जीने की तो बात अलग है। इसलिए जीए चले जाते हैं। मरने के लिए भी तो कुछ सोचना पड़ेगा, कोई डिसीजन लेना पड़ेगा। और जिंदगी तो सिर्फ बहते चले जाते हैं, बहते चले जाते हैं।
कभी बैठ कर थोड़ा सा लेखा-जोखा कर लेना चाहिए। कभी बैठ कर थोड़ा लेखा- जोखा करना चाहिए कि पचास साल जीया, इस पचास साल में कितने क्षण हैं जो जीवन के क्षण हैं? जिनको मैं फिर से अगर परमात्मा हो, तो मांगना चाहूं! तो हाथ से रेत खिसकती मालूम पड़ेगी। एक क्षण भी ऐसा नहीं लगेगा जिसे दुबारा मांगने का मन हो। इतना बासा है जीवन! इतना स्टेल! लेकिन हम बासी जिंदगी पर, जैसे सड़ी हुई मछली पर कोई टमाटर सॉस ऊपर से डाल कर खाए चला जाता हो, ऐसे हम सड़ी हुई जिंदगी पर बस रोज आशाओं के सॉस डालते हुए चले जाते हैं--कल कुछ होगा, परसों कुछ होगा!
और मजा यह है कि आप ही कल भी होंगे। तो आप तो कल भी थे। कल आपने क्या किया? परसों भी आप थे। परसों आपने क्या किया? आप ही कल भी होंगे। और ध्यान रहे, आज से कमजोर होंगे। रोज शक्ति चुकती चली जाती है, रोज क्षण कम होते चले जाते हैं। समय क्षीण होता चला जाता है, अवसर क्षीण होते चले जाते हैं, शक्ति दीन होती चली जाती है। अगर कल आप नहीं पा सके, तो आने वाले कल आप बिल्कुल भी नहीं पा सकेंगे।
इससे यह मत समझ लेना कि मैं आपको निराश कर रहा हूं। इससे यह मत समझ लेना कि मैं कोई निराशावादी, दुखवादी हूं, कि कुछ भी नहीं हो सकेगा। मैं आपसे सिर्फ इतना कह रहा हूं कि जिस आशा में आप जी रहे हैं, उस आशा में जीने से कभी कुछ न हो सकेगा। अगर आपको निराशा भी पकड़ ले, तो कुछ हो सकता है। ध्यान रहे, इस पृथ्वी पर सिवाय बुद्धुओं के और कोई बहुत आशावान नहीं
हो सकता है। नहीं, जिंदगी ऐसा मौका नहीं देती, जिंदगी ऐसा मौका नहीं देती। जिंदगी को जो भी देखेगा, वह निराश होगा, होना चाहिए। और निराशा जब इतनी गहरी हो जाती है कि यह जिंदगी बिल्कुल बेकार मालूम पड़ती है, तभी पहली दफा छलांग लगाने का मन होता है कि हम कोई और जिंदगी खोजें।
बुद्ध एक आदमी से कह रहे हैं कि तू अब छोड़ यह सब। वह कहता है कि कुछ देर
और रुक जाएं। अगले वर्ष लड़की की शादी कर लेनी है, फिर मैं आता हूं। बुद्ध ने कहा कि समझ कि साल बीता, लड़की की शादी हो गई। पक्का है, आएगा? उसने कहा, साल तो बीत जाने दें! बुद्ध ने कहा, सोच कि साल बीता, लड़की की शादी हो गई। क्या ख्याल है? उसने कहा, लेकिन अभी कैसे कह सकता हूं! साल भर बाद हजार सवाल उठ सकते हैं। बुद्ध ने कहा, मैं बचा तो अगले वर्ष आऊंगा।
बुद्ध उस गांव से फिर निकले। वह आदमी सुनने बुद्ध को नहीं आया, क्योंकि वह डरा। उसने सोचा कि पता नहीं, वह आदमी फिर पहचान ले! और ऐसे आदमी भूलते नहीं, ऐसे आदमी पहचान लेते हैं और पकड़ लेते हैं। पहचान लें; साल तो बीत गया! लेकिन कहीं वे फिर कहें! और सवाल तो कुछ भी हल नहीं हुए। सवाल और बढ़ गए, क्योंकि एक साल में सवाल और पैदा किए। आदमी तो वही है जो सवाल पैदा करता है।
बुद्ध बैठे हैं, लोग आ गए हैं और बुद्ध किसी की राह देख रहे हैं। लोगों
ने कहा, अब आप शुरू करिए, समय बीता जाता है! बुद्ध ने कहा, एक आदमी ने वायदा किया था आपके गांव में, वह कहां है? उन्होंने कहा, बड़ी मुश्किल है, वह आपसे बच रहा है! उसको बुला लाओ, बुद्ध ने कहा। क्योंकि पता नहीं, अगले साल मैं बचूं या न बचूं। उसका तो मामला अगले साल तक टल ही गया होगा।
उस आदमी को लाया गया। उसने कहा, माफ करिए। बड़ी गलती हो गई। मगर हम समझ नहीं पाते न! इतने दूर के बहुत सवाल उठ गए हैं। अब लड़का भी बड़ा हो गया, मां

की तबीयत ठीक नहीं रहती, पिता बूढ़े हैं, घर में बहुत काम हैं। लेकिन अगले वर्ष जब आप आएंगे... !
बुद्ध ने और लोगों से कहा कि देखते हो इस आदमी को!
असल में, इस आदमी के मन में अब तक जगत के प्रति कोई निराशा नहीं जनमी है। अभी इसे ऐसा नहीं लग रहा है कि जगत में आग लगी है, तो यह पोस्टपोन कर सकता है, स्थगन कर सकता है।
अगर इस मकान में आग लग जाए, तो यहां एक आदमी नहीं मिलेगा जो कहेगा कि मैं थोड़ी देर, दस मिनट बाद में आता हूं! आग लगी तो यहां जो होड़ होगी वह यह होगी कि कौन पहले निकल जाए! कोई पीछे होने को राजी नहीं होगा।
लेकिन जीवन के सत्य की तरफ ऐसी कोई होड़ नहीं दिखाई पड़ती। सच तो यह है
कि जीवन के सत्य की खोज अकेला एकमात्र क्षेत्र है, जहां कोई काम्पिटीशन, कोई प्रतियोगिता नहीं है। आप चले जाइए अकेले और बिल्कुल नंबर एक आ जाइए, तो कोई रोकने वाला नहीं है। कोई दूसरा होता ही नहीं!
निराशा। जीवन जैसा है उसे देख लें, तो निराशा पकड़ेगी। क्या है हमारा प्रेम? क्या है हमारी मित्रता? प्रेम को बहुत तलाश करेंगे, तो दो-चार आंसुओं के सिवाय भीतर कुछ मिलता नहीं। और जब आंसू खुद के अनुभव में आते हैं, तो जैसा सागर का पानी तिक्त और कडुवा है, वैसे ही होते हैं। मित्रता! क्या है मित्रता? जिसे हम जानते हैं, वह क्या है मित्रता?
रवींद्रनाथ ने एक कविता लिखी है। लिखा हैः एक बौद्ध भिक्षु एक गांव
से निकल रहा है, संन्यासी। एक वेश्या उस पर मोहित हो गई और उसने नीचे उतर कर उस भिक्षु को कहा कि आओ! यह पहला मौका है कि मैं किसी को निमंत्रण देती हूं। अब तक लोगों ने मुझे निमंत्रण दिया है और मेरे द्वार पर दस्तक दी है। सभी के लिए द्वार नहीं खुलते हैं।
सम्राज्ञी थी एक अर्थों में वह। सारा नगर उसके लिए दीवाना था, नगरवधू थी, सुंदरतम थी। सभी सम्राट भी उससे मिल पाएं, यह आवश्यक नहीं था।
भिक्षु खड़ा हो गया, उसने कहा कि जब जरूरत होगी तो मैं आऊंगा, जब जरूरत होगी तो मैं आ जाऊंगा।
पर उस स्त्री ने कहा कि जरूरत? मैं तुम्हें प्रेम का निमंत्रण दे रही हूं!
उस भिक्षु ने कहा, निमंत्रण मैंने सुन लिया और स्वीकार कर लिया। लेकिन अभी उनको आने दो जो तुम्हारे मित्र हैं, तुम्हारे प्रेमी हैं। कल ऐसा क्षण भी आ जाएगा, न मित्र मिलेगा, न प्रेमी। तब मेरी जरूरत हो तो मैं आ जाऊंगा। मैं तब तक प्रतीक्षा कर सकता हूं।
बात आई-गई हो गई। वेश्या दुखी और पीड़ित है। फिर वर्ष बीत गए। फिर जो होना था, जो होता है, वह हुआ। वह वेश्या कोढ़ग्रस्त हो गई। गांव ने उसे निकाल कर बाहर फेंक दिया। उसके शरीर गल-गल कर अंग उसके गिरने लगे। कोई उसके पास न आता, दूर तक उसकी बदबू पहुंचती। उस रास्ते से लोग न निकलते कि वह किसी को पुकार न दे दे! क्योंकि ये वे ही लोग थे, जिन्होंने कभी उसके द्वार पर दस्तक भी दी थी। आधी रात, अमावस की रात है, वह तड़प रही है। उसे प्यास लगी है, कोई पानी देने वाला भी नहीं है। और तभी कोई हाथ उसके माथे पर पहुंच गया। कोई पानी उसके मुंह में डालने लगा। उसने पूछा आंख खोल कर, पानी पीकर, कि तुम कौन हो?
तो उसने कहा, मैं वही भिक्षु हूं जो कई वर्ष पहले तुम्हारे द्वार से गुजरा था। एक मैत्री तुमने जानी थी, एक मैत्री मैं भी जानता हूं।
पर उस वेश्या ने कहा, अब व्यर्थ ही आए, अब तो मेरे पास देने को कुछ भी नहीं है!
उस भिक्षु ने कहा, जो मैत्री लेने को आती है, वह मैत्री नहीं है। मैं लेने को कुछ नहीं आया।
लेकिन हमने कोई ऐसी मैत्री जानी है जो लेने को न आई हो? असल में, हमने
दो तरह की शत्रुताएं जानी हैं--अपनों की और परायों की। अपनों की शत्रुता को हम मैत्री कहते हैं, परायों की शत्रुता को हम शत्रुता कहते हैं। दोनों ही हमसे लेने को आतुर हैं। अपनों के ढंग जरा प्रीतिकर हैं, परायों के ढंग जरा क्रोध से भरे हैं। ये दोनों ही लेने को तत्पर हैं।

मैत्री हमने जानी नहीं, प्रेम हमने जाना नहीं, जीवन हमने जाना नहीं, शांति और आनंद की हमें कोई खबर नहीं है। यद्यपि खोज उसी की है। और वह खोज कभी पूरी न होगी, जब तक जो व्यर्थ है वह व्यर्थ न दिखाई पड़ जाए। तब तक सार्थक की खोज नहीं होती है। जो गलत है, गलत न दिखाई पड़ जाए, तब तक जो ठीक है उसकी खोज शुरू नहीं होती। दि फाल्स मस्ट बी नोन एज फाल्स। एक दफा बिल्कुल साफ हो जाना चाहिए कि यह गलत है।
लेकिन कितने दिनों में साफ होगा? कितने जन्मों में साफ होगा? पचास साल, साठ साल, गलत को गलत नहीं बता पाते! एक जिंदगी को गिनें तो। जो जानते हैं वे तो अनेक जिंदगी को गिनेंगे और कहेंगे कि अनेक जिंदगियां भी नहीं बता पातीं कि गलत क्या है। जैसे कि हमने तय ही कर रखा है कि हम गलत को गलत नहीं देखेंगे। हम उसको ठीक देखते ही चले जाएंगे। हमने कसम ही खा रखी है। यह कसम तोड़नी जरूरी है। यह कसम जिस दिन से टूटनी शुरू हो जाए, मैं कहूंगा, उस दिन से आपका जन्म शुरू हुआ। जिस दिन से यह जिंदगी व्यर्थ दिखाई पड़नी शुरू हो जाए, उस दिन मैं कहूंगा आपकी असली जिंदगी शुरू हुई, आपका असली जन्म शुरू हुआ। और उस तरह के आदमी को ही द्विज, दि ट्वाइस बॉर्न! जनेऊ डालने वाले को नहीं। क्योंकि जनेऊ तो किसी को भी डाला जा सकता है। द्विज हम कहते रहे हैं उस आदमी को जो इस दूसरी जिंदगी में प्रवेश कर जाता है। एक जन्म है जो मां-बाप से मिलता है, वह शरीर का ही हो सकता है। एक और जन्म है जो स्वयं की खोज से मिलता है, वही जीवन की शुरुआत है।
तो इस जन्मदिन पर--मेरे तो नहीं कह सकता, क्योंकि मैं तो जीसस, बुद्ध
और लाओत्से से राजी हूं--लेकिन इस जन्मदिन पर, जो कि अ, ब, स, द, किसी का भी हो सकता है, आपसे इतना ही कहना चाहता हूं कि एक और जन्म भी है। उसे खोजें। एक और जीवन भी है--यहीं पास, जरा मुड़ें और शायद मिल जाए, बस किनारे पर, कोने पर ही। और जब तक वह जीवन न मिल जाए, तब तक जन्मदिन मत मनाएं। तब तक सोचें मत जन्म की बात। क्योंकि जिसको आप जन्म कह रहे हैं, वह सिर्फ मृत्यु का छिपा हुआ चेहरा है। हां, जिस दिन जिसको मैं जन्म कह रहा हूं, उसकी आपको झलक मिल जाए, उस दिन मनाएं। उस दिन फिर प्रतिपल जन्म है, क्योंकि उसके बाद फिर जीवन ही जीवन है--शाश्वत, अनंत, फिर उसका कोई अंत नहीं है। ऐसे जन्म की यात्रा पर आप निकलें, ऐसी परमात्मा से प्रार्थना करता हूं।
मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

माटी कहै कुम्हार सूं
छठवां प्रवचन

परंपरा के पत्थर

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक सुबह, अभी सूरज निकला ही था, एक बड़ी राजधानी में उस देश के सम्राट का, नगर के बाहर से आगमन हो रहा था। वह अपने घोड़े पर सवार था। रास्ते में उसने देखा--एक गरीब बूढ़ा मजदूर पत्थर की एक बड़ी चट्टान अपने कंधे पर उठाए हुए जा रहा है। सुबह की ठंडी हवाओं में भी उसके माथे से पसीने की बूंदें टपक रही हैं। वह इतना बूढ़ा और कमजोर है कि उसके हाथ कंप रहे हैं, उसके पैर कंप रहे हैं। पत्थर बहुत वजनी है। उस सम्राट ने चिल्ला कर कहा, मजदूर, पत्थर को नीचे गिरा दो!
वह पत्थर नीचे गिरा दिया गया। उस सम्राट का नाम महमूद था और वह राजधानी गजनी थी। फिर सम्राट अपने महल में चला गया। वह पत्थर वहीं पड़ा रहा। रास्ते पर चलने वालों को बहुत कठिनाई हो गई। वाहन निकलने मुश्किल हो गए। वह बीच रास्ते पर बड़ा पत्थर पड़ा रहा। एक दिन, दो दिन, माह बीता, वर्ष बीता, बहुत लोगों ने पूछा कि यह पत्थर यहां से हटाया क्यों नहीं जा रहा है? लेकिन कहा गया कि सम्राट ने जिसे रखवाया है, उसे हम हटाने के हकदार नहीं हैं। दस वर्ष बीत गए, वह पत्थर वहीं था। उस पत्थर को आदर भी मिलने लगा, क्योंकि सम्राट ने जिसे रखवाया हो उसके पीछे जरूर कोई बड़ा प्रयोजन होना चाहिए।
फिर महमूद मर गया। महमूद के बाद जो लोग उसके उत्तराधिकारी हुए, उन्होंने भी महमूद की इज्जत के लिए उस पत्थर को राजधानी के राजमार्ग से हटाना ठीक न समझा। वह पत्थर फिर भी वहीं रखा रहा।
महमूद के उत्तराधिकारी भी मर गए। फिर भी वह पत्थर वहीं रखा रहा। और पता नहीं, हो सकता है गजनी आप जाएं तो वह पत्थर आज भी आपको वहीं रखा हुए मिले। फिर उस पत्थर को आदर देने की परंपरा हो गई। फिर वह पत्थर सम्राट की आज्ञा से रखा गया, तो उसे हटाना असंभव हो गया। रास्ते पर चलने वालों को कितनी तकलीफ हो, इससे कोई संबंध न रहा। पत्थर ने एक आदृत स्थान पा लिया। वह एक परंपरा, एक प्रचलित धारणा, एक अतीत के गौरव की बात हो गई। वह पत्थर अब भी वहां है।
वह अकेला पत्थर होता तो कोई बात न थी; दुनिया के, जीवन के हर रास्ते पर ऐसे बहुत से पत्थर हैं, जो अतीत ने रख दिए हैं और जो परंपराएं बन गए हैं। उन पत्थरों के कारण जीवन के रास्ते पर चलना भी कठिन हो गया है। लेकिन हममें से कोई भी उन पत्थरों को हटाने का सामर्थ्य नहीं जुटा पाता है। और जब भी किसी पत्थर को हटाने की कोई बात कही जाए, तो वह बात विद्रोह समझी जाती है, वह बात क्रांति समझी जाती है।
मनुष्य के जीवन में अतीत की ओर उन्मुख होने की जो धारणा रही है, उसने
ही मनुष्य के जीवन की राह पर सब भांति के पत्थर रख दिए हैं और चलना कठिन हो गया है। और जब कोई नहीं चल पाता है, तो आश्चर्यों का आश्चर्य तो यह है कि हम उसे यह समझाते हैंः वह इसीलिए नहीं चल पा रहा है, क्योंकि वह रास्तों पर रखे हुए पत्थरों का ठीक से सम्मान नहीं कर रहा है। हम कहते हैंः अगर ठीक से जीना है तो इन पत्थरों का और सम्मान करो और आदर करो।
और सच्चाई यह है कि उन पत्थरों के कारण ही हम नहीं चल पाते हैं। मनुष्य के पैर तो भविष्य की ओर चलते हैं और मनुष्य का मन अतीत की ओर अटका रह जाता है। मनुष्य की आंखें तो आगे की ओर देखती हैं, लेकिन मनुष्य ने जिस तरह की जीवन धारणाएं बनाई हैं, जो जीवन के दर्शन बनाए हैं, जो फिलासफीज ऑफ लाइफ हैं, वे सब पीछे की तरफ देखने वाली हैं। रोज आदमी गड्ढों में गिरता है, रोज उसके पैर भटक जाते हैं, रोज जहां पहुंचना चाहता है वहां नहीं पहुंच पाता, कहीं और पहुंच जाता है। लेकिन एक बात पिछले पांच हजार वर्षों से बदलने की हमने जरूरत नहीं समझी कि हम पीछे की जगह देखने की बजाय आगे की तरफ देखना शुरू कर दें और अतीत ने जो पत्थर छोड़ दिए हैं उन्हें रास्तों से हटा दें।

मनुष्य का जीवन एक कुंठा बन गया है इसीलिए। अतीत का अति मोह मनुष्य को जीवन के संपर्क में ही नहीं आने देता--न जीवन के आनंद के संपर्क में, न सौंदर्य के, न सत्य के, न प्रेम के।
इसलिए आज की इस भूमिका की चर्चा में कुछ उन बातों के संबंध में मैं कहना चाहूंगा, जो यदि हम हटा दें, तो उन्हें हटाने से हम कुछ भी नहीं खो देंगे, लेकिन उन्हें हटाते ही जीवन की धारा गतिमान हो उठेगी और जीवन भविष्य की ओर बहने लगेगा।
उन हटाए जाने वाले पत्थरों में पहली बात है, परंपरा का अति मोह, पीछे
की तरफ देखने की हमारी पागल आदत। यह वैसे ही है जैसे हम एक कार बनाएं, इंजन तो आगे की तरफ चलता हो और हेडलाइट पीछे की तरफ लगे हों। कार का प्रकाश पीछे की तरफ पड़ता हो और कार आगे की तरफ चलती हो। क्या होगा भाग्य उस गाड़ी का? वही भाग्य पूरी मनुष्य-जाति का हो गया है।
हमारी आंखें पीछे की तरफ लगी हैं और जीवन कभी पीछे की तरफ नहीं जाता है। जीवन निरंतर आगे की ओर उन्मुख है। जीवन रोज आगे की तरफ जाता है। जीवन का रास्ता रोज नया है और हमारी आंखें हमेशा पुरानी हैं और पीछे की तरफ देखने वाली हैं।
आंखें भी आगे की ओर देखने वाली चाहिए। और ये आंखें तभी हो सकती हैं आगे की ओर देखने वाली, भविष्य की ओर देखने वाली, जब हम पीछे के पत्थरों का अर्थ समझ लें, उनकी व्यर्थता समझ लें, उन्हें रास्ते से हटाने का साहस जुटा लें।
लेकिन परंपरा मनुष्य को ऐसे जकड़े हुए है जैसे मृत्यु। परंपरा मनुष्य
की गर्दन पर इस भांति हाथ कसे हुए है कि उसकी जीवन-चेतना को मुक्त ही नहीं होने देती है।
और परंपराएं कैसे खड़ी हो जाती हैं?
एक गांव में दो समानांतर रास्ते थे। उन दोनों रास्तों पर हजारों लोग रहते थे। एक दिन दोपहर को, एक रास्ते से दूसरे रास्ते की तरफ आता हुआ एक सूफी फकीर देखा गया, उसकी आंखों से आंसू झर रहे थे। उस रास्ते से निकलने वाले एक-दो लोगों ने पूछा कि मित्र, क्यों रो रहे हो? लेकिन उसकी आंखें इतने आंसुओं से भरी थीं कि वह कुछ भी उत्तर नहीं दे सका और अपने रास्ते चला गया।
लेकिन थोड़ी देर में उस पूरे रास्ते पर खबर फैल गई कि जरूर दूसरे रास्ते पर कोई दुर्घटना हो गई है। एक सूफी फकीर आंसू भरी हुई आंखों से निकलते हुए देखा गया। सांझ होते-होते उस रास्ते पर यह खबर फैल गई कि दूसरे रास्ते पर जरूर कोई मर गया है। रात होते-होते यह खबर फैल गई कि दूसरे रास्ते पर कोई महामारी फैली हुई है, लोग एकदम मर रहे हैं। एक सूफी फकीर रोता हुआ देखा गया। लेकिन किसी ने भी उस रास्ते पर जाकर पूछना उचित नहीं समझा। क्योंकि बीमारी खतरनाक हो सकती थी, उस रास्ते पर जाकर पूछना भयानक था। खुद भी बीमारी में फंसने का डर था। रात उस मोहल्ले के लोग इकट्ठे हुए और उन्होंने कहा, सुबह होने के पहले हम गांव छोड़ दें और गांव के बाहर चले जाएं, बीमारी बहुत भयानक मालूम होती है।
और जब उन लोगों ने गांव छोड़ने की तैयारी शुरू की और रात ही गांव चुपचाप छोड़ना शुरू कर दिया, तो दूसरे रास्ते पर भी खबरें फैलनी शुरू हो गईं कि कोई महामारी दूसरे रास्ते पर फैली हुई है। उस रास्ते के लोगों ने भी सुबह होने के पहले गांव खाली कर दिया।
फिर थोड़े दूर, नदी के पार, वे दोनों मोहल्लों के लोग बस गए। और मैंने सुना है, अब भी वहां दो गांव बसे हुए हैं छोटे-छोटे और बड़ा गांव उजाड़ पड़ा हुआ है। और उन गांव के लोगों से जब कोई पूछता है कि क्या बात हो गई, यह गांव बर्बाद क्यों हो गया? तो वे कहते हैं, कभी अज्ञात काल में, कोई एक अज्ञात बीमारी फैली थी और उसके कारण उस गांव को छोड़ देना पड़ा था।
और कुल सच्चाई इतनी थी कि वह जो फकीर आंखों में आंसू लिए हुए देखा गया
था, वह प्याज छीलता रहा था। न कोई बीमारी थी, न कोई मरा था। उसकी आंखों से आंसू प्याज के कारण निकल रहे थे।

यह अगर किसी एक गांव की बात होती तो कोई हर्ज न था। लेकिन पूरी मनुष्य-जाति इसी तरह के न मालूम कितने चक्करों में पड़ गई है। और इन चक्करों को तोड़ने का कोई विराट प्रयोजन, कोई विराट आयोजन, कोई विराट आंदोलन भी मनुष्य के चित्त में नहीं चल रहा है।
पहली बात तो मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि अगर जीवन के सत्य को देखने
के लिए, अगर जीवन के सौंदर्य को अनुभव करने के लिए, और अगर जीवन की प्रेम की धारा को परिपूर्ण रूप से प्रकट करने के लिए आपके मन में कहीं भी कोई उत्सुकता है, तो स्मरण रखिए, अतीत से मुक्त होना अत्यंत अनिवार्य है। बीते हुए से मुक्त होना अत्यंत अनिवार्य है। जो मृत है और जो समाप्त हो गया, उससे मुक्त होना अनिवार्य है।
उससे हम मुक्त नहीं हैं, उससे हम बहुत गहरे बंधे हुए हैं। और हमने उस
सब की ऐसी-ऐसी व्याख्याएं कर रखी हैं--जैसे फकीर के आंसुओं की व्याख्या कर ली, वैसे ही हमने न मालूम क्या-क्या व्याख्याएं कर रखी हैं। और उन व्याख्याओं को लेकर हम बैठ गए हैं और रुक गए हैं। उन व्याख्याओं के कारण, परंपराओं के कारण, धारणाओं के कारण, विश्वासों के कारण हमारा चित्त तो बहुत भर गया है व्यर्थ की चीजों से और उसमें उतनी जगह भी नहीं रह गई है जहां कि सार्थक का आगमन हो तो स्थान रिक्त मिल सके, जहां कि कभी जीवन के द्वार पर परमात्मा खटखटाए तो हम उसे भीतर बुला सकें और मेहमान बना सकें। भीतर हमारे चित्त के घर में कोई जगह खाली नहीं है। और हमने जिन चीजों से भर लिया है, वे इस योग्य नहीं हैं कि उनसे कोई अपने मन को बोझिल करे।
किन चीजों से हम अपने मन को भरे हुए बैठे हैं?
और इस भरे हुए मन से अगर हम सोचते हों कि हम कभी शांति को, आनंद को पा लें, तो यह असंभावना है। शांति और आनंद पाने की जो भूमिका, मन की जो पात्रता, मन की जो रिसेप्टिविटी चाहिए, मन की जो ग्राहकता चाहिए, मन का जो मौन, रिक्तता चाहिए, वह हमारे पास नहीं है। उस रिक्तता के लिए पहली तो बात यह है, चाहे सम्राटों ने गिराए हों पत्थर, चाहे तीर्थंकरों ने, चाहे अवतारों ने, चाहे ईश्वर-पुत्रों ने, जीवन के रास्ते पर किसी भी पत्थर को स्वीकार न करें। तो ही जीवन आगे गतिमान हो सकता है।
क्यों लेकिन हम स्वीकार किए हुए हैं इन पत्थरों को? आंखें देखती हैं
कि पत्थर हैं, पैर रुकते हैं, लेकिन फिर भी हम क्यों स्वीकार किए हुए हैं? अतीत का एक अदभुत विक्षिप्त मोह हमारे मन को पकड़े हुए हैं। क्यों?
जो बीत गया है वह ज्ञात मालूम होता है, वह नोन मालूम होता है; जो आने वाला है वह अज्ञात मालूम होता है, वह अननोन मालूम होता है। जो परिचित है उसे हम पकड़े रहना चाहते हैं, क्योंकि अपरिचित से भय लगता है। जो परिचित है, जिसे हम जानते हैं, उसे हम रोके रखना चाहते हैं। क्योंकि पता नहीं, उसे छोड़ कर जहां हमें जाना पड़े वे रास्ते अपरिचित हों, अनजाने हों। अनजान का भय, अपरिचित का भय ही हमें अतीत को पकड़े रखने का कारण है।
और जो आदमी अपरिचित से भयभीत है, वह समझ ले कि वह असल में जीवन से ही भयभीत है। क्योंकि जीवन तो अपरिचित है। सारा जीवन ही अपरिचित है, अजनबी है। जो आदमी अपरिचित से भयभीत है वह आदमी जीने से इनकार कर रहा है। वह आदमी कह रहा है कि मैं जीने से डरता हूं। वह आदमी कह रहा है कि मैं अपने घर में बंद रह जाऊंगा और मैं जीना नहीं चाहता हूं।
गंगा निकलती है गंगोत्री से। अपरिचित से भयभीत नहीं है। इसलिए पहाड़ों
को पार करती है, मैदानों को पार करती है, दूर अज्ञात सागर की तरफ भागी चली जाती है। अगर परिचित को पकड़ रखना चाहे, तो गंगा कभी सागर तक नहीं पहुंच सकती, गंगोत्री में ही रुक जाएगी। गंगोत्री परिचित है।
अगर एक बच्चा परिचित से रुकना चाहे, तो मां के पेट में ही रुक जाएगा; फिर अपरिचित जीवन और जगत में उसका प्रवेश नहीं हो सकता।
लेकिन गंगा गंगोत्री छोड़ देती है, बच्चा मां के पेट को छोड़ देता है-- अज्ञात, अनजान की खोज में। लेकिन हमारा चित्त अतीत को पकड़े रहता है। अतीत को पकड़ना वैसे ही है जैसे बच्चा गर्भ को पकड़ ले और वहीं रुक जाए। गर्भ बहुत सुखद है, परिचित है, भलीभांति जाना-माना है। गर्भ के बाहर निकलना अनजान

रास्ते पर जाना है--जिसका कोई पता नहीं, जिससे कोई संबंध नहीं, जिसे कभी जाना नहीं, पता नहीं वह सुखद होगा या दुखद होगा। एक जोखिम है।
निश्चित ही, पूरा जीवन ही एक जोखिम है, एक रिस्क है। और जो व्यक्ति जोखिम उठाने को तैयार नहीं होता वह आदमी सुसाइडल है, वह आदमी आत्मघाती है। वह असल में यह कह रहा है कि मैं अभागा हूं कि मुझे जन्म मिला। वह यह कह रहा है कि मैं अभागा हूं कि मुझे जीवन मिला। वह यह कह रहा है कि धन्य हैं वे लोग जो कभी नहीं जनमे, या वे लोग नंबर दो धन्य हैं जो जनमे और मर गए, और नंबर तीन वे लोग धन्य हैं जो जनमे और अपने घर के द्वार बंद करके वहीं बैठे रह गए, जो जीवन के इतने बड़े विस्तार में कभी प्रविष्ट नहीं हुए।
जीवन में प्रवेश के लिए तो जोखिम उठाने का साहस चाहिए। अतीत को जो पकड़ता है वह साहसी नहीं है।
हम देखेंः बीज फूटता है, अज्ञात की यात्रा को उसका अंकुर उठता है। आकाश से उसका कोई परिचय नहीं, हवाओं से उसका कोई परिचय नहीं, सूरज की रोशनी से उसकी कोई मुलाकात नहीं, न मालूम क्या होगा उसका जीवन, न मालूम कैसा होगा। क्या परिणाम होंगे, क्या भाग्य होगा, क्या नियति होगी, क्या डेस्टिनी होगी--उसे कुछ पता नहीं। लेकिन एक छोटा सा बीज टूटता है और आत्मविश्वास से भरा हुआ जमीन को पार करता है और खुले आकाश में, इतने बड़े आकाश में इतना छोटा सा अंकुर भी साहस के साथ खड़ा हो जाता है।
लेकिन आदमी इतना भी साहस नहीं जुटाता है। आदमी अपने बीज के भीतर ही बंद रह जाता है। उसका बीज अंकुर ही नहीं बनता। अतीत को पकड़ना बीज की खोल को पकड़ लेना है। अतीत से मुक्त होना चाहिए, ताकि बीज टूट सके और भविष्य की दिशा में प्राणों के अंकुर विकसित हो सकें।
निश्चित ही अनजान है रास्ता। और कोई नहीं कह सकता कि क्या होगी नियति, क्या होगी डेस्टिनी, क्या होगा परिणाम, क्या होगा फल। लेकिन यह सौभाग्य है कि यह नहीं कहा जा सकता कि क्या होगा। अगर यह कहा जा सकता कि क्या होगा, तो आप आदमी नहीं होते, एक मशीन होते। मशीन के बाबत सब कुछ कहा जा सकता है। मशीन के बाबत कहा जा सकता है कि वह कैसे चलेगी, क्या उत्पादन करेगी, क्या परिणाम होगा, कितने दिन चलेगी, कितने दिन जीएगी। मनुष्य के संबंध में कोई भी भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है। चेतना के संबंध में कोई भी भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है। यही चेतना का स्वातंष्य है, यही चेतना की स्वतंत्रता है। यही जीवन की गरिमा और गौरव है कि जीवन एक जड़ यंत्र नहीं, एक चैतन्य प्रक्रिया है।
रेल की पटरियों पर दौड़ती हुई रेलगाड़ियां हम देखते हैं। वे पटरियों पर दौड़ती हैं, यहां-वहां नहीं उतर जाती हैं। नदियां पटरियों पर नहीं दौड़ती हैं, अज्ञात-अनजान रास्तों की खोज करती हैं। नदियों का एक अपना जीवन है। रेल की गाड़ियों का एक अपना जीवन है। अतीत की पटरियों पर जिसका चित्त निरंतर दौड़ता रहता है वह रेल की एक गाड़ी हो जाता है--बंधी हुई यात्रा लीक पर। अतीत को तोड़ कर जो यात्रा करता है वह एक सरिता बन जाता है--अनजान, अज्ञात, रोज नये का साक्षात।
और स्मरण रहे, प्रभु के साक्षात को केवल वे ही उपलब्ध हो सकते हैं जो रोज नये के साक्षात की तैयारी करते हैं। क्योंकि प्रभु कभी भी पुराना नहीं पड़ता है। परमात्मा कभी भी पुराना नहीं है, वह तो नित नूतन है। इसलिए जो अतीत के पागल मोह में पड़े हैं, प्रभु के मंदिर के द्वार उनके लिए कभी न खुलते हों तो कोई आश्चर्य नहीं है। सौंदर्य रोज नया है, सत्य रोज नया है, जीवन रोज नया है, प्रतिपल नया है सब कुछ, सिर्फ आदमी का मन पुराना पड़ जाता है। और आदमी का यह पुराना मन अतीत को पकड़ने के कारण पुराना पड़ता है। अन्यथा आदमी के मन के भी पुराने होने की कोई जरूरत नहीं। वह भी निरंतर युवा बना रह सकता है। वह भी यंग, वह भी सतत जीवंत और युवा बना रह सकता है। इसलिए पहली बातः अतीत का यह पागल मोह, ये अतीत के द्वारा गिराए गए पत्थर हम अपने रास्तों से कब अलग करेंगे?
और अगर आप पूछते हों कि कैसे इन्हें अलग करें? तो आप गलत ही प्रश्न पूछते हैं। क्योंकि अगर आप इन्हें रोके न रखें, तो इनके टिकने की कोई जगह नहीं रह जाएगी। हम इन्हें रोके हुए हैं इसलिए ये टिके हुए हैं। इन्हें अलग

करने को केवल इनका मोह छोड़ देना पर्याप्त है, ये गिर जाएंगे। ये हमारे सहारे से खड़े हुए हैं। हम इन्हें सहारा दिए हुए हैं, वही इनका जीवन और बल है। और हम इन्हें सहारा दिए हैं, उसके कारण अगर हमें दिखाई पड़ जाएं--अगर हमें दिखाई पड़ जाए कि यह केवल अपरिचित का भय है, स्ट्रेंज का, अनजान का भय है, अजनबी का भय है, जो हमें रोके हुए है पीछे की तरफ--तो कठिनाई नहीं होगी। अनजान को करें प्रेम, अपरिचित को करें प्रेम, जोखिम, खतरा उठाने के लिए साहस जुटाएं, जीवन का अर्थ ही यही है। जीवन का अर्थ ही खतरा उठाना है। नीत्शे से मरते दिन किसी ने पूछा था कि तुम सारे जीवन को एक सूत्र में
रख सकते हो क्या? तो नीत्शे ने कहा, सारे जीवन के अनुभव के बाद मैं एक बात जान पाया हूं, और वह तुमसे कहता हूं। अगर तुम्हें जीवन को जानना है, तो उसने कहा, लिव डेंजरसली! खतरे में जीओ, जोखिम में जीओ!
हम सारे लोग तो सुरक्षा में जीते हैं, सिक्योरिटी में। हम तो सब तरह
की सुरक्षा कर लेते हैं, फिर जीते हैं। हमारे तो जीवन के सूत्र ही यही हैं कि सब तरह सुरक्षित हो जाओ, फिर जीएंगे। जब सारी सुरक्षा पूरी हो जाएगी तब हम जीएंगे। और हमें पता नहीं, सुरक्षा कभी पूरी नहीं हो पाती, हम पूरे हो जाते हैं। कोई आदमी कभी पूरी तरह सुरक्षित नहीं हो सकता बिना मरे हुए। सिर्फ मुर्दा सुरक्षित होते हैं। जीवित आदमी को खतरे शेष रहते ही हैं। सबसे बड़ा खतरा तो यही शेष रहता है कि जीवित आदमी मर सकता है। मुर्दा मर नहीं सकता, उसके सारे खतरे समाप्त हो गए। जो होना था वह हो चुका, आगे अब कुछ भी नहीं हो सकता।
सुरक्षा का मोह है हमारे भीतर, इसलिए हम परंपरा को इतना आदर देते हैं।
यह परंपरा को आदर, कोई बुजुर्गों के लिए दिया गया आदर नहीं है। यह परंपरा को आदर, किन्हीं महापुरुषों के लिए किया गया सम्मान नहीं है। यह परंपरा का आदर हमारी सुरक्षा की ओट, सुरक्षा को छिपाने का ढंग है, सुरक्षित हो जाने की कोशिश है। ज्ञान सुरक्षा देता है और अज्ञान असुरक्षा देता है। अज्ञान बहुत इनसिक्योर है। भविष्य कोई हमें पता नहीं क्या होगा। एक क्षण के बाद का हमें पता नहीं कि क्या होगा। पीछे जो बीत गया, वह हमें पता है--क्या था? कैसा था? हम भलीभांति उससे परिचित हैं। इसलिए हम उसी की तरफ आंखें लगाए रखते हैं। वही छोटा सा कोना बना लेते हैं जीवन का, उसी में जीने की कोशिश करते हैं। वह परिचित है, वह ज्ञात है।
सुरक्षा का मोह हमारी परंपरा का बल है। परंपरा के पत्थर हमारे सुरक्षा के मोह पर टिके हुए हैं। और हम यह देख भी नहीं पाते कि जो कौम जितनी सुरक्षा के लिए आतुर हो जाती है उतनी ही मृत हो जाती है। उसमें जीवन का सारा उल्लास समाप्त हो जाता है; जीवन का रस समाप्त हो जाता है; नये रास्तों पर अंधेरे में जाने की हिम्मत समाप्त हो जाती है। बंधी हुई लीक, परिचित लीक पर ही उसका चित्त घूमने लगता है; जैसे कोल्हू का बैल चलता हो, ऐसे ही फिर वह जाति चलने लगती है।
हमारी जाति के दुर्भाग्य से हम सैकड़ों वर्षों से इसी भांति चल रहे हैं। लेकिन इस चलने से हमारा मन शायद अभी भी ऊबा नहीं। जब भी जीवन में हमारे कोई समस्या खड़ी होती है, और रोज समस्या खड़ी होती है, तब हम फिर पीछे लौट कर व्याख्या करने लगते हैं। हम फिर पीछे पूछने लगते हैं--कृष्ण क्या कहते हैं? राम क्या कहते हैं? महावीर क्या कहते हैं?
यह क्यों दोष महावीर और कृष्ण पर आप थोपना चाहते हैं? कोई दुनिया में सारे उत्तर नहीं दे गया है। कोई सारे उत्तर दे भी नहीं जा सकता। कोई इतना कठोर नहीं हो सकता कि आपके लिए सारे उत्तर दे जाए और आपके लिए कोई प्रश्न, और कोई खोज, और कोई समस्या न रह जाए। क्योंकि जिस दिन सारे उत्तर दे दिए जाएंगे, उस दिन आदमी के लिए जीने का फिर कोई कारण नहीं रह जाता, कोई चैलेंज, कोई चुनौती नहीं रह जाती।
महावीर ने उत्तर दिए हैं, बुद्ध ने भी, कृष्ण ने भी, क्राइस्ट ने भी। लेकिन वे कोई उत्तर आपके लिए उत्तर नहीं हैं। वे कोई भी उत्तर आपके अनुगमन करने के लिए नहीं हैं। महावीर जीवन का साक्षात कर रहे हैं और जो उत्तर उन्हें दिखाई पड़ रहा है वे दे रहे हैं। वह महावीर का अपने जीवन-साक्षात से दिया गया उत्तर है। महावीर किसी का उत्तर नहीं दोहरा रहे हैं। न बुद्ध

किसी का उत्तर दोहरा रहे हैं। न कृष्ण किसी का उत्तर दोहरा रहे हैं। जीवन के साक्षात से जो उन्हें दिखाई पड़ रहा है वह कह रहे हैं। और अगर उनके प्रति सम्मान दिखाना है तो उनके उत्तर को मत ढोते फिरना। उनके प्रति एक ही सम्मान हो सकता है कि जिस भांति उन्होंने जीवन का साक्षात किया और अपना उत्तर खोजा, उसी भांति आप भी साक्षात करना और अपना उत्तर खोजना।
लेकिन नहीं, हमारी हालत बड़ी अजीब है।
एक छोटा सा तालाब था। उस तालाब में तीन मछलियां थीं। एक मछली का नाम बुद्धि था। दूसरी मछली का नाम अर्द्धबुद्धि था। तीसरी मछली का नाम अबुद्धि था। तीन ही मछलियां थीं उस छोटे से तालाब में। बड़ी शांति का उनका जीवन था। लेकिन एक दिन एक मछुआ, एक मछली पकड़ने वाला आदमी उस तालाब के पास पहुंच गया। उस तालाब में बड़ी चिंता छा गई, उदासी छा गई।
मनुष्य जहां भी पहुंच जाता है वहां उदासी और चिंता छा जाती है। प्रकृति बड़ी शांत थी, जब तक आदमी नहीं रहा होगा। और प्रकृति शायद फिर शांत हो जाएगी जिस दिन आदमी नहीं रह जाएगा। और आदमी पूरे उपाय कर रहा है कि जल्दी ही वह शांति का दिन आ जाए।
उस तालाब में भी वैसी अशांति छा गई उस मछुए को आया हुआ देख कर। बुद्धि नाम की मछली ने सोचा कि क्या करना चाहिए? छोटा सा तालाब था, मछुए के पास जाल बड़ा था। बचना बहुत कठिन था। उस मछली ने एक उपाय किया। वह बुद्धि नाम की मछली छलांग लगा कर मछुए के पैरों के पास जा गिरी। मछुआ बहुत हैरान हुआ कि मछली और खुद अपने आप मछुए के पास आ गई! उसने मछली को उठा कर देखा। लेकिन वह मछली श्वास बंद किए हुए थी। मछुए ने समझा कि वह मरी हुई है। उसने वापस उसे तालाब में फेंक दिया। वह मछली मुर्दे की भांति डूब गई और नीचे तलहटी में बैठ गई।
अर्द्धबुद्धि नाम की जो मछली थी, वह हमेशा इस बुद्धि नाम की मछली का अनुकरण करती थी। वह उसकी फालोअर थी, वह उसकी अनुयायी थी। उसने सोचा कि यह तो बड़ी अच्छी तरकीब है। आदमी को भी धोखा दिया जा चुका। उसने भी छलांग लगाई और वह भी जाकर मछुए के पैर के पास गिर पड़ी। मछुआ तो चकित रह गया कि आज क्या हो गया है मछलियों को? खुद छलांग लगा कर मछुए के पास आ रही हैं! उसने इस मछली को उठाया, लेकिन उसकी श्वास चल रही थी। उसे पता भी नहीं था कि पहली मछली ने श्वास नहीं ली थी।
अनुयायियों को कभी पता नहीं रहता कि महावीर ने क्या किया, बुद्ध ने क्या किया, क्राइस्ट ने क्या किया। उनके भीतर क्या हुआ इसका किसी को कोई पता नहीं है। यह हो भी नहीं सकता। मछली ने छलांग लगाई यह तो दिखाई पड़ गया, लेकिन मछली ने भीतर क्या किया? जीवन के साथ क्या किया?
मछुए ने कहा, अरे यह तो जिंदा है! उसने उसे अपने झोले में डाल लिया। लेकिन वह मछुआ इतना हैरान हो गया था मछलियों को उछलते देख कर कि झोले का मुंह बंद करना भूल गया। मछली तो बहुत घबड़ाई कि यह तो बड़ा धोखा हो गया। लेकिन झोले का मुंह खुला था, उसने छलांग लगाई, वह पानी में वापस जा गिरी। वह भी जाकर नीचे बैठ गई। बुद्धि नाम की मछली से उसने जाकर पूछा कि मैं तो फंस गई थी। उस बुद्धि नाम की मछली ने कहा, अनुयायी हमेशा फंस जाते हैं। तीसरी मछली थी अबुद्धि। वह अनुयायी की भी अनुयायी थी, फालोअर की भी फालोअर थी। उसने अर्द्धबुद्धि को उचकते देखा था, उसने भी छलांग लगाई और मछुए के पैर में जा गिरी। मछुआ तो हैरान ही हो गया! ऐसा तो कभी सुना भी नहीं था! उसने मछली अब देखी भी नहीं उठा कर कि उसकी श्वास भी चल रही है कि नहीं, झोले के अंदर डाली और झोले का मुंह बंद कर लिया। तो वह तीसरी मछली वापस नहीं लौट सकी।
आदमी के साथ भी करीब-करीब ऐसा हुआ है। कुछ लोग तो वे लोग हैं जो अपनी प्रतिभा, अपनी बुद्धि से जीते हैं और जीवन का साक्षात करते हैं। कुछ लोग वे हैं जो उनका अनुगमन करते हैं। कुछ लोग और हैं जो अनुयायियों का भी अनुगमन करते हैं। इन तीसरे लोगों का तो कोई भी भविष्य नहीं है। दूसरे लोगों का भी जीवन बड़ी कठिनाइयों में, व्यर्थ की कठिनाइयों में पड़ जाता है। केवल पहले तरह के लोग ठीक से जी पाते हैं और जीवन को अनुभव कर पाते हैं।

और उस मछली का नाम था अबुद्धि। गुरु, उसका अनुयायी और उसका अनुयायी, उसका नाम था अबुद्धि। हमारा नाम क्या होगा? हमारे गुरुओं को हुए हजारों साल हो चुके। उनके अनुयायी, उनके अनुयायी, उनके अनुयायी, उनके अनुयायी, ऐसा हजारों पीढ़ियां हो गईं अनुयायियों की। हम उन अनुयायियों के अनुयायी हैं। हमें तो अबुद्धि भी नहीं कहा जा सकता। हम तो वह सीमा भी बहुत पहले पार कर चुके हैं। और अगर इतनी जड़ता दुनिया में पैदा हुई है, तो इसका और कोई कारण नहीं है, जड़ता पैदा होगी; अनुगमन जड़ता लाता है। फालोइंग, किसी के पीछे जाना, अपने जीवन को खोना है। अपने जीवन का साक्षात किसी के पीछे जाने से कभी भी नहीं होता। अपने जीवन का साक्षात तो स्वयं की सारी प्रतिभा, स्वयं की सारी शक्ति, स्वयं की सारी क्षमता और पात्रता को विकसित करने से होता है।
किसी के पीछे जो जाता है, पहली बात, उसने आत्मविश्वास खो दिया। दूसरे
का विश्वास केवल वही करता है जिसे स्वयं पर विश्वास नहीं होता। मैं निरंतर कहता हूंः किसी पर विश्वास मत करो। तो लोग समझते हैं कि शायद मैं विश्वास का विरोधी हूं। जब मैं कहता हूं कि किसी पर विश्वास मत करो, तो मेरा सीधा मतलब है--अपने पर विश्वास करो। जो आदमी दूसरे पर विश्वास करता है, वह आत्म-अविश्वासी है। वह खुद पर विश्वास नहीं करता है। जो आदमी स्वयं पर विश्वास करता है, वह स्वयं की शक्तियों को जरूर विकसित कर लेता है। लेकिन हम सैकड़ों वर्षों से एक आदत में ग्रस्त हो गए हैं, अनुगमन करने
की आदत में। यह अनुगमन करने की आदत हमें किसी के पीछे लगा देती है, फिर हम चलते चले जाते हैं। हम सुरक्षित होते हैं, क्योंकि हमारा आगे वाला ठीक है। आगे वाला सुरक्षित होता है, क्योंकि उसका आगे वाला ठीक है। और आगे वाला सुरक्षित होता है, क्योंकि उसका आगे वाला ठीक है। और किसी को भी पता नहीं कि कोई भी ठीक है या नहीं है।
हम अपने हाथ में नहीं लेते। हम जिंदगी को सौंपते हैं किसी और को कि तुम जीओ हमारे लिए, हम तुम्हारे पीछे चलेंगे। वह आदमी भी जिंदगी किसी और को सौंपे हुए है, वह आदमी भी किसी और को सौंपे हुए है। सारे लोगों की जिंदगी उधार हो गई है।
एक बार बुद्ध एक वृक्ष के नीचे ध्यान कर रहे थे। उन्होंने देखा, सारे जंगल के जानवर भागे जा रहे हैं! क्या हो गया है? भूकंप आ गया है? कोई अराजकता फैल गई है? उन्होंने सिंह को पकड़ा और पूछा कि तू कहां भागा जा रहा है? उसने कहा, छोड़िए, मुझे मत रोकिए, दुनिया का अंत आ गया है! बुद्ध ने हाथियों को पूछा कि कहां भागे जा रहे हो? उन्होंने कहा, रोकिए मत हमें, आप भी भागिए, दुनिया का अंत आ गया है! बुद्ध ने कहा, यह क्या मामला है? किसने कहा दुनिया का अंत आ गया है? जिससे भी पूछा उसने कहा, आगे वालों ने हमें कहा है। बुद्ध भागे आगे पहुंचे, आगे वालों ने कहा, और आगे वालों ने कहा है। सुबह से खोजते-खोजते सांझ हो गई, तब कहीं जाकर खरगोशों की एक भीड़ मिली। और उन्होंने कहा कि वह जो आगे खरगोश जा रहा है उसने कहा है। उस खरगोश से पूछा, उसने कहा, हां, मैंने ही कहा है। मैं एक आम के वृक्ष के नीचे सोया हुआ था। और तभी जोर का धड़ाका हुआ, आवाज हुई। और मैंने सुन रखा है पुरखों से कि जब दुनिया का अंत करीब आता है तो जोर की आवाज होती है। तो मैंने खरगोशों को कह दिया कि दुनिया का अंत आ रहा है। हम भागे, दूसरे लोग भागे, तीसरे लोग भागे, सारा जंगल भाग रहा है, आप भी भागिए।
बुद्ध ने कहा, तू आम के वृक्ष के नीचे सोता था?
उसने कहा, मैं आम के वृक्ष के नीचे सोता था।
कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि आम नीचे गिरा हो?
उस खरगोश ने कहा, हो भी सकता है। हम खरगोश ही ठहरे, आम भी गिर जाए तो हमारे प्राण कंप जाते हैं।
बुद्ध उसको उस आम के नीचे ले गए। वहां कई आम गिरे थे। उस खरगोश ने कहा, मैं यहीं बैठा हुआ था। हवा चली थी और आम गिरे थे। और खरगोश ने समझा कि दुनिया का अंत करीब आ गया है। क्योंकि उसने बुजुर्गों से सुना था, जब दुनिया का अंत आता है तो बड़ी आवाजें होती हैं। और खरगोश के पीछे शेर भी भाग रहा था और हाथी भी भाग रहे थे।

जब खबर मिली, तो जानते हैं उस रात जंगल में कैसी हंसी छूटी--हाथी हंस रहे थे, शेर हंस रहे थे, हिरन हंस रहे थे, भैंसे हंस रहे थे, सब हंस रहे थे कि हम कैसे पागल थे!
जिस दिन मनुष्य-जाति को इस बात का पता चलेगा कि हम अनुगमन करके क्या
कर रहे हैं, उस दिन सारी दुनिया हंसेगी कि हम क्या कर रहे थे! लेकिन अभी तो इस बात को सुनते ही मन उदास हो जाता है कि हम अनुकरण न करें। क्योंकि तब हमारे सामने सवाल होता हैः फिर हम क्या करें? हमारा सारा जीवन उधार है। हमने तो कुछ किया नहीं। कोई कुछ करता है, हम उसके पीछे चलते हैं। इसलिए जैसे ही कहा जाता है अनुकरण मत करें, तब सवाल उठता है कि हम क्या करें फिर? जरूर बहुत कुछ किया जा सकता है। और केवल वही आदमी कुछ कर सकता है जो अनुकरण नहीं करता है। क्योंकि जो अनुकरण करता है उसने तो करने का सवाल ही समाप्त कर दिया। उसने तो करने की समस्या ही तोड़ दी। उसने तो करने की जो चुनौती थी उससे इनकार कर दिया। वह तो एस्केप कर गया। वह तो भाग गया जीवन से। उसने कहा, मैं नहीं करूंगा, करने वाले कर चुके हैं, मैं तो उनके पीछे चलूंगा। उसने जीवन से बचने का उपाय खोज लिया। वह जीवन की परीक्षा में असफल हो गया।
अनुयायी जीवन की परीक्षा में असफल हुआ आदमी है। और दुनिया के सारे लोग अनुयायी हैं। इसलिए दुनिया रोज बर्बाद, रोज पतित होती चली गई है। दुनिया में ऐसा धर्म चाहिए जो अनुयायियों का धर्म न हो, दुनिया में ऐसा धर्म चाहिए जो प्रत्येक व्यक्ति के अपने साक्षात, अपनी अनुभूति की बात हो। दुनिया में ऐसा धर्म चाहिए जो प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं होने की क्षमता और साहस, पात्रता और ग्राहकता प्रदान करे। जो प्रत्येक व्यक्ति को अपनी निजता में प्रसन्न होने की क्षमता दे।
जो आदमी किसी का अनुगमन कर रहा है--किसी परंपरा का, किसी व्यक्ति का, किसी संप्रदाय का--वह स्वयं की निजता की निंदा कर रहा है। वह अपनी निंदा कर रहा है। वह यह कह रहा हैः मैं तो व्यर्थ हूं। मेरे जीवन का कोई मूल्य नहीं, मेरी कोई सार्थकता नहीं, मेरा कोई अर्थ नहीं, मेरा कोई मीनिंग नहीं, मैं तो हूं व्यर्थ। मैं किसी के पीछे चलता हूं, वही मेरी सार्थकता है।
वह अपनी निजता को, वह अपनी इंडिविजुअलिटी को इनकार कर रहा है। और दुनिया में जितने व्यक्तित्व की कमी होगी दुनिया उतनी दीन-हीन, उतनी अशक्त, उतनी कमजोर, उतनी निस्तेज, उतनी ओज से रिक्त होती चली जाए तो कोई आश्चर्य नहीं है। जीवन का सारा ओज, जीवन की सारी खुशी, जीवन की सारी सुगंध, जीवन का सारा संगीत, प्रत्येक व्यक्ति के आत्म-स्वीकार से पैदा होता है-- स्वयं की स्वीकृति से और इस बात के अनुभव से कि मैं हूं, और मैं कुछ हो सकता हूं। मेरे भीतर कुछ छिपा है और वह प्रकट हो सकता है। मैं भी कोई धन्यता अनुभव कर सकता हूं। मेरे भीतर भी कोई संपदा है जो प्रकट हो सकती है। लेकिन नहीं, यह संपदा प्रकट नहीं होगी। क्यों नहीं होगी?
एक जमाना था कि सिर्फ चीन के एक छोटे से गांव को छोड़ कर सारी दुनिया में कहीं भी चाय उपलब्ध नहीं होती थी। लेकिन उस गांव के चाय पीने वालों की खबरें जरूर सारी दुनिया में धीरे-धीरे पहुंच गईं।
एक देश में खबर पहुंची, उस देश का नाम थाः कंट्री ऑफ दि बिलीवर्स। वह
था विश्वासियों का देश। उन्होंने विश्वास कर लिया कि जरूर कहीं कोई चाय होगी। और उन्होंने आदमी भेजे उसकी खोज में, उनके पुरोहित गए। और बड़ी लंबी यात्रा के बाद वे चीन के सम्राट के पास पहुंचे और उन्होंने अपना निवेदन किया। सम्राट ने उन्हें काफी चाय भेंट की। वे बैलगाड़ियों में भर कर चाय को लेकर अपने देश आए। उन्होंने एक बड़ा मंदिर बनाया और उस मंदिर में चाय को रख कर उसकी पूजा शुरू कर दी। वह पूरा मुल्क चाय की पूजा करने लगा। लेकिन उनमें से किसी ने भी चाय पीकर नहीं देखी।
असल में, जिसकी हम पूजा करते हैं, उसे हम कभी पीते ही नहीं। पूजा उसकी
ही करते हैं जिसे हम पीने से बचना चाहते हैं। पूजा हम उसकी ही करते हैं जिसे हम नहीं जीना चाहते हैं। उसे हम मंदिर में बंद कर देते हैं।
एक बुद्धिमान आदमी ने यह कहा भी कि पागलो, यह क्या कर रहे हो? इस चाय
को उबलते हुए पानी में डालो! तो उन सबने उस बूढ़े आदमी को पकड़ कर अपने देश के

बाहर निकाल दिया। उन्होंने कहा, यह हमारे धर्म का शत्रु है। यह चाय को गर्म पानी में डलवा कर नष्ट करवा देगा और हमारा धर्म भी नष्ट हो जाएगा इसी के साथ। क्योंकि फिर हम पूजा किसकी करेंगे? और जब पूजा नहीं होगी तो धर्म कैसे होगा? और जब धर्म नहीं होगा तो सारा जीवन अनैतिक हो जाएगा, पतित हो जाएगा। उन्होंने उस बूढ़े आदमी को कहा कि बस्ती छोड़ दो! हम अधार्मिक लोगों को अपने बीच नहीं रखना चाहते।
दूसरा देश था, वह कंट्री ऑफ दि लाजिसियंश था। वह तर्कशास्त्रियों का देश था। उनको भी खबर मिली कि कहीं चाय जैसी अदभुत चीज होती है, जो पीने में बड़ा आनंद देती है। तो उन्होंने सारे दूर-दूर से शास्त्र बुलवाए और कहा कि पहले हम निर्णय तो कर लें कि चाय हो सकती है या नहीं हो सकती। तो चाय के क्या-क्या गुण हैं। उन्होंने किताबें बुलवाईं, खबरें बुलवाईं, जमाने भर से संदेश बुलवाए।
अनेक खबरें आईं। वे खबरें बड़ी कंट्राडिक्ट्री थीं, वे बड़ी विरोधी थीं। किसी ने खबर की कि चाय की पत्ती हरी होती है।
अब चाय की पत्ती हरी होती है, जब वह जवान होती है और वृक्ष पर होती है।
किसी ने खबर की कि चाय की पत्ती बिल्कुल काली होती है।
चाय की पत्ती जरूर काली होती है, जब वह सूख जाती है और तोड़ ली जाती है।
उन तर्कशास्त्रियों ने कहा, यह कैसे हो सकता है? कोई चीज या तो हरी हो सकती है या काली हो सकती है। यह असंभव है कि कोई चीज दोनों हो, काली भी हो और हरी भी हो।
किसी ने कहा कि चाय का रंग पीला होता है। किसी ने कहा, मटमैला होता है। किसी ने कहा, चाय का रंग सोने जैसा होता है।
उन्होंने कहा, यह कैसे हो सकता है? एक ही साथ इतने रंग कैसे हो सकते हैं?
किसी ने कहा, चाय पत्तियां होती है। किसी ने कहा, चाय तरल पदार्थ होती है।
उन्होंने कहा, यह बात कैसे हो सकती है? पत्तियां और तरल पदार्थ एक साथ कोई चीज कैसे हो सकती है?
उन तर्कशास्त्रियों ने सैकड़ों वर्ष तक विवाद किया और अंत में वे इस नतीजे पर पहुंचे कि अगर ऐसी कोई चीज होती भी होगी तो स्वर्ग में होती होगी, जहां सब असंभव बातें हो सकती हैं; जमीन पर नहीं हो सकती ऐसी कोई चीज। उन्होंने खोज बंद कर दी। क्योंकि जो तर्क से सही नहीं था, उसकी खोज करना उचित न थी।
एक तीसरा देश था, वह कंट्री ऑफ साइंटिस्ट्स कहलाता था। वह वैज्ञानिकों का देश था। उन्होंने अपने देश की सब जड़ी-बूटियां उखाड़ डालीं और उनको घोल-घोल कर पी गए। अनेक लोग मर गए। लेकिन चाय का कोई पता नहीं चला। क्योंकि चाय तब तक उस मुल्क में आई ही नहीं थी। तो वैज्ञानिक खोज कर और पीकर क्या करते? न मालूम कितने जवान लड़के मर गए इस खोज में, चाय को पीने में, हर पत्ती घोल कर पी गए वे, लेकिन चाय नहीं मिली। कोई संतुष्ट नहीं हुआ, अनेक लोगों की मृत्यु हो गई, अनेक लोग जहर से बीमार पड़ गए। और उन्होंने कहा कि बकवास है यह सब, हमने एक-एक, एक-एक पत्ती, एक-एक जड़ खोज डाली, लेकिन चाय कहीं भी नहीं होती। यह अफवाह मालूम होती है।
एक चौथा देश था, वह कंट्री ऑफ अनबिलीवर्स था। वहां नास्तिक रहते थे, अविश्वासी रहते थे। उनके पास भी खबर पहुंची, तो उन्होंने भी अपने विचारशील व्यक्ति को चीन भेजा। वह वहां गया। उसने वहां सम्राट से जाकर कहा कि मैं अविश्वासियों के देश से आता हूं, सम्राट ने मुझे वहां से भेजा है। और उन्होंने कहा है कि वह जो सिलेशियल ड्रिंक है, वह जो स्वर्गीय पेय है चाय, उसे हम लेने आए हैं। क्या कृपा करके आप हमें भेंट करेंगे? सम्राट ने कहा, जरूर। उसने बहुत सी चाय उन्हें भेंट की।
लेकिन अविश्वासियों ने देखा कि उस चाय को तो गांव भर के सभी लोग पीते थे। तो उन्होंने कहा, जिस चीज को सभी लोग पीते हों, वह चीज सिलेशियल ड्रिंक नहीं हो सकती है। जिसको हर गांव का किसान, सड़क पर बैठे हुए लोग पीते हों, वह चीज स्वर्गीय पेय नहीं हो सकती। जरूर सम्राट ने धोखा दिया है। वह रास्ते

में ही एक नदी पड़ी, उन्होंने बैलगाड़ियां वहां उलटा दीं और खाली बैलगाड़ियां लेकर अपने देश वापस लौट गए। और उन्होंने कहा, उस सम्राट ने धोखा दिया है, वह शरारती मालूम होता है। जिसको गांव के सभी किसान और आम आदमी और भिखारी पीते हैं, वह स्वर्गीय पेय नहीं हो सकता। धोखा दिया गया है। और वह चीज हमारे सम्राट के योग्य नहीं है। हम उसे नदी में बहा आए हैं। वह जो आदमी निकाल दिया गया था विश्वासियों के देश से, उसने थोड़ी सी चाय उपलब्ध की चीन में जाकर। और उसने आकर, उन चारों देशों की सीमाएं जहां मिलती थीं, वहां एक छोटा सा चायखाना खोला। लेकिन उसका नाम टी-हाउस नहीं था तब, चायखाना नहीं था। सिर्फ उसने एक छोटी सी दुकान खोली। और जो भी राहगीर वहां से निकलता, वह उसे चाय का एक प्याला भेंट करता। जो स्वाद चखते, वे आनंदित हो जाते, वे पूछते, यह क्या है? वे दीक्षित हो जाते। चायखाने इस भांति पैदा हुए।
जीवन का सत्य भी अनुभव से और स्वाद से उपलब्ध होता है। लेकिन जीवन के सत्य के संबंध में भी, वह चार मुल्कों वाली हालत सारी दुनिया की है। या तो अविश्वासी हैं, जिन्होंने तय कर रखा है कि अविश्वास ही उनका धर्म है। या विश्वासी हैं, जिन्होंने तय कर रखा है कि आंख बंद करके विश्वास करेंगे। या तथाकथित वैज्ञानिक हैं, जो कहते हैं कि हमारी प्रयोगशाला में जो सिद्ध होगा वही सत्य है बाकी कुछ भी सत्य नहीं। या दार्शनिक हैं, लाजिसियंश हैं, वे कहते हैं, हम किताबें पढ़ेंगे और व्याख्या करेंगे, उसी में से जीवन के सत्य को निकाल लेंगे।
लेकिन इन चारों लोगों में से कोई भी जीवन के सत्य को नहीं निकाल पाता है। जीवन के सत्य को तो वह निकालता है, जो जीवन की प्याली से जीवन के रस को पीता है। और कौन पीएगा जीवन की प्याली को? वे लोग नहीं पी सकते जो अंध-परंपरा के विश्वासी हैं। वे लोग नहीं पी सकते जो कि व्यर्थ ही प्रत्येक चीज के विरोधी हैं। वे लोग नहीं पी सकते जिन्होंने कि प्रयोगशाला के और पदार्थवादी दृष्टि पर ही सब कुछ रोक रखा है। वे लोग भी नहीं पी सकते जो केवल तर्क करते हैं, केवल विचार करते हैं, आर्ग्यु करते हैं और चुप हो जाते हैं। कौन पीएगा जीवन के सत्य को? जीवन के सौंदर्य को कौन पीएगा? इन चार से जो बच सकता है, वह जीवन के सत्य को पीने में समर्थ हो सकता है।
पहली इस चर्चा में इन चार से बचने के संबंध में थोड़ी सी बातें ख्याल में ले लेनी चाहिए, ताकि जब जीवन की प्याली के संबंध में मैं आने वाले तीन दिनों में बातें करूं तो वे आपके ख्याल में आ सकें।
पहली बातः विश्वास से बचना आवश्यक है, क्योंकि विश्वास अंधा बना देता है।
लेकिन जब मैं यह कहता हूं कि विश्वास से बचना आवश्यक है, तो लोग समझते हैं शायद मैं अविश्वास की तारीफ करता हूं। नहीं, बिल्कुल भी नहीं। अविश्वास से बचना भी आवश्यक है, क्योंकि अविश्वास दूसरी दिशा में अंधा बना देता है। आस्तिक भी अंधे होते हैं और नास्तिक भी अंधे होते हैं। उनके अंधेपन अलग-अलग होते हैं, लेकिन दोनों अंधे होते हैं। एक हां भरने में अंधा होता है, दूसरा न करने में अंधा होता है। एक परंपराओं के पक्ष में अंधा होता है, एक परंपराओं के विपक्ष में अंधा होता है। लेकिन दोनों में से कोई भी परंपराओं से मुक्त नहीं होता। परंपराओं से जो मुक्त है वह तो न विश्वासी होता है, न अविश्वासी होता है। मुक्त वही हो सकता है जो न मित्र हो, न शत्रु हो।
तो मैं आपको यह नहीं कहता हूं कि आप परंपराओं के शत्रु हो जाएं। आप शत्रु हो गए तो आप मुक्त नहीं हो सकेंगे। क्योंकि शत्रु भी उनसे बंध जाता है जिनका शत्रु हो जाता है। आपको याद होगा, आपको मित्रों की याद आती है, शत्रुओं की भी। और मित्रों से ज्यादा शत्रुओं की याद आती है। आदमी मित्रों से कई दिन तक न मिले, लेकिन शत्रुओं से रोज मिलता है। उसके चित्त में शत्रु घूमते ही रहते हैं। हम जिस चीज के दुश्मन हो जाते हैं, हम उस चीज को भी अपने मन में जगह दे देते हैं। घृणा भी जगह बना लेती है, मोह भी जगह बना लेता है। तो मैं जब कहता हूं कि विश्वास से मुक्त हो जाएं, तो साथ ही

मैं कहता हूं, अविश्वास से भी मुक्त हो जाएं। अविश्वास और विश्वास एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
हिंदुस्तान जैसे मुल्क, पूरब के मुल्क विश्वास के अंधेपन से परेशान हैं, पश्चिम के मुल्क अविश्वास के अंधेपन से परेशान हैं। और आदमियत अभी भी विश्वास और अविश्वास के चक्कर के बाहर नहीं हो पाई। ऐसे आदमी बहुत कम हैं जो न शत्रु हों, न मित्र हों, जो इतने शांत हों कि चीजों को सरलता से देख सकें, जिनका अपना कोई आग्रह न हो, अपना कोई पक्ष न हो। विश्वास से बचें और अविश्वास से भी, तो ही आप परंपरा के बाहर हो सकते हैं। तर्क से बचें, क्योंकि अकेला तर्क अत्यंत व्यर्थ दिशा है, एकदम अर्थहीन डायमेंशन है; उस आयाम में कभी भी कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। तर्क के सभी निष्कर्ष एक से व्यर्थ होते हैं। क्योंकि तर्क एक व्यायाम है, उससे ज्यादा नहीं। और व्यायाम से कुछ भी नतीजे निकाले जा सकते हैं, कुछ भी।
एक मस्जिद में एक सुबह एक आदमी प्रविष्ट हुआ। उसने अपने बहुत कीमती जूते, जिन पर सोने की कारीगरी की गई थी, मस्जिद के बाहर छोड़ दिए। लौट कर पीछे भी नहीं देखा और अंदर चला गया। मस्जिद के द्वार पर खड़े लोग चकित रह गए। उन्होंने कहा, कितना अदभुत आदमी है! इतने कीमती जूतों को मस्जिद के बाहर छोड़ गया, जिनकी चोरी भी हो सकती है। बड़ा धार्मिक, बड़ा विश्वासी आदमी मालूम होता है। इसके मन में किसी के प्रति चोर होने का भाव ही नहीं उठता है मालूम होता है।
उसके ही पीछे एक दूसरा आदमी आया, जिसके फटे-पुराने जूते थे। उसने जूते उतारे, दोनों को जोड़ा, बगल में दबाया और मस्जिद के भीतर प्रविष्ट हुआ। वे सारे लोग कहने लगे, बड़ी हैरानी की बात है! इस पागल को यह नहीं दिखाई पड़ता, इतने कीमती जूते यहां रखे हुए हैं, और यह अपने फटे-पुराने जूतों को दबा कर अंदर ले गया है।
फिर वे दोनों आदमी बाहर निकले। कीमती जूतों वाला आदमी बाहर आया तो उन लोगों ने पूछा, क्या हम पूछ सकते हैं आप इतने कीमती जूते बाहर क्यों छोड़ गए?
उस आदमी ने कहा, इसका एक कारण है। मैंने जूते इसलिए बाहर छोड़े, ताकि अगर कोई उनकी चोरी करना चाहे, तो कम से कम प्रार्थना करते समय मैं उसे बाधा तो न दे सकूं। और तो बाधा देता हूं चौबीस घंटे, लेकिन प्रार्थना के समय में तो कम से कम कोई अगर चोरी करना चाहे तो मैं बाधा न बनूं इसलिए। और इसलिए भी कि अगर किसी का चोरी करने का मन हो इन जूतों पर और वह अपनी चोरी करने की कामना पर विजय पा ले, तो इसमें भी मैं उसके धार्मिक इस कृत्य में भी सहयोगी बन सकूं। किसी को जूते चुराने का टेंप्टेशन हुआ और फिर उसने विजय पा ली, तो उसने एक महान कार्य किया साधना का, मैं उसका साथी हो सकूं। इसलिए भी जूते मैं बाहर छोड़ गया।
वे सारे लोग चकित, आश्चर्य से, आदर से भरे हुए देखते रहे।
वह आदमी गया था कि फटे-पुराने जूते वाला आदमी बाहर आया। उन्होंने पूछा कि मित्र, क्या हम आपसे पूछ सकते हैं कि इतने कीमती जूते बाहर थे और आप अपने जूते मस्जिद के भीतर ले गए!
उसने कहा, दो कारणों से भाई। एक तो इस कारण से कि ये फटे-पुराने जूते मेरे पास होते हैं तो मुझे अपनी दरिद्रता, अपनी ह्युमिलिटी, अपनी विनम्रता का बोध रहता है कि मैं एक साधारण, अत्यंत दरिद्र-दीन आदमी हूं। और प्रार्थना करते समय जिसके मन में दीनता का भाव नहीं, उसकी प्रार्थना तो कभी सफल नहीं हो सकती। इसलिए मैं जूते भीतर ले गया था। और इसलिए भी कि कहीं मेरे जूते बाहर पड़े रहे और किसी का मन चोरी करने का हो जाए, तो उसके मन को पाप में ले जाने में मैं भी सहयोगी हुआ, मैंने भी पाप किया। इसलिए मैं जूते बाहर नहीं छोड़ गया था।
उसके अनुयायी भी मिल गए। वे उसकी धन्यता की प्रशंसा करने लगे कि यह आदमी भी बहुत अदभुत है। वह आदमी भी चला गया। तब एक बूढ़ा वहां हंसने लगा जो उस भीड़ में खड़ा था और उसने कहा, पागलो, इन दोनों आदमियों को मैं भलीभांति जानता हूं। जिस आदमी ने जूते बाहर रखे, ये जूते इसने मस्जिद पहन कर आने के लिए खास तौर से बनवाए हुए हैं। और यह आदमी, मैं बहुत दिनों से परिचित हूं,

इसकी औरत मर गई थी तो घर में तो शांत रहता था, चौरस्ते पर खड़े होकर आंसू बहाता था। यह आदमी एक्झिबीशनिस्ट है, यह आदमी प्रदर्शन करने में इसको बड़ा आनंद है। और तुम यह मत सोचना कि यह जूते छोड़ गया, जो दलीलें इसने दीं, उनके कारण। यह अंदर बैठा हुआ जूतों के बाबत ही सोचता रहा। इससे मैं भलीभांति परिचित हूं। यह जान कर जूते छोड़ गया था।
और दूसरे आदमी से भी मैं भलीभांति परिचित हूं। न तो वह विनम्रता के कारण जूते भीतर ले गया, न कोई चोरी से बच सके इसलिए। क्योंकि ये जूते इस आदमी ने खुद ही चुराए हुए हैं। और इन दोनों ने जो दलीलें दीं, जो तर्क दिए, वे बिल्कुल फिजूल हैं, वे कभी घटे ही नहीं। क्योंकि तुम सब खड़े हो, इन्होंने जिस आदमी की बताई कि कोई आदमी निकलेगा, वह आदमी निकला? वह इमेजिंड सिनर निकला ही नहीं। वह कल्पित पापी यहां से गुजरा ही नहीं। वह तथ्य तो घटित ही नहीं हुआ।
एक और बात जरूर घटी। तुम इनके जूते की चर्चा में पड़े रहे, इस बीच एक आदमी मस्जिद के भीतर गया। लेकिन उसके पास जूते नहीं थे कि बाहर छोड़ सके, न जूते थे कि भीतर ले जा सके। क्योंकि रास्ते पर एक बूढ़े आदमी को वह अपने जूते भेंट कर आया था। लेकिन वह तुममें से किसी को भी दिखाई नहीं पड़ा। वह आदमी तुम्हें दिखाई ही नहीं पड़ा जिसकी प्रार्थना स्वीकार हो गई है। लेकिन उसके पास जूते नहीं थे कि छोड़ सके, न जूते थे कि भीतर ले जा सके। क्योंकि मस्जिद आते समय किसी को वह अपने जूते भेंट कर आया है, जिसके पास जूते नहीं थे। वह आदमी तुम्हें दिखाई ही नहीं पड़ा, क्योंकि उस आदमी ने अपने आने के साथ कोई आर्ग्युमेंट, कोई तर्क लेकर भीतर नहीं गया, न कोई तर्क पीछे छोड़ गया। वह चुपचाप आया और चुपचाप निकल गया। उस आदमी का तुम्हें कोई दर्शन ही नहीं हो सका। वह आदमी था जिसकी प्रार्थना स्वीकार हो गई है।
एक ऐसा जीवन है, जो तर्क का जीवन है, जो प्रदर्शन का जीवन है, जहां हम कुछ सिद्ध करना चाहते हैं। चाहे हम ईश्वर का होना सिद्ध करना चाहते हों, चाहे ईश्वर का न होना सिद्ध करना चाहते हों, चाहे हम सिद्ध करना चाहते हों कि आत्मा है, चाहे हम सिद्ध करना चाहते हों कि आत्मा नहीं है, लेकिन ये दोनों आदमी एक ही बीमारी से ग्रसित हैं, ये कुछ सिद्ध करना चाहते हैं। सिद्ध करने की बीमारी आदमी के अहंकार से पैदा होती है। धार्मिक आदमी कुछ भी सिद्ध नहीं करना चाहता, क्योंकि वह यह कहता है, हमारी यह सामर्थ्य कहां कि हम कुछ सिद्ध कर सकें! मेरा यह बल कहां कि मैं कुछ जान सकूं! मेरी यह बुद्धि कहां कि सत्य को मैं बता सकूं! मैं तो कुछ भी सिद्ध नहीं कर सकता हूं।
इसलिए तर्क की वहां कोई जगह नहीं रह जाती। आस्तिक कभी धार्मिक नहीं
हो सके। और नास्तिक तो हो कैसे सकते हैं? तार्किक, वह जो कुछ सिद्ध करने की कोशिश में लगा है, शब्दों से खेल रहा है, इससे ज्यादा नहीं। और शब्दों से खेल कर कुछ भी सिद्ध किया जा सकता है। शब्दों का अपना खेल है। जैसे शतरंज के खेल हैं, जैसे ताश के खेल हैं; उन खेलों के अपने नियम हैं। ऐसे शब्दों के अपने खेल हैं और शब्दों के अपने नियम हैं।
मार्क ट्वेन का नाम आपने सुना होगा। एक मित्र ने उसे एक रात एक सभा में आमंत्रित किया। वह मित्र एक बहुत बड़ा प्रीचर था, एक बहुत बड़ा उपदेशक था। उसके भाषणों की सारी दुनिया में ख्याति थी। उसने कहा कि आज तुम्हारे गांव में मैं बोलने आ रहा हूं, और कुछ नई बातें कहने वाला हूं, तुम आ जाओगे तो अच्छा होगा।
मार्क ट्वेन गया, मार्क ट्वेन सामने की ही सीट पर बैठा रहा और ऐसा पत्थर की तरह बैठा रहा कि वह मित्र बोलता गया और घबड़ाता गया, क्योंकि उसके चेहरे पर कोई भाव नहीं--न प्रशंसा के, न निंदा के।
भाषण समाप्त हुआ, सारे लोग मंत्रमुग्ध होकर सुने थे। मार्क ट्वेन से गाड़ी में बैठते वक्त उसने कहा, मैंने जो कहा वह कैसा लगा? बहुत डरे हुए। मार्क ट्वेन ने कहा, लगने की क्या बात, मैं तो हैरान था। कल रात ही मैंने एक किताब पढ़ी है, एक-एक शब्द तुम्हारा उसी किताब में से उधार लिया हुआ है। एक-एक शब्द! तुम एक शब्द भी नया नहीं बोले और तुम कह तो यह रहे थे कि कुछ नई बातें कहनी हैं।

वह उपदेशक तो हैरान हो गया। उसने कहा, एकाध वाक्य हो भी सकता है किसी किताब में हो जो मैंने कहा। लेकिन एक-एक शब्द! मैं शर्त लगाने को तैयार हूं, क्योंकि मैंने किसी किताब से यह सब नहीं लिया है।
सौ-सौ रुपये की शर्त लग गई। दूसरे दिन मित्र शर्त हार गया। मार्क ट्वेन ने वह किताब भेज दी जिसमें एक-एक शब्द लिखा हुआ था। वह थी डिक्शनरी। वह था शब्दकोश। सौ रुपये हार जाने पड़े, क्योंकि उस शब्दकोश में एक-एक शब्द लिखा था।
तर्क इससे बाहर नहीं ले जा सकता। आर्ग्युमेंट, लाजिक के अपने खेल के अपने नियम हैं, उनके भीतर वह घूमता है। वहां कोई चीज जीत भी सकती है और हार भी सकती है। लेकिन तर्क की जीत न तो जीत है, तर्क की हार न तो हार है। जो उसमें समय को गवां देता है, वह व्यर्थ गवां देता है। जीवन उन्हें उपलब्ध नहीं मिलता, जो जीवन के पास तर्क लेकर जाते हैं। जीवन उन्हें उपलब्ध होता है, जो जीवन के पास अतर्क्य, जीवन के पास अतर्क्य जो पहुंच जाते हैं, निष्प्रश्न जो पहुंच जाते हैं; बिना विश्वास के, बिना अविश्वास के, बिना तर्क के जो पहुंच जाते हैं जीवन के पास, उन्हें उपलब्ध होती है जीवन की संपदा और संपत्ति।
ये प्राथमिक बातें मैंने कहीं, ताकि कल से मैं आपसे वे बातें कह सकूं
जो जीवन की संपदा की तरफ उठाने के रास्ते पर अनिवार्य सीढ़ियां बन सकती हैं। तीन सीढ़ियों की बात मैं करूंगा तीन दिनों में। लेकिन उसके पहले कुछ मन की सफाई हो जानी जरूरी है, ताकि जो मैं कहूं उसे आप सुन सकें।
पहली बातः अतीत की तरफ से आंखें खींच लें; भविष्य की तरफ देखने में समर्थ हो जाएं।
दूसरी बातः सुरक्षा का मोह छोड़ें, अगर जीवन को जीना है। जीवन को जीना
है तो जोखिम उठाने की स्वीकृति होनी चाहिए, खतरा मोल लेने की सामर्थ्य होनी चाहिए। इतना स्वीकार होना चाहिए कि मैं अपने पैरों पर चल कर देखूंगा। क्या होता है, देखूं। परमात्मा ने एक मौका दिया है मुझे चलने का, एक अवसर मिला है कि मैं जीऊं। एक अवसर मिला है कि मैं श्वास लूं, गीत गाऊं। एक अवसर मिला है कि अपनी आंखों से देखूं, अपने कानों से सुनूं। एक अवसर मिला है कि अपने हृदय की धड़कन को अनुभव करूं। अपने सौंदर्य को, अपने प्रेम को बहाऊं। इस अवसर को क्या मैं खो दूंगा?
तीसरी बातः जो अनुगमन करते हैं, वे इस अवसर को खो देते हैं। अनुगमन अबुद्धि का लक्षण है। अनुगमन जड़ता का लक्षण है, स्टुपिडिटी का लक्षण है। अनुयायी अर्थात स्टुपिड। अनुयायी अर्थात जड़बुद्धि। जड़ता ही अनुगमन में ले जाती है और अनुगमन जड़ता को मजबूत करता चला जाता है। जड़ता के प्रति विद्रोह चाहिए--अपनी जड़ता के प्रति! जब मैं आपसे यह कह रहा हूं अनुगमन छोड़ दें, तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि महावीर को छोड़ दें और बुद्ध को छोड़ दें। मैं यह कह रहा हूं, अपनी जड़ता को छोड़ दें।
अनुगमन छोड़ने से और कुछ नहीं छूटता, केवल हमारी अबुद्धि छूटती है। और हमारे भीतर चैतन्य की किरणें प्रविष्ट होनी शुरू हो जाती हैं। क्योंकि जो आदमी अपने बल पर खड़े होने की हिम्मत करता है, उसकी सोई हुई ताकतें जागने लगती हैं। हमेशा ताकत तभी जागती है, जब ताकत को चुनौती, चैलेंज हो।
अभी हम यहां बैठे हैं। अगर हमें दौड़ने को कहा जाए, तो हम दौड़ेंगे जरूर, लेकिन उस दौड़ने में जान नहीं होगी। लेकिन कल अगर हम प्रतियोगिता में दौड़ें, तो उस दौड़ने में और जान आ जाएगी। और परसों अगर कोई हमारे पीछे गोली लेकर पड़ा हो, बंदूक लेकर पड़ा हो, तो हम इस तरह दौड़ सकेंगे कि दुनिया में जो भी रिकार्ड हैं वे सब टूट जाएं।
क्यों? इसलिए कि जहां चुनौती है वहां प्राणों की सारी छिपी हुई शक्ति प्रकट हो जाती है। कोई भी आदमी अपने जीवन में मुश्किल से अपनी शक्तियों के पांच प्रतिशत का उपयोग कर पाता है। पंचानबे प्रतिशत जीवन की शक्ति व्यर्थ पड़ी रह जाती है। उसके लिए चुनौती नहीं है, उसके लिए बुलावा नहीं है, उसके लिए आमंत्रण नहीं है, उसके लिए जीवन का खतरा नहीं है कि वह उठे और जग जाए। आपको पता है, जितना सुरक्षित जीवन होता है, जीवन की शक्ति उतनी ही क्षीण हो जाती है। जितना असुरक्षित जीवन होता है, जीवन की शक्तियां उतनी

ही प्रकट हो जाती हैं। असुरक्षा सौभाग्य है। इनसिक्योरिटी जो है, वह परमात्मा की तरफ से दी गई सबसे बड़ी ब्लेसिंग, सबसे बड़ा शुभाशीष है। लेकिन हम उस इनसिक्योरिटी को, उस असुरक्षा को नष्ट कर देते हैं। और अपने सुरक्षा के घर बना कर बैठ जाते हैं। और सोचते हैं, हमने सब कुछ पा लिया।
हमने जीवन खो दिया! हमने, जो भी महत्वपूर्ण था, खो दिया! हमने, जो भी सार्थक चुनौती थी, उससे मुंह छिपा लिया! हम बैठ गए अपने घरों में। जरूर हम बैठे रहेंगे और मर जाएंगे। लेकिन जीवन का जो साक्षात, जो एनकाउंटर हो सकता था, वह नहीं हो सकेगा। उसी साक्षात में, उसी मुठभेड़ में, जीवन के साथ उसी संघर्ष में, जीवन की समस्याओं के सामने बिना पर्दे के खड़े हो जाने में ही भीतर जो छिपी हुई ताकतें हैं वे उठती हैं और जागती हैं।
एक छोटी सी घटना, और अपनी बात मैं पूरी करूंगा।
बंगाल के एक बहुत बड़े चित्रकार के पास, अवनींद्रनाथ ठाकुर के पास, एक दूसरा छिपा हुआ चित्रकार, नंदलाल, चित्रकला सीखने गया हुआ था। तब वह जवान था, उसके भीतर छिपी हुई प्रतिभा का किसी को कोई पता नहीं था। रवींद्रनाथ अवनींद्रनाथ के पास एक दिन बैठे हुए थे और नंदलाल कृष्ण की एक पेंटिंग, एक चित्र बना कर कृष्ण का लाया। रवींद्रनाथ ने चित्र को देखा और मोहित हो गए। चित्र इतना सुंदर था, इतना सुंदर था! लेकिन अवनींद्रनाथ ने, जो कि गुरु थे नंदलाल के, उन्होंने चित्र को देखा, चित्र को उठा कर सड़क पर बाहर फेंक दिया।
रवींद्रनाथ तो हैरान हो गए। रवींद्रनाथ ने बाद में किसी को कहा कि मैं तो हैरान ही रह गया। मेरा तो ख्याल था कि अवनींद्रनाथ भी उतना सुंदर चित्र बनाते तो मुश्किल पड़ता उनको भी बनाना। चित्र इतना अदभुत था, मैंने कृष्ण के बहुत चित्र देखे, लेकिन वैसा चित्र देखा ही नहीं। और उस छोकरे का, नंदलाल का चित्र बाहर सड़क पर फेंक दिया गया।
और अवनींद्रनाथ ने कहा कि तुझसे अच्छे तो बंगाल में जो पटिए कृष्ण का चित्र बनाते हैं, वे अच्छा बना लेते हैं।
बंगाल में पटिए होते हैं, वे दो-दो पैसे का चित्र बना कर कृष्ण का, कृष्ण की जन्माष्टमी पर बेचते हैं। तो दो-दो पैसे... सबसे बेचारे गरीब कलाकार।
अवनींद्रनाथ ने कहा कि बंगाल के पटिए तुझसे अच्छा चित्र बना लेते हैं, दो-दो पैसे में बेचते हैं। यह कोई चित्र है? जा! अभी बहुत सीखना है तुझे।
नंदलाल चुपचाप पैर छूकर बाहर निकल गए। निकलते ही रवींद्रनाथ ने कहा
कि यह क्या किया आपने? यह तो बड़ी अजीब बात है, यह चित्र तो बहुत सुंदर था! रवींद्रनाथ तो क्रोध में आ गए थे, लेकिन उनका क्रोध जब उतरा तो देखा, अवनींद्रनाथ की आंखों से आंसू बहे चले जा रहे हैं। अवनींद्रनाथ ने कहा, मैं भी जानता हूं कि चित्र अदभुत था। मैं भी वैसा चित्र बना सकूं, निर्णय से नहीं कह सकता हूं।
तो फिर क्यों फेंका? रवींद्रनाथ ने पूछा।
अवनींद्रनाथ ने कहा, उस लड़के के भीतर अभी और भी संभावना छिपी है। उसके लिए चुनौती चाहिए। अगर मैं प्रशंसा कर दूं, बात खत्म हो गई, उसके भीतर जो छिपा है वह वहीं बंद रह जाएगा। अभी मैं आलोचना करूंगा, रोऊंगा और आलोचना करूंगा। मेरी आंखों में आंसू देखते हो? ये आंसू इस दुख में उठ रहे हैं कि मुझे उसकी आलोचना करनी पड़ी जो कि प्रशंसा के योग्य था। लेकिन अभी मैं और आलोचना करूंगा, ताकि उसके भीतर जो छिपा है और प्रकट हो जाए।
वह लड़का तीन महीने के लिए नदारद हो गया। बहुत खोजबीन की गई, उस नंदलाल
का कोई पता नहीं चला। उसके झोपड़े पर ताला लगा हुआ है। वह तीन महीने बंगाल के गांवों में घूम-घूम कर, पटियों के पास जाकर, कृष्ण के चित्र बनाने की कला सीखने लगा।
तीन महीने बाद वह वापस लौटा। वह खुद एक पटिए जैसा हो गया था, गरीब, कपड़े फटे थे। और आकर अवनींद्रनाथ के पैरों पर गिर पड़ा और कहा, आपने ठीक कहा था, मैं क्या बना सकता हूं! मेरे चित्र में रंग थे, मेरे चित्र में रेखाएं थीं, मेरे चित्र में सब कुछ था, लेकिन पटियों का प्रेम नहीं था। वह कमी थी।

वह मैं ले आया हूं, मैं सीख कर आ गया हूं। आपकी बड़ी कृपा थी जो चित्र आपने फेंक दिया।
आदमी के भीतर जो छिपा है... और नंदलाल के भीतर जो प्रतिभा प्रकट हुई, वह प्रतिभा धीरे-धीरे इन कठिनाइयों को पार करके प्रकट हुई। जीवन के लिए जितनी चुनौती हो, भीतर जो छिपा है उसके लिए जितना संघर्ष हो, उसके लिए बाहर की दुनिया में जितना खतरा हो, जितनी इनसिक्योरिटी हो, उतना ही जो भीतर छिपा है वह जागेगा। और सामर्थ्य बढ़ेगी, पात्रता बढ़ेगी। और एक दिन व्यक्ति जब अपने भीतर सारी छिपी क्षमताओं को प्रकट कर लेता है, उसी दिन--उसी क्षण-- उसे उस सत्य का पता चल जाता है जिसे लोग प्रभु कहते हैं, परमात्मा कहते हैं।
परमात्मा कहीं कोई आकाश में बैठा हुआ व्यक्ति नहीं, और न ही परमात्मा किन्हीं मंदिरों में छिपा हुआ है। परमात्मा छिपा हुआ है प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व में। और इस व्यक्तित्व को उघाड़ने के लिए कहीं मालाएं लेकर आप बैठ गए तो कुछ भी नहीं उघड़ेगा, वे तो ढांकने के रास्ते हैं। इस व्यक्तित्व को अगर हिमालय में लेकर भाग गए तो कुछ भी नहीं उघड़ेगा।
इस व्यक्तित्व में जो छिपा है, अगर उसे प्रकट देखना चाहते हैं, तो लिव डेंजरसली, तो खतरे में जीएं, असुरक्षा में जीएं, इनसिक्योरिटी में उतरें, सारी सुरक्षाएं छोड़ दें मन की। पीछे अतीत को जाने दें, आगे जो भविष्य का अंधकार है उसमें कूद पड़ें, उसमें जीएं। जाने दें ज्ञान को, जाने दें गीता को, कुरान को, बाइबिल को। उन सबसे सुरक्षा मिलती है, लगने लगता है कि मैं जानता हूं, उनको कंठस्थ कर लेने से। जाने दें उनको, अनुभव करें अज्ञान को कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं। न जानने में प्रविष्ट हो जाएं--अज्ञान में, अंधकार में, भविष्य में, अनजान में, अननोन में। और आप पाएंगे कि जैसे एक कदम आप उठाते हैं अंधकार में, वैसे ही आपके भीतर शक्ति का एक पुंज जगना शुरू हो जाता है। अज्ञात में जाते हैं और भीतर कोई ज्ञान प्रकट होने लगता है।
जीवन-साधना एक संघर्ष है--अज्ञात के साथ, खतरे के साथ; एक जोखिम है। धार्मिक होना उस भांति की बात नहीं है जैसे निकम्मे लोगों को हम सारी दुनिया में धार्मिक होना समझते हैं। निकम्मा आदमी धार्मिक नहीं होता। न धार्मिक होना कोई पलायन है, कोई एस्केप है। धार्मिक होना तो जीवन के साथ, उसकी संपूर्ण असुरक्षा में एक संघर्ष है।
यह संघर्ष कैसे हो सकता है, इसके तीन सूत्रों पर आने वाली चर्चाओं में आपसे बात करूंगा।
आज इतना ही।
मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर छिपे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

माटी कहै कुम्हार सूं
सातवां प्रवचन

परंपराओं से मुक्ति

मेरे प्रिय आत्मन्!
कल संध्या, सत्य की खोज में साधक के मन की पात्रता कैसी चाहिए, उस संबंध में थोड़ी सी बातें मैंने कही हैं। उन बातों पर कुछ प्रश्न पूछे गए हैं, उनकी हम चर्चा करेंगे।

एक मित्र ने पूछा है कि अतीत को छोड़ देने पर, परंपरा को छोड़ देने के लिए, मेरा इतना आग्रह क्यों है?

एक आदमी हाथ में कंकड़-पत्थर लिए हुए चल रहा हो, उसके हाथ कंकड़-पत्थरों
से भरे हों। और हमें पता हो कि उसी रास्ते पर तो हीरे-जवाहरात भी मिल सकते हैं और उस आदमी से हम कहें कि तुम अपने हाथ खाली कर लो, कंकड़-पत्थर छोड़ दो। वह आदमी पूछने लगे कि आप मेरे हाथों के कंकड़-पत्थर छुड़ाने के लिए इतना आग्रह क्यों करते हैं?
कंकड़-पत्थरों से मुझे कोई भी आग्रह नहीं है। लेकिन कंकड़-पत्थर से जो हाथ भरे हैं, वे हीरे-जवाहरातों से नहीं भर सकते हैं। हीरे-जवाहरातों से भर जाएं, इसके लिए मेरा आग्रह जरूर है। लेकिन उसके लिए खाली हाथ चाहिए। परंपरा को छोड़ देने पर कोई आग्रह नहीं है। लेकिन परंपरा को जो पकड़े हुए है, अतीत को, बीते हुए को जो पकड़े हुए है, उसका भविष्य हाथों से छूट जाता है। अतीत को जो पकड़े हुए है, उसका वर्तमान भी हाथों से छूट जाता है। जितना आदमी पीछे की तरफ देखता रहता है, उतना ही जो मौजूद है और जो होने वाला है, वह उसे दिखाई पड़ना बंद हो जाता है।
तो जिसके हाथ में बीते हुए कंकड़-पत्थर हैं, वह जीवन के वर्तमान के और भविष्य के हीरे-जवाहरातों को नहीं बीन पाता है, इसलिए मेरा जोर है। वह जोर, वह एंफेसिस अतीत को छोड़ देने पर नहीं, वह जोर वर्तमान को और भविष्य को उपलब्ध कर लेने पर है।
लेकिन एकदम से शायद यह दिखाई नहीं पड़ता।
एक सुबह, एक घुड़सवार एक रेगिस्तानी रास्ते से निकल रहा है। एक आदमी सोया हुआ है और उस घुड़सवार ने देखा कि उस आदमी का मुंह खुला हुआ है और एक छोटा सा सांप उसके मुंह में चला गया। वह घुड़सवार उतरा। उसके पीछे उसके दो साथी थे, उनको भी उसने बुलाया। उस आदमी को उठाया और जबरदस्ती उसे घसीट कर पास ही नदी के किनारे ले गए और जबरदस्ती उन तीन-चार लोगों ने उसे पानी पिलाना शुरू किया।
वह आदमी चिल्लाने लगा, तुम क्या मनुष्यता के शत्रु हो, तुम क्यों मुझे पानी पिला रहे हो? तुम क्यों मुझे परेशान कर रहे हो? क्या जबरदस्ती है यह? लेकिन उन्होंने बिल्कुल भी नहीं सुना, वे उसे जबरदस्ती पानी पिलाते गए। वह नहीं पीने को राजी हुआ, तो उन्होंने उसे धमकी दी कि वे उसे कोड़ों से मारेंगे। तो उस गरीब आदमी को जबरदस्ती पानी पीना पड़ा। लेकिन वह पानी पीता गया और चिल्लाता गया, विरोध करता गया कि यह तुम क्या कर रहे हो? मुझे पानी नहीं पीना है!
जब बहुत पानी वह पी गया तो उसे उलटी हो गई और उस पानी के साथ वह छोटा सा सांप भी बाहर निकला। तब तो वह हैरान रह गया! और वह आदमी कहने लगा कि तुमने पहले क्यों न कहा? मैं खुद ही अपनी मर्जी से पानी पी लेता।
उस घुड़सवार ने कहा कि मुझे जीवन का अनुभव है। पहली तो बात, अगर मैं तुमसे कहता कि सांप तुम्हारे मुंह में चला गया है, तो तुम हंसते और कहते, क्या मजाक करते हैं? सांप और कहीं मुंह में जा सकता है! दूसरी बात, अगर तुम विश्वास कर लेते, तो यह भी हो सकता था कि तुम इतना घबड़ा जाते कि तुम बेहोश हो जाते और तुम्हें बचाना मुश्किल हो जाता। तीसरी बात, यह भी हो सकता था कि तुम पानी भी पीने को राजी होते, तो हमारे समझाने-बुझाने में इतनी देर लग जाती कि फिर उस पानी पीने का कोई अर्थ न रह जाता।

मुझे क्षमा करना, उस घुड़सवार ने कहा, मजबूरी में हमें तुम्हारे साथ जोर करना पड़ा, उसके लिए क्षमा कर देना।
लेकिन वह आदमी धन्यवाद देने लगा, हजार-हजार धन्यवाद देने लगा। यही आदमी थोड़ी देर पहले चिल्ला रहा था कि क्या तुम आदमियत के शत्रु हो, तुम यह क्या कर रहे हो? एक अनजान आदमी के साथ यह क्या जबरदस्ती हो रही है?
मैं जब आपसे कहता हूं कि परंपरा, अतीत, बीते हुए को छोड़ दें, तो ऐसा ही लगता है कि मैं व्यर्थ ही आपको आग्रह कर रहा हूं, कोई जबरदस्ती कर रहा हूं। मनुष्यता का शत्रु ही मालूम होता हूं। लेकिन थोड़ा सोचेंगे, थोड़ा समझेंगे, थोड़ा विचार करेंगे, तो एक बात दिखाई पड़नी शुरू हो जाएगीः मनुष्य का चित्त यदि अतीत से बंधा हो, तो भविष्य की ओर उन्मुख नहीं हो सकता। यह इंपासिबिलिटी है, यह असंभावना है। या तो अतीत की ओर उन्मुख होता है मनुष्य का चित्त और या भविष्य की ओर उन्मुख होता है।
और स्मरण रहे कि जो व्यक्ति अतीत की ओर उन्मुख होता है, वह वर्तमान की
ओर भी उन्मुख नहीं होता। वही वर्तमान उसे दिखाई पड़ता है जो अतीत बन जाता है। वर्तमान प्रतिक्षण अतीत बन रहा है। अतीत की तरफ देखने वाले आदमी को वर्तमान का भी वही हिस्सा दिखाई पड़ता है, जो अतीत बन चुका होता है। जो भविष्य की ओर उन्मुख होता है, उसे वर्तमान का वह हिस्सा दिखाई पड़ता है, जो अभी अतीत नहीं बना है। जो अभी है, इस क्षण जो मौजूद है।
जीवन की अनुभूति वर्तमान के साक्षात में है। लेकिन परंपराओं को पकड़ लेने के लिए, मैं तो आग्रह नहीं कर रहा हूं कि छोड़ दें, लेकिन हम सबका आग्रह जरूर है कि हम पकड़े रहेंगे। वह हमारा आग्रह क्यों है इतना? क्यों हम इतने पागल की तरह बीते हुए को पकड़ लेना चाहते हैं? कुछ वजह होगी। कुछ एक-दो बातें समझ लेनी जरूरी हैं।
पहली बात तो यह, जिन्हें भविष्य का कोई भरोसा नहीं होता, वे अतीत की स्मृतियों में ही अपने को भुलाए रखना चाहते हैं। बच्चे हमेशा भविष्य की तरफ देखते हैं, बूढ़े हमेशा अतीत की तरफ देखते हैं। बच्चों का कोई अतीत नहीं होता, कोई पास्ट नहीं है उनका, जो भी है भविष्य है। बच्चा हमेशा आगे की तरफ देख रहा है। बूढ़े हमेशा पीछे की तरफ देख रहे हैं, उनका कोई भविष्य नहीं है, जो कुछ है अतीत है।
बूढ़े अतीत की ओर देखते हैं, इससे यह सूत्र भी समझ ले सकते हैं कि जो भी अतीत की ओर देखता है, वह बूढ़ा हो जाता है! वह लक्षण बुढ़ापे का है! और बुढ़ापा मृत्यु की ओर उठाया हुआ जीवन का अंतिम कदम है। बुढ़ापा मृत्यु की ओर उठाया हुआ जीवन का अंतिम कदम है। और जिसने पीछे की तरफ देखना शुरू कर दिया, समझ लेना, उसने जीना बंद कर दिया है। वह आदमी मरना शुरू हो गया है, या मर चुका है। जब तक भविष्य होता है देखने को, तब तक कोई पीछे की तरफ नहीं देखता। जवान कौमें भी पीछे की तरफ नहीं देखती हैं। बूढ़ी कौमें ही पीछे की तरफ देखती हैं। और जितना वे पीछे की तरफ देखती हैं, उतनी ही बूढ़ी होती चली जाती हैं, एक विसियस सर्किल पैदा हो जाता है, एक दुष्टचक्र पैदा हो जाता है। क्यों हम पीछे की तरफ देखते हैं? क्या हमें भविष्य में कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता? क्या वर्तमान में हमें कोई भी आनंद के क्षण मालूम नहीं होते, जो हम पीछे-पीछे लौट कर देखते रहें और उन बातों को सोचते रहें जो कभी बीत चुकी हैं?
और बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि जब वे बातें बीत रही थीं, तब भी हम उनको नहीं देख रहे थे, तब हम और पीछे देख रहे थे। न हमने महावीर को देखा, न हमने बुद्ध को देखा, न हमने राम को देखा, न हमने कृष्ण को देखा। जब राम मौजूद हैं, तब हम पीछे की तरफ देख रहे हैं उन लोगों को जो राम के पहले हो चुके हैं। जब बुद्ध मौजूद हैं, तब हम पीछे की तरफ देख रहे हैं उन लोगों को जो बुद्ध के पहले हो चुके हैं।
बुद्ध को देखा हमने? क्राइस्ट को देखा हमने?
क्राइस्ट को नहीं देखा, क्राइस्ट के सामने जो लोग मौजूद थे, उन्होंने
तो उसे फांसी लगा दी। लेकिन दो हजार साल से दूसरे लोग लौट-लौट कर क्राइस्ट को देख रहे हैं। बुद्ध को गांव से भागना पड़ा। महावीर को पत्थर मारे गए। सुकरात को जहर पिला दिया, उन लोगों ने जो मौजूद थे। लेकिन दो हजार साल से

सुकरात की पूजा चलती है, सुकरात का आदर चलता है। और आज सुकरात पैदा हो जाए, तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूं, हम फिर वही करेंगे सुकरात के साथ जो हमने पहले किया था। क्योंकि हम जिंदा आदमी के साथ, मौजूद के साथ, ठीक सलूक करना जानते ही नहीं हैं। हम तो मरे हुए के साथ व्यवहार करना जानते हैं।
यह जो हमारी पीछे लौट कर देखने की आदत है, आप शायद सोचते होंगे कि यह हमारी महापुरुषों को आदर देने की आदत है? झूठी है यह बात। इसमें महापुरुषों के प्रति कोई आदर नहीं, केवल मुर्दों के प्रति आदर है। महापुरुष जिंदा हो तो कोई आदर नहीं है। वही हम करेंगे जो हमने पहले किया था।
दोस्तोवस्की ने एक छोटी सी कहानी लिखी है। उसने लिखा हैः जीसस क्राइस्ट ने अठारह सौ वर्ष बाद सोचा कि अब तो करीब-करीब एक तिहाई दुनिया ईसाई हो गई है। अब मैं वापस जाऊं। अब तो मेरा स्वागत हो सकेगा, अब तो लोग मेरी बात सुन सकेंगे। अब तो वे पुरोहित न रहे जिन्होंने मुझे फांसी दी थी। अब तो वे लोग न रहे जो हंसे थे और मजाक उड़ाया था। अब तो वे लोग न रहे जिनके सामने मैं असफल हो गया और मेरी मृत्यु के सिवाय कुछ भी फलित न हुआ था। मैं जाऊं।
जेरुसलम में एक सुबह, रविवार के दिन, जब कि लोग चर्च से वापस लौट रहे हैं, जीसस क्राइस्ट एक झाड़ के नीचे उतर कर खड़े हो गए। चर्च से लौटते हुए लोग, जो चर्च में जीसस क्राइस्ट की प्रार्थना करके आ रहे हैं, उन्होंने जीसस क्राइस्ट को खड़े देखा तो भीड़ लगा ली और वे हंसने लगे और कहने लगे, कोई अभिनेता मालूम होता है, बिल्कुल जीसस क्राइस्ट बन कर खड़ा हुआ है।
जीसस क्राइस्ट ने कहा, मैं अभिनेता नहीं, मैं कोई एक्टर नहीं, मैं खुद जीसस क्राइस्ट हूं!
वे लोग हंसने लगे और उन्होंने कहा कि ऐसे पागलपन की बातें मत करो। जीसस क्राइस्ट सिर्फ एक बार हुए हैं और हो चुके हैं। अब दुबारा नहीं हो सकते।
जीसस क्राइस्ट ने कहा, मैं खुद कह रहा हूं कि मैं जीसस क्राइस्ट हूं। तुम नहीं मानते?
उन्होंने कहा कि कहां लिखा है बाइबिल में कि तुम दुबारा आओगे और इस तारीखों में आओगे? किस शास्त्र में लिखी है तुम्हारे आने की खबर? जरूर कोई धोखेबाज आदमी मालूम होता है।
जीसस क्राइस्ट तो मन में बहुत घबड़ाने लगे। ये तो वही की वही बातें हैं
जो अठारह सौ वर्ष पहले उनसे लोगों ने कही थीं। लेकिन तब तो पुरोहित दूसरों के थे, मंदिर दूसरों के थे, शास्त्र दूसरों के थे। अब तो पुरोहित मेरे हैं, शास्त्र मेरे हैं, ये लोग मेरे हैं। ये भी मुझसे वही बातें कह रहे हैं! जीसस क्राइस्ट को पता नहीं था, जिंदा आदमी के साथ हमेशा वही बातें कही जाती हैं।
और तभी चर्च का पादरी भीड़ लगी देख कर बाहर आ गया। लोगों ने जीसस क्राइस्ट को तो कोई आदर नहीं दिया था, लेकिन झुक-झुक कर उस पादरी को वे नमस्कार करने लगे--जो जीसस क्राइस्ट का पादरी है, जो उनका क्रास अपने गले पर लटकाए हुए है--लोग झुक-झुक कर नमस्कार करने लगे। जीसस को बड़ी हैरानी हुई कि मैं स्वयं मौजूद हूं, लेकिन लोग मुझे आदर नहीं कर रहे, इस पुरोहित को... । लेकिन जीसस क्राइस्ट को पता नहीं, पुरोहित को आदर नहीं दिया जा रहा है। पुरोहित मुर्दा आदमी है, पुरोहित परंपरा का प्रतीक है, उसको आदर दिया जा रहा है। पुरोहित अपनी तरफ से बोले तो अभी अनादर शुरू हो जाएगा। वह परंपरा की तरफ से बोल रहा है, इसलिए उसको आदर है। मुर्दे का आदर है, वह जो डेड, जो समाप्त हो गया, उसका आदर है। जीवित का कोई आदर नहीं है।
उस पुरोहित ने आकर कहा कि उतर बदमाश नीचे! वहां क्यों खड़ा हुआ है? कौन
है तू?
जीसस हंसे और उन्होंने कहा, तू भी मुझे नहीं पहचान रहा है? तू तो सुबह
से सांझ मेरी ही प्रार्थनाएं करता है!
और तभी उस पुरोहित ने कहा, चार आदमी पकड़ कर इसे नीचे उतारो! कोई शरारती आदमी मालूम पड़ता है। उसे ले जाकर चर्च की एक कोठरी में जीसस क्राइस्ट को

बंद कर दिया गया। जीसस तो अपने मन में बहुत हैरान हुए--क्या फिर से फांसी लगाई जाएगी? क्या दुबारा सूली पर लटकना पड़ेगा?
आधी रात--दिन बीत गया, जीसस बंद हैं कोठरी में--आधी रात वह पुरोहित आया। उसने ताला खोला, अंधेरे में जाकर लालटेन रखी, जीसस के पैरों पर गिर पड़ा।
जीसस ने कहा, क्या करते हो? क्या तुम्हें समझ में आ गया?
उसने कहा, समझ में मुझे वहां भी आ गया था। लेकिन बाजार में हम तुम्हें नहीं पहचान सकते हैं। तुम हमारा सारा धंधा खराब कर दोगे। हम मुश्किल से अठारह सौ साल में दुकान जमा पाए, आप फिर आ गए। आप जैसे लोग हमेशा डिस्टर्ब करते हैं, हमेशा गड़बड़ कर देते हैं, सब जमा हुआ उखाड़ देते हैं। हम भीड़ में आपको नहीं पहचान सकते हैं। आप स्वर्ग में रहो, वह बहुत अच्छा, हम पूजा करेंगे। जमीन पर आपकी कोई भी जरूरत नहीं। हम आपका काम भलीभांति सम्हाल लेते हैं। आपके यहां आने की कोई जरूरत नहीं। नहीं तो याद रखना, फिर वही होगा, फिर हमें सूली लगानी पड़ेगी। और मैं तुम्हें बताए देता हूं, उस पुरोहित ने कहा, जिन पुरोहितों ने तुम्हें पहले सूली लगाई थी, वे भी भलीभांति पहचानते थे कि तुम आदमी ठीक हो। लेकिन ठीक आदमी हमेशा गड़बड़ करते हैं। आप कृपा करें, आपका स्वर्ग में ही निवास अच्छा है, पृथ्वी पर आने की कोई भी जरूरत नहीं है।
शायद जीसस क्राइस्ट उसकी बात से राजी हो गए होंगे, क्योंकि उस कोठरी
के बाद क्या हुआ, फिर कुछ भी पता नहीं है। वे वापस लौट गए होंगे।
अगर महावीर वापस लौट आएं, तो मैं आपसे कहता हूं, जैनियों के अतिरिक्त
और कोई भी उन्हें पहचान सकता है, जैनी उन्हें नहीं पहचान सकते। अगर राम वापस लौट आएं, तो हिंदुओं के अतिरिक्त कोई भी उन्हें पहचान सकता है, लेकिन हिंदू उन्हें नहीं पहचान सकते। हमारी आंख अतीत के प्रति इतने व्यामोह से घिरी है कि वर्तमान को कभी भी नहीं देख पाती।
यह झूठा है आपका ख्याल कि अतीत के प्रति आदर, महापुरुषों के प्रति आदर है। महापुरुषों के प्रति नहीं, मुर्दों के प्रति, मृत के प्रति, जो बीत गया।
मृत के प्रति हम क्यों आदर देते हैं? उसके पीछे भी कारण है। मृत के हम पूरे मालिक हो सकते हैं, ओनरशिप हो सकती है। जीवित के हम मालिक नहीं हो सकते। अगर राम जिंदा हैं, तो हम कुछ भी नहीं कह सकते कि राम क्या करेंगे और क्या नहीं करेंगे। लेकिन मरे हुए राम क्या करेंगे और क्या नहीं करेंगे। हम उसकी व्याख्या कर सकते हैं, निर्णय कर सकते हैं। मरे हुए राम हमारे विरोध में कुछ भी नहीं कह सकते। मरे हुए राम हमारे हाथ की कठपुतली हैं। सब मृत महापुरुषों को हमने हाथ की कठपुतली बनाया हुआ है। जिंदा छोटा
सा आदमी भी हाथ की कठपुतली नहीं हो सकता, महापुरुष तो हाथ की कठपुतली कैसे हो सकते हैं? इसलिए मृत को हम आदर दे पाते हैं, क्योंकि वह हमारे हाथ में होता है, पूरा हमारे शिकंजे में होता है। वह कैसे उठे, कैसे बैठे, हम सब निर्णय कर सकते हैं। वह क्या बोले और क्या न बोले, इसका हम निर्णय कर सकते हैं। वह कपड़े पहने या न पहने, इसका हम निर्णय कर सकते हैं। हम सब निर्णय कर सकते हैं मृत के बाबत, क्योंकि मृत विरोध करने को नहीं आ सकता। लेकिन जीवित के बाबत हम कुछ भी निर्णय नहीं कर सकते। और जितना जीवंत व्यक्ति होगा, उतना ही अनिर्णीत होता है। उसके बाबत हम कोई घोषणा नहीं कर सकते। यह महापुरुषों के प्रति आदर नहीं, यह अपने अहंकार की तृप्ति है। उनको
हम अपनी मुट्ठी में बंद करके बैठ जाते हैं। और वे बेचारे कोई विरोध नहीं कर सकते, क्योंकि जीवित होते तो विरोध करते। हम बदला ले रहे हैं महापुरुषों से। जब वे जीवित थे, तो हम उनको अपने हाथों में बंद नहीं कर सके, उनको अपना गुलाम नहीं बना पाए, उन पर हम जंजीरें नहीं पहना पाए। जब से वे मर जाते हैं, तब से हम उनके मालिक हो जाते हैं। और हम हर तरह की जंजीरें और हर तरह की गुलामी लेकर पूरा बदला चुका देते हैं। यह महापुरुषों के प्रति आदर नहीं, रिवेंज है, बदला है।
गांधी जिंदा हैं, तो हम गांधी को मुट्ठी में नहीं बांध सकते। गांधी मर जाएं, बस फिर हमारी मुट्ठी काम करना शुरू कर देगी। फिर गांधी के पंडित और

गांधी के अनुयायी और गांधी के वाद को मानने वाले पीछे खड़े हो जाएंगे। वे गांधी के ऊपर सब तरह का शिकंजा कस लेंगे। गांधी फिर उनकी मुट्ठी की चीज हैं। गांधी से क्या बुलवाना है, वह गांधी बोलेंगे। क्योंकि मुर्दा गांधी क्या कर सकते हैं?
जीवित व्यक्ति बहुत अनिश्चित घटना है। उस पर हमारा कोई कब्जा नहीं होता।
यह परंपरा के प्रति हमारा जो मोह है, आप सोचते होंगे कि शायद यह हमारे जीवन को सुधारने की कला के प्रति मोह है? शायद हम जीवन को समृद्ध करना चाहते हैं?

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि अगर परंपरा को हम छोड़ दें, संस्कृति को छोड़ दें, तो फिर हमारे जीवन का संस्कार कैसे होगा? हमारा जीवन विकसित कैसे होगा?

यह मामला वैसे ही है जैसे कोई बीमार आदमी कहे कि अगर मैं बीमारी को छोड़ दूं, तो मैं स्वस्थ कैसे होऊंगा?
संस्कृति इतने दिनों से है, मनुष्य संस्कृत हुआ? परंपराएं इतने दिनों
से हैं, मनुष्य के जीवन में कौन सी सभ्यता आ गई है? मनुष्य के जीवन में क्या अवतरित हो गया है? इतने हजारों साल से बातें सिखाई गई हैं, आदमी वहीं के वहीं है। आदमी में कौन सा बुनियादी भेद पड़ गया है? आदमी की चोरी बदल गई? आदमी की बेईमानी बदल गई? आदमी की अनैतिकता बदल गई? क्या बदल गया है? कौन सी बात बदल गई है? आदमी वही का वही है, आदमी में कोई बुनियादी फर्क नहीं पड़ गया।
और मैं आपसे कहना चाहता हूं, यह फर्क पड़ेगा भी नहीं, क्योंकि जिस चीज
को हम इलाज समझ रहे हैं, वह बीमारी का कारण है। पुराने संस्कारों के कारण आदमी का जीवन नहीं बदलता, आदमी का जीवन बदलता है जीवंत चेतना के विकसित होने से। संस्कारों से चेतना क्षीण होती है, दबती है। जैसे दर्पण पर कोई धूल जमा दे, तो धूल से दर्पण निखरता नहीं, दब जाता है, ओझल हो जाता है, फिर उसमें प्रतिबिंब बनने बंद हो जाते हैं। धूल दर्पण को सजाती नहीं है, मिटाती है। धूल संस्कार करती है उसके ऊपर। लेकिन हम सारी धूल को झाड़ दें, दर्पण अकेला रह जाए, तो दर्पण प्रतिबिंब पकड़ने में समर्थ हो जाता है, स्वच्छ हो जाता है।
मनुष्य की चेतना पर संस्कार जितने शून्य हो जाएं, चेतना का दर्पण उतना ताजा, उतना जीवंत, उतना नया हो जाता है, उतनी फ्रेशनेस चेतना को उपलब्ध होती है। चेतना पर संस्कारों की कोई भी जरूरत नहीं है। चेतना पर तो जितने संस्कार शून्य हों, चेतना जितनी अनकंडीशंड हो, उतनी ही चेतना जीवंत, ताजी और नई होती है।
लेकिन इसका क्या मतलब? क्या मैं यह कह रहा हूं कि मनुष्य की स्मृति मिटा दी जाए?
नहीं; मनुष्य की स्मृति अलग बात है और मनुष्य की चेतना का संस्कारों में दबा होना अलग बात है। स्मृति चेतना का हिस्सा नहीं है। जैसे आप अपने घर में घर के कूड़े-कबाड़ को इकट्ठा करने के लिए एक स्टोर रूम बना रखते हैं। वहां सब घर में जो व्यर्थ है, इकट्ठा कर देते हैं। कभी जरूरत होती है तो निकाल लाते हैं, अन्यथा उसे बंद रखते हैं। न मेहमानों को उसके भीतर ले जाते हैं, न घर में आए लोगों को उस स्टोर रूम में घुमाते हैं। स्टोर रूम को इस भांति रखते हैं कि किसी को पता ही न चले कि स्टोर रूम भी है। वह बैठकघर में नहीं स्टोर रूम का सामान आप रखे होते हैं।
स्मृति स्टोर रूम है चेतना का। चेतना ने जो जान लिया, उसे स्मृति के स्टोर रूम में इकट्ठा कर देती है। जरूरत होगी तो निकाल लेगी, नहीं जरूरत होगी तो स्टोर रूम बंद पड़ा रहेगा। स्मृति चेतना पर छानी नहीं चाहिए। स्मृति चेतना का स्टोर रूम है। जो जान लिया गया, उसे छोड़ दिया गया है। कभी जरूरत होगी, उसे हम निकाल लेंगे।

जब मैं यह कहता हूं कि अतीत को भूल जाइए, उसका मतलब यह नहीं है कि अभी
आप यहां से उठ कर जाएंगे तो आप भूल जाएं कि आपका घर कहां है, क्योंकि वह तो अतीत हो गया! कि आप रास्ते पर भूल जाएं कि बाएं चलना है कि दाएं चलना है! यह मैं नहीं कह रहा हूं। ये आपकी स्मृति के हिस्से हैं। ये आपके एक कोने में मन के रखे हुए हैं। चेतना को जरूरत होती है, इन्हें निकाल लेती है। लेकिन ये चेतना के ऊपर छाए हुए नहीं रहते। ये चेतना के ऊपर चेतना को ढांके हुए नहीं रहते। चेतना मुक्त है निरंतर। और वही चेतना स्मृति का ठीक उपयोग कर सकती है, जो स्मृति से मुक्त हो। जितनी स्मृति से बंधी होगी, उतनी ही स्मृति का ठीक उपयोग करना मुश्किल हो जाता है।
आपको याद होगा, एक मित्र दिखाई पड़ता है, आपको ख्याल आता है, चेहरा पहचाना हुआ है, नाम भी मालूम है, लेकिन भूल गया। लगता है कि मुझे मालूम है कहीं, लेकिन स्मरण नहीं आ रहा है। आप पूरी कोशिश करते हैं याद करने की और याद नहीं आता। फिर आप छोड़ देते हैं ख्याल। आप बैठ कर चाय पीने लगते हैं या अपनी बगिया में काम करने लगते हैं। अचानक आप पाते हैं आधा घड़ी बाद, वह नाम चेतना में उठ कर ऊपर आ गया है, आपको ख्याल आ गया है उस आदमी का नाम क्या है। क्या हुआ? जब आप याद करने की कोशिश कर रहे थे तब याद नहीं आया और जब आपने याद करने की कोशिश छोड़ दी तब याद आया। यह क्यों हुआ?
जब आप याद करने की कोशिश कर रहे थे, तब स्मृति चेतना से जकड़ गई। जब आप याद करने की कोशिश नहीं कर रहे थे, चेतना मुक्त हो गई। मुक्त चेतना स्मृति का ज्यादा उपयोग कर पाती है, बंधी हुई चेतना की बजाय। तो जितना व्यक्ति की चेतना स्मृतियों से, संस्कारों से मुक्त होगी, उतना ही सम्यक उपयोग, जीवन ने जो जाना है, उसका किया जा सकता है। लेकिन उसके साथ बंधने की कोई भी आवश्यकता नहीं है।
एक छोटे बच्चे को हम स्कूल में सिखाते हैंः ग गणेश का। उसे सिखाते हैंः ग गणेश का। एक-एक शब्द सिखाते हैं--कौन किसका। अगर बड़ा होकर भी वह जब पढ़े तो पढ़े कि ग गणेश का, तो हम कहेंगे, यह बच्चा पागल है। भूल जाना था यह कि ग गणेश का। गणेश भूल जाना था, ग रह जाना था। गणेश को भी अगर पकड़ लिया जाए, तब तो बहुत मुश्किल हो जाएगा। जो तरकीब हमने ग सिखाने के लिए ईजाद की थी, वही तरकीब ग को नष्ट करने का कारण हो जाएगी।
स्मृतियां, संस्कार उपयोगिताएं हैं, उनकी यूटिलिटी है, लेकिन वे चेतना के बंधन नहीं बन जाने चाहिए। चेतना उनसे जकड़ नहीं जानी चाहिए। चेतना हमेशा मुक्त होनी चाहिए। जितनी चेतना मुक्त होगी, उतने प्रतिक्षण जीवन से आते नये संस्कारों को अंगीकार कर सकेगी; जितनी मुक्त होगी, उतना अंगीकार कर सकेगी। और अंगीकार करके अगर उनसे जकड़ जाएगी, तो आगे के द्वार फिर बंद हो जाएंगे।
संस्कारों को आने दें और स्मृति के कोषगृह में जाने दें और चेतना को मुक्त रहने दें। तो चेतना निरंतर जानने को मुक्त है। द्वार खुला है, ओपन है, जीवन जो भी लाएगा, हम उसे स्वीकार करने को हमेशा तैयार हैं। अन्यथा फिर हम जकड़ जाते हैं।
एक घटना मुझे स्मरण आती है। पेरिस महानगरी का एक मेयर न्यूयार्क गया था। उसे जाकर स्वतंत्रता की प्रतिमा, न्यूयार्क के मेयर ने उसे दिखाई। स्वतंत्रता की प्रतिमा जब वह देख रहा था, तब न्यूयार्क के मेयर ने उससे पूछा कि मित्र, आपको इस प्रतिमा को देख कर किस बात की याद आती है? उस फ्रेंच मेयर ने कहा, आई एम रिमाइंडेड ऑफ सेक्स। उसने कहा, मुझे सिर्फ सेक्स की याद आती है। वह न्यूयार्क का मेयर थोड़ा हैरान हुआ। उसने कहा, मुझे कामवासना की याद आती है इस मूर्ति को देख कर। फिर उसने सोचा न्यूयार्क के मेयर ने, हो भी सकता है, स्त्री की प्रतिमा है, स्मरण आ सकता है।
फिर उसे वह यू.एन.ओ. की बिल्डिंग दिखाने ले गया और उसने उससे फिर पूछा
कि आपको इस भवन को देख कर किस बात की याद आती है? उसने कहा, सेक्स। वह तो बहुत हैरान हुआ! उसने फिर कहा कि मुझे कामवासना की याद आती है। उस न्यूयार्क के मेयर ने कहा कि अब तो मेरे बरदाश्त के बाहर है। इस भवन को देख कर आपको सेक्स की याद आती है? उस फ्रेंच मेयर ने कहा, एवरी थिंग रिमाइंड्स

मी ऑफ सेक्स, बिकाज आई एम ए फालोअर ऑफ सिगमंड फ्रायड। मुझे तो हर चीज से सेक्स की याद आती है, क्योंकि मैं सिगमंड फ्रायड का अनुयायी हूं। मुझे तो हर चीज में बस एक ही चीज की याद आती है।
एक सिद्धांत ने उसकी चेतना को जकड़ लिया। अब हर चीज को देखता है, तो वही सिद्धांत बीच में खड़ा हो जाता है। हर चीज को देखता है तो वही! वह फालोअर है किसी का। कोई संस्कार उसने जोर से पकड़ लिया, चेतना पर एक संस्कार छा गया। हमें क्रोध आएगा उस आदमी पर, हमें हैरानी होगी। लेकिन गीता से जो पकड़ जाता है, उसे हर चीज में गीता की ही याद आती है, तब हमें हैरानी नहीं होती। जो आदमी रामायण से जकड़ जाता है, उसे जीवन का कोई भी मसला हो, रामायण की चौपाई फौरन याद आती है, तब हमें ख्याल नहीं आता कि यह आदमी जकड़ गया। जो आदमी मार्क्स से जकड़ जाता है, उसे कुछ भी बात हो जाए, उससे कम्युनिज्म निकलता हुआ मालूम होता है।
ये सारी चेतनाएं कंडीशंड हो गईं। ये किसी संस्कार से जकड़ गईं। इन्होंने किसी परंपरा को पकड़ लिया। अपनी स्वतंत्रता खो दी। और अब जीवन को जिस ढंग से भी वे देखेंगे, वह पुराना नक्श, वह पुरानी पकड़ हमेशा बीच में आ जाएगी। कोई चश्मा आंख पर हो गया, अब उससे ही वे देखेंगे। यह देखना दूषित देखना है, यह देखना दर्शन नहीं है, यह देखना अंधापन है।
एक आदमी बहुत दिन से गाय खरीदने की सोच रहा था। उसने बहुत पैसे इकट्ठे किए और फिर एक गाय खरीद लाया। लेकिन वह बहुत गरीब आदमी था। जहां से गाय खरीद कर लाया था, वह राजमहलों की गाय थी। उसे अच्छे से अच्छा घास खाने को मिलता था। उस गरीब के पास तो सूखा भूसा था। उसके पास हरी घास नहीं थी। उसने गाय के सामने रखा। गाय ने खाने से इनकार कर दिया। गाय को तो हरी घास खाने की आदत थी। सूखा भूसा भी भोजन हो सकता है, यह उसकी कल्पना के बाहर था। उसने देखा, वहां हरी घास नहीं है, उसने मुंह एक तरफ फेर लिया। एक दिन बीत गया, दो दिन बीत गया, वह गरीब आदमी तो घबड़ा गया। गाय तो बीमार पड़ने लगी। उसने गांव के एक फकीर से जाकर पूछा कि मैं क्या करूं? मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। मैं गरीब आदमी हूं, मैं राजमहल की गाय खरीद लाया। गरीब आदमी अक्सर ऐसी भूल में पड़ जाते हैं। राजमहलों की गायें खरीद लाते हैं, फिर पीछे पछताते हैं। मैं क्या करूं?
और उस फकीर ने कहा, तू एक काम कर। बाजार से जाकर हरे रंग का एक चश्मा खरीद ला और गाय को पहना दे।
उसने कहा, क्या गाय धोखा खा जाएगी?
उस फकीर ने कहा, आदमी धोखा खा जाता है, गाय का क्या है! बस चश्मा हरे रंग का खरीद ला। गाय कंडीशंड है। गाय को हरी घास ही भोजन मालूम पड़ती है, और कोई चीज भोजन नहीं मालूम पड़ती। हरी घास देखने की पकड़ है उसकी चेतना पर, हरी घास दिखाई पड़नी चाहिए, काम हो जाएगा।
वह आदमी--विश्वास तो नहीं हुआ, लेकिन मजबूरी थी--एक चश्मा खरीद लाया और गाय की आंख पर पहना दिया। और वह देख कर हैरान हुआ! गाय चश्मे के लगाते ही भूसे को चरना शुरू कर दी। अब उसको अपनी आंख से जो देखने की आदत थी वह दिखाई पड़ने लगा, हरी चीजें दिखाई पड़ने लगीं।
हम सब भी इसी तरह कंडीशंड हैं। अगर कुरान हमारे सामने कोई रख दे, तो गीता पढ़ने वाले को कुरान में कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता; सूखा भूसा दिखाई पड़ता है, हरी घास दिखाई नहीं पड़ती। लेकिन कोई विनोबा या कोई और कुरान में से वे पंक्तियां निकाल कर रख दे जो गीता में लिखी हुई हैं, फिर हरी घास दिखाई पड़नी शुरू हो जाती है, फिर दिखाई पड़नी शुरू हो जाती है कि ठीक बात है।
हमारी आंखें निर्णीत हो गई हैं। हमने द्वार बंद कर लिए हैं। हमारी प्रिज्युडिस, हमारा पक्षपात मजबूत और पक्का हो गया है। इसको हम परंपरा कहते हैं। और इस परंपरा से जो आदमी जकड़ा हुआ है, उसे सत्य का साक्षात कैसे हो सकता है? फिर वह इन्हीं कंकड़-पत्थरों में जीएगा, हीरे-जवाहरात उसे नहीं मिल सकते।

एक और मित्र ने पूछा है कि अगर हम परंपरा को छोड़ दें, तब तो सारा ज्ञान
ही छूट जाएगा।

ज्ञान परंपरा से न तो मिलता है और न छूट सकता है। परंपरा से ज्ञान मिलता होता, तो परंपरा के छोड़ने से ज्ञान छूट जाता। परंपरा से मिलते हैं केवल शब्द, कोरे और थोथे शब्द, और मिलता है अहंकार इस बात का कि मैं जानता हूं। ज्ञान नहीं मिलता।
आपने ईश्वर के संबंध में इतनी बातें सुनी हैं, क्या आपको ईश्वर का ज्ञान हो गया? ईश्वर के संबंध में कितनी किताबें पढ़ी हैं, ईश्वर का ज्ञान हो गया?
नहीं; शब्द इकट्ठे हो गए हैं। और कोई आपसे पूछेगा--ईश्वर को जानते हैं? तो शायद अहंकारवश यह कहना भी मुश्किल हो कि मैं नहीं जानता हूं। कहेंगेः हां, जानता हूं, ईश्वर है। अगर कोई कहे, ईश्वर नहीं है, तो विवाद करने को और झगड़ा करने को भी खड़े हो सकते हैं। और कभी नहीं पूछेंगे कि आप जानते क्या हैं? जानते हैं हम ईश्वर को?
बिल्कुल भी नहीं। जानने के तल पर हमारी कोई समझ नहीं है। लेकिन शब्द इकट्ठे हो गए हैं। और कोई भी आदमी यह बात मानने को राजी नहीं होना चाहता कि मैं नहीं जानता हूं। इसलिए हम उन बातों को भी हां भरते चले जाते हैं, जिन्हें हम नहीं जानते हैं--सिर्फ अहंकार के कारण। और इस तरह दुनिया में हजारों झूठ प्रचलित हो गए हैं। और बच्चों को हम बचपन से ही झूठ सिखाना शुरू कर देते हैं। जो हम नहीं जानते, वह भी बच्चों से कहते हैं कि हम जानते हैं। और उनको भी कहते हैं कि तुम भी मानो। मानने से धीरे-धीरे तुम भी जान लोगे।
मानने से कभी कोई जानता है? मानने से धीरे-धीरे यह भूल जाएगा कि मैं नहीं जानता हूं। जान नहीं सकेगा। मानने से शुरू करेगा, धीरे-धीरे भ्रम पैदा हो जाएगा कि मैं जानता हूं। फिर इनकार करना उसे मुश्किल हो जाएगा। दूसरे महायुद्ध में, किसी देश में सैनिकों की भर्ती हो रही थी। जल्दी- जल्दी सैनिक चाहिए थे। हर कोई भर्ती हो रहा था। एक आदमी सैनिक भर्ती के दफ्तर में गया, एक जवान आदमी। उसने फार्म भरा। जो अफसर उसे भर्ती करने को था, उसने पूछा--वह नौ-सेना का, जल-सेना का अधिकारी था और जल-सेना की भर्ती कर रहा था--उसने पूछा कि मित्र, तुम अब तक कौन सा काम करते रहे हो? उस आदमी ने कहा, मैं? उसने कहा, आई एम एन ऊगल-गूगल मेकर। कि मैं ऊगल-गूगल बनाने वाला आदमी हूं।
अब यह ऊगल-गूगल कभी उस अफसर ने जीवन में सुना भी नहीं था कि यह क्या चीज है! यह ईश्वर, आत्मा जैसा शब्द मालूम पड़ा। लेकिन अगर वह यह कहे कि मैं नहीं जानता ऊगल-गूगल क्या है, तो यह आदमी क्या सोचेगा? इतना बड़ा आफिसर, और जानता नहीं कि ऊगल-गूगल क्या है! उसने कहा, अच्छा-अच्छा, तो तुम ऊगल-गूगल बनाते हो। जल-सेना में तो जरूरत भी होती है ऐसे आदमियों की। उसने जल्दी से उसे फार्म दिया कि कहीं इसे पता न चल जाए कि मैं नहीं जानता हूं ऊगल-गूगल क्या होता है। उसने सोचा जरूर जल-सेना में कोई चीज होती होगी ऊगल-गूगल!
उस आदमी को उसने, जल-सेना का जो इंजीनियर था उस स्टाफ में, उसके पास भेजा। उसने भी पूछा, आप क्या करते हैं? उसने कहा, मैं ऊगल-गूगल बनाता हूं। उस आदमी ने कहा, जब बड़े आफिसर ने इसे भर्ती किया है, तो ऊगल-गूगल जरूर कोई चीज होती होगी। और मैं क्यों फंसूं कि कहूं कि मैं नहीं जानता। मैं हूं इंजीनियर, मुफ्त फंस जाऊंगा कि तुम इंजीनियर हो और तुम्हें यह भी पता नहीं कि ऊगल-गूगल क्या होता है? उसने कहा, अच्छा तो आप ऊगल-गूगल बनाते हैं। यह काम तो सीधे कैप्टेन के अंतर्गत आता है, आप कैप्टेन के पास चले जाइए।
वह आदमी कैप्टेन के पास पहुंच गया। उसने भी पूछा, आप क्या बनाते हैं? उसने कहा, मैं ऊगल-गूगल बनाता हूं। कैप्टेन ने कहा, दो आदमियों ने इसे भेज दिया है, उन्होंने इस बात को स्वीकार नहीं किया कि हम नहीं जानते हैं। मैं क्यों फंसूं? उसने कहा, अच्छा तो आप ऊगल-गूगल बनाते हैं। तो बाजार में जैसे ऊगल-गूगल बिकते हैं वैसे ही बनाते हैं कि कोई स्पेशल क्वालिटी बनाते हैं?

उस आदमी ने कहा कि मैं तो जरा अलग ही ढंग की चीज बनाता हूं।
कैप्टेन ने कहा, अच्छी बात है, तो आपके लिए क्या सामान की जरूरत होगी बनाने के लिए? क्योंकि जहाज में बड़ी जरूरत होती है ऊगल-गूगल की।
उसने कहा, मुझे छोटी सी वर्कशाप चाहिए। कुछ नहीं, एक छोटा कमरा चाहिए
और ताला चाहिए, ताकि मैं भीतर बैठ कर काम कर सकूं। और मेरा सीक्रेट किसी को पता न चल जाए, इसलिए दरवाजा बंद रहना चाहिए।
एक ऊगल-गूगल कितने दिन में बन जाता है? उस कैप्टेन ने पूछा।
उसने कहा, तीन दिन लगते हैं।
सामान क्या चाहिए?
उसने कहा, औजार मेरे पास हैं, सिर्फ टीन के कुछ चद्दर-पत्तर मुझे चाहिए, वह आप पहुंचा दें।
उसने कहा, आप शुरू करिए। ऊगल-गूगल हमने बहुत देखे हैं, लेकिन विशेष आप बनाते हैं, तो हम देखना चाहते हैं।
अब वह मन में प्राण चिंतित हो रहा है, यह ऊगल-गूगल बला क्या है? लेकिन कोई इस बात को मानने को राजी नहीं होना चाहता कि मैं नहीं जानता हूं। उस आदमी को एक केबिन दे दी गई, ताला डाल दिया गया। वह भीतर तीन दिन तक ठोंक-पीट करता रहा। बड़ी आवाजें आती रहीं। पूरे जहाज पर खबर फैल गई, ऊगल-गूगल! लेकिन सब अपने मन में सोचते थे कि यह ऊगल-गूगल क्या है?
यह ईश्वर क्या है? आत्मा क्या है? मोक्ष क्या है?
लेकिन कौन कहे कि ऊगल-गूगल क्या है? क्योंकि जो पूछेगा, वही समझा जाएगा अज्ञानी। बाकी लोग हंसेंगे। बाकी लोग सब ऐसा मालूम पड़ रहे हैं कि जानते हैं। कौन फंसे? सब कहते थे, भई, ऊगल-गूगल बन रहा है, तीन दिन के भीतर बन जाएगा। कोई पूछता नहीं था, यह ऊगल-गूगल है क्या? तीन दिन में तो सारे जहाज में एक ही हवा हो गई। हर आदमी उत्सुक हो गया। लोगों की नींद खो गई कि बला क्या है यह ऊगल-गूगल?
तीसरा दिन आ गया। सारे लोग केबिन के आस-पास इकट्ठे हो गए। अंदर ठोंक-पीट चल रही है। फिर कैप्टेन की भी हिम्मत टूट गई, उसने जाकर दरवाजा ठोंका और कहा, भई, तीन दिन हो गए, अगर बन गया हो तो बाहर आओ। उसने कहा, पांच मिनट और। चीज तैयार हुई जा रही है। फिर आखिरी चोटें हुईं। सारी भीड़ इकट्ठी हो गई है। कोई किसी से नहीं कह रहा कि ऊगल-गूगल क्या है? सब जानना चाहते हैं कि क्या है? किसी को पता नहीं है।
फिर दरवाजा खुला, वह आदमी बाहर निकला। सब उसकी तरफ देखने लगे। कैप्टेन ने पूछा, कहां है ऊगल-गूगल? उसने अपने पीठ के पीछे से एक चीज निकाली, जैसे कोई टीन के डिब्बे को सब तरफ से पीटा गया हो, इस तरह की शक्ल थी उसकी। उसने कहा, यह ऊगल-गूगल है। अब सब बड़े हैरान हुए! उन्होंने कहा, इसका उपयोग क्या है? यह किस काम में आता है? उसने कहा, आइए मेरे साथ। वह जाकर जहाज के किनारे ले गया और उसने अपने ऊगल-गूगल को पानी में फेंका। जब वह डब्बा पानी में डूबने लगा, तो उससे आवाज निकलीः ऊगलऽऽऽ गूगलऽऽऽ!
यह ऊगल-गूगल था! लेकिन एक भी आदमी उस जहाज पर यह नहीं कह सका कि यह क्या बेवकूफी है? किस चीज का नाम है? क्योंकि हमारे भीतर यह अहंकार बड़ा प्रबल है कि हम जानते हैं।
एक आदमी ईश्वर के बाबत बातें करता रहता है, आत्मा के बाबत, पुनर्जन्म
के बाबत, मृत्यु के बाद--मोक्ष, नरक और स्वर्ग। और लोग बैठे सुनते रहते हैं, जैसे कि वह आदमी किन्हीं चीजों की बात कर रहा हो जिनको जानता है। सुनने वाले भी ऐसे सुनते हैं कि हम भी जानते हैं। बोलने वाला भी शब्द जानता है, सुनने वाले भी शब्द जानते हैं। उनके शब्द मेल खाते हैं, परिचित मालूम होते हैं। वे दोनों राजी मालूम होते हैं कि बिल्कुल ठीक है, बिल्कुल ठीक है। बिल्कुल ठीक है, यह बात बिल्कुल सही कही जा रही है।
दुनिया में एक गहरा डिसेप्शन, एक प्रवंचना, एक धोखा चल रहा है--शब्दों
के नाम पर ज्ञान का। परंपरा से कोई ज्ञान उपलब्ध नहीं होता, केवल शब्द उपलब्ध होते हैं। और शब्दों को हम ज्ञान समझ कर बैठ जाते हैं। इसलिए जब मैं कहता हूं, छोड़ दें, तो डर लगता है, हमारा ज्ञान छूट जाएगा।

ज्ञान है ही नहीं। क्योंकि स्मरण रखें, अगर ज्ञान है, तो इस दुनिया में कोई भी उसे छीन नहीं सकता है। उसके छूटने का कोई उपाय नहीं है। ज्ञान से आप छूट नहीं सकते हैं। जो छूट सकता है वह अज्ञान है। जो नहीं छूट सकता है उसका नाम ज्ञान है। ज्ञान है स्वभाव, उसे आपसे अलग नहीं किया जा सकता। अज्ञान आपसे अलग किया जा सकता है।
तो अगर किसी ज्ञान के छूटने का डर हो, तो फौरन समझ लेना कि छूटने का डर
इस बात की खबर देता है कि वह ज्ञान नहीं है। जो चीज छूट सकती है, वह ज्ञान नहीं हो सकती।
आपके पास कोई ऐसा ज्ञान है, जिसके छूटने का डर पैदा नहीं होता हो? धर्मग्रंथ कहते हैं, विरोधी की बात मत सुनना, कान बंद कर लेना। क्योंकि उसकी बात सुनने से ज्ञान छूट जाता है। ईश्वर विश्वासी कहते हैं, नास्तिक की बातें मत सुनना, बातें सुनने से विश्वास डिग जाता है। यहां तक मजे की बातें हैं, हिंदुस्तान में--हिंदुस्तान के बाहर भी--हिंदुस्तान में जैनों और हिंदुओं के बीच पुराने विवाद रहे सिद्धांतों के, शब्दों के, परंपराओं के। तो हिंदू ग्रंथों में लिखा हुआ है कि अगर कोई पागल हाथी भी किसी हिंदू के पीछे दौड़ रहा हो और जैन मंदिर आ जाए, तो जैन मंदिर में शरण मत लेना; पागल हाथी के पैर के नीचे दब कर मर जाना बेहतर है, लेकिन जैन मंदिर में शरण मत लेना, वह ज्यादा बड़ा पाप है। क्योंकि वहां ऐसी बातें सुनाई पड़ सकती हैं कि तुम्हारा सारा ज्ञान गड़बड़ हो जाए।
ठीक यही बात हिंदुओं के ग्रंथ में भी लिखी है, ठीक यही बात जैनों के ग्रंथ में भी लिखी है। जैनों के ग्रंथ भी यही कहते हैं कि हिंदू मंदिर में शरण मत लेना, पागल हाथी के पैर के नीचे दब कर मर जाना।
दुनिया भर के धर्म यह कहते हैं, दूसरे की बात मत सुनना, दूसरे की किताब
मत पढ़ना, दूसरे से बचना, कहीं तुम्हारा ज्ञान गड़बड़ न हो जाए! और कोई भी यह नहीं पूछता कि जो चीज गड़बड़ हो सकती है, उसे ज्ञान कहने का कोई भी कारण है? जो चीज डगमगा सकती है, उसे भी ज्ञान मानने की कोई वजह है?
असल में, वह ज्ञान ही नहीं है, केवल शब्द हैं। और विपरीत शब्दों से शब्द कट सकते हैं। वह ज्ञान नहीं है, केवल आर्ग्युमेंट है, केवल तर्क है। और विपरीत तर्क से तर्क कट सकते हैं। वह ज्ञान नहीं है, केवल परंपरा है। और भिन्न परंपरा से दूसरी परंपरा कट सकती है। परंपरा परंपरा को काट सकती है, शब्द शब्द को काट सकते हैं, तर्क तर्क को काट सकते हैं। लेकिन ज्ञान को कोई भी नहीं काट सकता है। ज्ञान अकाट्य है। जब आप कुछ जानते हैं वस्तुतः, तो इस जगत में कुछ भी उसे नहीं काट सकता है। ज्ञान सब कुछ काट देता है, लेकिन ज्ञान स्वयं अकाट्य है। और अगर ज्ञान भी कटता हो, तो दो कौड़ी मूल्य का है। उसे सम्हाल रखने की कोई भी जरूरत नहीं।
ज्ञान नहीं नष्ट हो जाएगा, शब्द नष्ट हो जाएंगे। और शब्द नष्ट हो जाएं, तो ज्ञान के जन्म की संभावना शुरू होती है। जितना निःशब्द मन हो, शब्दों पर जितनी पकड़ कम हो, उतना ही मन शांत, शून्य में प्रवेश करता है। और उस शून्य से उसका जन्म हो सकता है, जिसे हम ज्ञान कहते हैं। ज्ञान के लिए शब्दों से भरा हुआ मन नहीं, निःशब्द चेतना चाहिए। ज्ञान के लिए शांत और मौन मन चाहिए, सायलेंट माइंड चाहिए। इतना चुप कि कोई शब्द न हो। जैसे अंधेरी रात में घनी चुप्पी है, किसी जंगल में मौन है--ऐसा मौन, ऐसी शांति जब भीतर हो, तब, तब उस तरफ हमारे पैर बढ़ते हैं, जो ज्ञान का मंदिर है।
लेकिन हम शब्दों को इकट्ठा करके सोचते हैं कि हमने ज्ञान पा लिया है। इससे बड़ी भूल और कुछ भी नहीं हो सकती है। शब्दों से आज तक ज्ञान नहीं मिला और न मिल सकता है। शब्द केवल संकेत हैं। शब्द केवल संकेत हैं, संकेतों से कोई ज्ञान नहीं मिलता। ज्ञान तो मिलता है अनुभूति से, एक्सपीरिएंस से। और अनुभूति बड़ी और बात है।
एक आदमी तैरने के संबंध में सारे शास्त्र पढ़ डाले। और उसे ले जाकर आप अगर भाषण करवाना हो, तो वह तैरने के बाबत भाषण कर सके। अगर पी एचड़ी. की थीसिस लिखवानी हो, तो वह तैरने के संबंध में थीसिस लिख सके। अगर विवाद करवाना हो, तो तैरने के संबंध में विवाद कर सके। लेकिन भूल कर भी उसे समुद्र में धक्का मत दे देना। उसका पढ़ा हुआ ज्ञान तैरने के काम नहीं आ

सकता है। उसके तैरने के संबंध में दिए गए व्याख्यान और थीसिस तैरने की जगह नहीं ले सकती। वह आदमी डूबने लगेगा और चिल्लाने लगेगा कि मुझे बचाओ, मैं तैरना नहीं जानता हूं!
वह तैरना जानता है या नहीं जानता, यह तो सागर में उतरने पर पता चलेगा।
यह कोई शब्दों से पता नहीं चल सकता है। लेकिन जीवन के संबंध में हमने शब्द सीख रखे हैं और उन शब्दों से ही हम समझते हैं कि हम जीवन का सागर पार हो जाएंगे।
मैं आपसे कहता हूं, एक तैरना न जानने वाला हो सकता है नदी पार भी हो जाए, लेकिन जीवन के सत्य को न जानने वाला जीवन के सागर को पार नहीं हो सकता।
लेकिन यह धोखा चल जाता है। यह धोखा इसलिए चल जाता है कि हमारे आस-पास
भी शब्दों को जानने वाले लोग ही होते हैं। यह धोखा इसलिए चल जाता है कि जो शब्द हम जानते हैं, उन्हीं को हमारा पड़ोसी भी जानता है। हम दोनों म्युचुअल डिसेप्शन में सहयोगी हो जाते हैं, पारस्परिक धोखा पूरा हो जाता है। इसीलिए तो हिंदू हिंदू के घर में शादी करता है, मुसलमान मुसलमान के घर में, जैन जैन के घर में, पारसी पारसी के घर में। क्यों? क्योंकि वह जो पारस्परिक धोखा चल रहा है ज्ञान का, वह एक से शब्द जानने वालों में ठीक रहता है। अन्य-अन्य शब्द जानने वालों में बड़ी गड़बड़ पैदा हो जाती है। वह जो धोखा चल रहा है पारस्परिक, वह अपनी ही कम्युनिटी के भीतर आसान है। दूसरे के समुदाय के भीतर जाने पर बहुत मुश्किल हो जाएगी।
इसलिए दुनिया भर में लोगों ने अपने-अपने घेरे बना रखे हैं। शब्दों के घेरे हैं वे। जिन शब्दों से मैं परिचित हूं, उन्हीं से आप परिचित हैं, तो हमारे बीच दोस्ती बन जाती है, मित्रता हो जाती है, प्रेम हो जाता है, विवाह हो सकता है, हम एक-दूसरे के सुख-दुख में सम्मिलित हो सकते हैं, क्योंकि हम दोनों एक पारस्परिक धोखे में सम्मिलित हैं। लेकिन दूसरे शब्दों वाला आदमी कठिनाई खड़ी कर देता है, क्योंकि उसकी मौजूदगी मेरे ज्ञान पर शक हो जाती है; मेरी मौजूदगी उसके ज्ञान पर शक हो जाती है। हम दोनों सही कैसे हो सकते हैं? कोई एक ही सही हो सकता है।
इस धोखे के कारण ही दुनिया में सेक्ट पैदा हुए, संप्रदाय पैदा हुए। संप्रदाय शब्दों के पारस्परिक धोखे के लिए पैदा किए गए हैं, अन्यथा उनकी कोई भी जरूरत नहीं है। और शब्द और परंपराएं अगर आदमी छोड़ दे और शांत और निःशब्द में प्रवेश करे, तो दुनिया में कोई संप्रदाय नहीं होगा। दुनिया में धर्म होगा, लेकिन संप्रदाय नहीं होंगे। दुनिया में ज्ञान होगा, लेकिन परंपराओं के थोथे घेरे नहीं होंगे। मनुष्यता होगी, लेकिन मनुष्यता को बांटने वाली दीवालें नहीं होंगी।
एक बात, और अपनी चर्चा मैं पूरी करूंगा।
शब्दों के अतिरिक्त मनुष्य और मनुष्य के बीच और कोई दीवाल नहीं है। परंपराओं के अतिरिक्त मनुष्य और मनुष्य को तोड़ने वाला कोई फासला, कोई दूरी नहीं है। संस्कारों और जिसको हम संस्कृति कहते हैं उसके अतिरिक्त एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य का शत्रु बनाने वाला कोई भी नहीं है। यह सारा जगत मित्रों का एक देश हो सकता है और यह सारी पृथ्वी प्रेम करने वाले लोगों का एक समाज हो सकती है। यह सारी पृथ्वी एक परिवार हो सकती है, अगर आदमी इस बात के लिए तैयार हो जाए कि वह शब्दों के आग्रह को छोड़ देगा; परंपराओं के आग्रह को छोड़ देगा; मृत के आग्रह को छोड़ देगा; जो जीवित है, जो जीवंत है, उसे देखेगा और पहचानेगा, तो मनुष्य के जीवन में, सारी मनुष्यता के जीवन में एक आमूल क्रांति संभव हो सकती है।
ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं। आने वाली चर्चाओं में इस संबंध में और
भी स्पष्ट करने की कोशिश करूंगा। आपने मेरी बातों को... इतने शब्द आपके भीतर घिरे हैं, इतनी परंपरा आपके भीतर बैठी है, इतने पक्षपात आपके हैं, फिर भी मेरी बातों को इतनी शांति से आप सुनते हैं, इससे बहुत आशा बंधती है। क्योंकि जो अंधा होता है, जो पक्षपाती होता है, वह तो सुनने को भी राजी नहीं होता। लेकिन ऐसा न हो कि आपके कान सुनते हों और आपकी चेतना तक ये बातें न पहुंच पाएं। कान सुन सकते हैं और चेतना बंद हो सकती है। चेतना बंद

है या खुली, उसका तो हमें कोई पता नहीं चलता। कान जरूर खुले हुए दिखाई पड़ते हैं।
परमात्मा करे, जैसे कान खुले हैं, वैसे ही चेतना भी खुली हो। नये के लिए, अज्ञात के लिए, अपरिचित के लिए, हमारे मन में विरोध, पक्ष, बंधी हुई धारणा न हो, तो जीवन निश्चित ही रोज-रोज नये-नये आयाम में ऊपर उठ सकता है। मेरी बातों को सुनने के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

माटी कहै कुम्हार सूं
आठवां प्रवचन

विस्मय का भाव

मेरे प्रिय आत्मन्!
मनुष्य-जाति के, मनुष्य-चेतना के भंडार से कौन सा रत्न खो गया है, अगर मैं यह अपने से पूछता हूं, तो मुझे ऐसा नहीं मालूम होता कि नीति खो गई हो, धर्म खो गया हो, दर्शन या फिलासफी खो गई हो। न तो मनुष्य के जीवन से नीति खो गई है, आचरण खो गया है, न धर्म खो गया है, न दर्शन खो गया है। क्योंकि आज से हजारों वर्ष पहले मनुष्य के चित्त की जैसी अनैतिक दशा थी, ठीक वैसी ही दशा आज भी है। लोग सोचते हैं कि शायद पहले के लोग बहुत नैतिक और बहुत आचारवान थे, तो एकदम सौ प्रतिशत गलत सोचते होंगे। अगर बुद्ध और महावीर के समय के लोग नीतिवान और आचारवान रहे हों, तो बुद्ध और महावीर की शिक्षाओं की कोई भी जरूरत नहीं हो सकती थी।
बुद्ध लोगों को समझा रहे हैं कि चोरी मत करो, झूठ मत बोलो, बेईमानी मत करो। ये बातें किन लोगों को समझाई जा रही हैं? महावीर लोगों को समझा रहे हैं कि हिंसा मत करो, दूसरों को दुख मत दो, दूसरों को सताओ मत। ये बातें किन लोगों को समझाई जा रही हैं? अगर लोग अहिंसक थे और आचरणवान थे, तो ये शिक्षाएं व्यर्थ हैं।
दुनिया की पुरानी से पुरानी किताब भी उन्हीं शिक्षाओं को देती हुई मालूम पड़ती है, जिन शिक्षाओं की आज जरूरत है। इससे एक बात निर्णीत रूप से साफ होती है कि आदमी जैसा आज है, वैसा ही उन दिनों भी था।
दुनिया की जो सबसे पुरानी किताब चीन में उपलब्ध हुई है, कोई छह हजार वर्ष पुरानी, उस किताब की भूमिका में लिखा हुआ हैः आजकल के लोग एकदम पतित हो गए हैं, आचरणहीन हो गए हैं। पहले के लोग बहुत अच्छे थे।
ये पहले के लोग कब थे? यह छह हजार वर्ष पुरानी किताब की भूमिका में कहा गया है कि आज के लोग पतित हो गए हैं, पहले के लोग बहुत अच्छे थे। ये पहले के लोग कब थे?
ये पहले के लोग कभी भी नहीं थे। यह पहले के लोगों की सिर्फ कल्पना है। आदमी ऐसा ही था जैसा आज है। नैतिक रूप से मनुष्य का कोई पतन नहीं हो गया है।
लेकिन एक दूसरी दृष्टि से पतन हो गया है। और उसी संबंध में आज मुझे आपसे बात करनी है। और जब तक हम उस दूसरी बात को नहीं समझ लेंगे, तब तक मनुष्य-जाति का नैतिक कोई नवोत्थान भी नहीं हो सकता है। शायद आपको ख्याल भी न हो कि मनुष्य की चेतना से कौन सी चीज रोज-रोज खोती चली गई है।
मनुष्य की चेतना से आश्चर्य खोता चला गया है। मनुष्य की चेतना से विस्मय का भाव खोता चला गया है। मनुष्य की परंपराएं जितनी पुरानी और गहरी हो गई हैं, उतना ही मनुष्य को यह भ्रम पैदा हो गया है कि मैं जानता हूं। मनुष्य को ज्ञान का भ्रम पैदा हो गया है। और उस ज्ञान के भ्रम ने ही सारे जीवन को पतन के रास्ते पर धक्का दे दिया है।
ज्ञान के भ्रम से बड़ा और कोई भ्रम नहीं है। मनुष्य का अज्ञान सत्य है
और मनुष्य का ज्ञान बिल्कुल असत्य है। मनुष्य कुछ भी नहीं जानता है। लेकिन हजारों साल तक अगर कुछ बातों को दोहराया जाए, उनकी परंपराएं बनाई जाएं, परंपराओं पर श्रद्धा पैदा की जाए, तो यह धोखा पैदा होता है कि हम जानने लगे हैं।
अडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है। हिटलर राजनीतिज्ञ था, इसलिए कुछ सच्ची बातें बोल सकता था। धर्मगुरु इतनी सच्ची बातें भी नहीं बोलते हैं। अडोल्फ हिटलर ने लिखा है कि मैंने यह पाया अपने जीवन के अनुभव से कि किसी भी असत्य को अगर बार-बार दोहराया जाए, तो थोड़े दिनों में ही लोकमानस उसे सत्य मान लेता है। पुनरुक्ति, रिपीटीशन, एक ही बात को बार-बार दोहराया जाए, तो धीरे-धीरे लोग यह भूल जाते हैं कि दोहराई गई बात झूठ है या सच। वह धीरे-धीरे सच प्रतीत होने लगती है।

मनुष्य-जाति का ज्ञान इसी तरह की कपोल-कल्पित धारणाओं के ऊपर आधारित है, जिनको बार-बार दोहराया गया है और हम सबको यह ख्याल हो गया है कि हम जानते हैं।
सच्चाई बिल्कुल उलटी है। हम कुछ भी नहीं जानते हैं। रास्ते के किनारे पड़ा हुआ पत्थर भी अपरिचित है। लेकिन हम बैठ कर परमात्मा के संबंध में इस भांति बातें करते हैं जैसे कि हम परमात्मा को जानते हों। पड़ोसी भी अपरिचित है, लेकिन दूर आकाश में बैठा हुआ परमात्मा इतना परिचित मालूम होता है कि हम उस पर विवाद भी करते हैं, संघर्ष भी करते हैं, हत्याएं भी करते हैं, मकानों में आग भी लगाते हैं, बच्चों को मारते भी हैं।
कुछ बातें निरंतर दोहराई गई हैं और उन्होंने हमें यह भ्रम पैदा कर दिया है कि हम जानते हैं। मनुष्य के जीवन में इससे बड़ा और कोई खतरा नहीं है कि वह यह समझ ले कि मैं जान गया हूं। पांडित्य से बड़ा कोई पाप नहीं है। जान लेने के ख्याल से बड़ा, अज्ञान को रोक लेने वाला और कोई सहारा नहीं है। अज्ञान रुकता है इसलिए कि हमें ख्याल पैदा हो जाता है कि हम जानते हैं। जो भी आदमी इस तरह की बात करता हुआ मालूम पड़ता है कि मैं जानता हूं, लोग उससे ऊबते हैं और परेशान होते हैं। लेकिन कभी उन्हें ख्याल नहीं आता कि यह परेशानी और ऊब किस वजह से पैदा हो रही है? यह बोर्डम किस वजह से पैदा हो रही है?
जब भी कोई जानने का ख्याल पैदा करता है कि मैं जानता हूं, तब हमारी अंतरस्थ प्रकृति स्पष्टतः जानने लगती है कि कहीं कोई गड़बड़ हो रही है। आदमी का अज्ञान बहुत गहरा है।
मैंने सुना है, एक संध्या एक व्यक्ति एक अजनबी गांव में एक रास्ते पर
से एक मकान के सामने से गुजरता था। उस मकान का मालिक अपने घोड़े को मकान के भीतर ले जाने की भरसक कोशिश कर रहा था और घोड़ा मकान के भीतर जाने से इनकार कर रहा था। मकानों के भीतर घुसना आदमियों को अच्छा लगता है, उसके अतिरिक्त और किसी को भी अच्छा नहीं लगता। घोड़े भी इनकार करते हैं दीवालों के भीतर बंद होने से। वह घोड़ा भी इनकार कर रहा था। लेकिन वह आदमी उसे पूरी कोशिश कर रहा था।
उस अजनबी ने कहा कि क्या मैं कुछ सहायता कर सकता हूं?
उस मकान मालिक ने कहा, बड़ी कृपा होगी! मुझे घोड़े को बहुत जरूरी काम से भीतर ले जाना है। कृपा कर थोड़ी सहायता करें, मैं अकेला ही घर में हूं।
उस अजनबी आदमी ने घोड़े को भीतर पहुंचाने में सहायता दी। मकान के भीतर पहुंचते ही वह मकान मालिक उस घोड़े को दूसरी मंजिल पर सीढ़ियों पर चढ़ाने लगा। उस अजनबी ने कहा, आप यह क्या कर रहे हैं?
उसने कहा, आप थोड़ी और सहायता कर दें, मुझे ऊपर इस घोड़े को जरूरी ले जाना है।
अजनबी ने सोचा कि मुझे क्या प्रयोजन कि मैं पूछूं! किसी की निजी बातों में जाने की क्या जरूरत! उसने घोड़े को ऊपर पहुंचाने में भी सहायता दी। बहुत मुश्किल, बहुत परेशानी से घोड़े को ऊपर ले जा सके।
फिर उस मकान मालिक ने कहा, अब इसे बाथरूम में, स्नानगृह में और पहुंचा दें। उस आदमी ने फिर भी सोचा कि मैं क्यों किसी की निजी बातों में पूछूं! उसने उस घोड़े को भीतर धक्के देकर स्नानगृह में भी पहुंचा दिया। फिर तो उसे बाथ टब में भी खड़ा करवा लिया और इसके बाद उस घर मालिक ने खीसे से पिस्तौल निकाली और घोड़े को गोली मार दी।
अब अजनबी से बिना पूछे नहीं रहा जा सका। उसने कहा, क्षमा करें! अब तक मैंने बरदाश्त किया, लेकिन अब मैं पूछना चाहता हूं कि यह सब क्या हो रहा है? यह क्या पागलपन है? यह क्या कर रहे हैं?
उस घर मालिक ने कहा, आप पूछते हैं तो मैं बताए देता हूं। मेरे एक मित्र हैं, उनको ज्ञान की बीमारी हो गई है। ऐसी कोई बात ही नहीं है दुनिया में जिसको आप कहिए, और वे इस तरह मुस्कुराएंगे कि उनकी मुस्कुराहट से पता चलेगा कि वे पहले से ही जानते हैं। आप बात कह कर खतम करिए और वे कहेंगे, आई नो, मैं जानता हूं। उनके इस आई नो से हम सब घबड़ा गए हैं। आज वे मेरे घर आने वाले हैं।

उस मित्र ने पूछा, उनके घर आने से और घोड़े को ऊपर चढ़ा कर बाथरूम में ले जाकर गोली मारने से क्या संबंध?
तो उस आदमी ने कहा, संबंध यह है कि आज वे यहां खाना खाएंगे और खाने के बाद वे बाथरूम में हाथ-मुंह धोने जाएंगे। वहां से वे घबड़ाए हुए बाहर निकलेंगे और कहेंगे कि आश्चर्य! एक घोड़ा मरा हुआ बाथरूम में खड़ा है! तब मैं मुस्कुराऊंगा और कहूंगा, आई नो। मैं भी बदला चुकाना चाहता हूं--कि एक चीज ऐसी है, जिसने तुम्हें भी चकित कर दिया, तुम्हें भी आश्चर्य से भर दिया, और उसको मैं जानता हूं।
मनुष्य-जाति के ऊपर जिन लोगों ने भी यह ख्याल पैदा कर दिया है कि हम जानते हैं, उन लोगों ने मनुष्य की चेतना की हत्या कर दी। और समय आ गया है कि बगावत हो जाए। ज्ञानियों के प्रति बगावत का वक्त आ गया है। ये जो लोग कहते हैं कि हम जानते हैं, इनके प्रति विद्रोह हो जाना चाहिए। स्पष्ट हो जानी चाहिए यह बात कि जीवन का सत्य बहुत अज्ञात है, उसे शब्दों और शास्त्रों को पढ़ कर जाना नहीं जा सकता है। और यह भी स्पष्ट हो जाना चाहिए इस विद्रोह के साथ कि जो उस सत्य को जानता है, वह उसे शब्दों में कह नहीं पाता है। और यह भी स्पष्ट हो जाना चाहिए कि जो उस सत्य को जान लेता है, वह इतना मौन हो जाता है कि ज्ञान की घोषणा करने की संभावना नहीं रह जाती। अगर उससे कोई पूछेगा ही, तो वह कहेगा, मैं नहीं जानता हूं। अगर उसे कहना ही पड़ेगा, तो यही कहेगा, मैं नहीं जानता हूं, मैं हूं ही क्या? मैं क्या जान सकता हूं? जीवन है इतना अनंत, जीवन है इतना विस्तार, जीवन है इतना अनादि, जीवन के ओर-छोर नहीं, जीवन के सागर का कोई किनारा नहीं, मैं क्या जान सकता हूं! एक बूंद सागर को कैसे जान सकती है? क्या जान सकता हूं मैं इस विराट जगत को, इस जीवन को! नहीं- नहीं, मैं नहीं जानता हूं।
लेकिन हम, जो बिल्कुल भी नहीं जानते हैं, उन्हें मन के किसी कोने में
यह ख्याल बैठा ही रहता है कि हम जानते हैं। आश्चर्य की समाप्ति हो गई है और इसलिए ज्ञान के द्वार बंद हो गए हैं। जिस आदमी को यह ख्याल पैदा हो गया कि मैं जानता हूं, उसके आश्चर्य का अंत हो गया। उसे इस जगत में अब आश्चर्य से भर देने वाली कोई चीज न रही। वह सब कुछ जानता है, हर प्रश्न का उत्तर उसके पास है। वह आदमी मुर्दा है जिसके पास हर प्रश्न का उत्तर है। उसे जीने की अब कोई जरूरत भी नहीं रह गई, वह व्यर्थ ही जीए चला जा रहा है।
जीवन की गति तो नित-नूतन अज्ञात को जानने की ओर है। लेकिन अगर अज्ञात बचा ही न हो, तो अब आप और क्या जानिएगा? और जिनको ईश्वर भी ज्ञात हो गया है, उनके लिए अब अज्ञात क्या बचा होगा?
ईश्वर मनुष्य की कोई जानी हुई बात नहीं; ईश्वर का भाव अज्ञात का बोध है। वह जो अननोन है जीवन में, जहां हमारा जानना जाकर रुक जाता है, जहां हमारे विचार ठहर जाते हैं और गिर जाते हैं, जहां हमारे समझ के पंख कट जाते हैं, जहां हम खड़े रह जाते हैं--अवाक, चकित, मौन--कोई उत्तर हमारे पास नहीं रह जाता, वहां से ईश्वर शुरू होता है। ईश्वर मनुष्य के ज्ञान का कंटेंट नहीं है। ईश्वर मनुष्य के ज्ञान की विषय-वस्तु नहीं है। मनुष्य का ज्ञान जहां नहीं चलता, वहां ईश्वर का प्रारंभ है। इसलिए अगर कोई भी दावा करता हो कि मैं ईश्वर को जानता हूं, तो एक बात निश्चित समझ लेना कि यह आदमी तो कम से कम ईश्वर को नहीं जानता है। कम से कम इतना तो तय है कि यह आदमी नहीं जानता है।
लेकिन दुनिया के सभी संप्रदाय और सभी शास्त्र और दुनिया के सभी धर्मगुरु एक ही दावा करते हुए मालूम पड़ते हैं कि हम जानते हैं! न केवल वे यह दावा करते हैं कि हम जानते हैं, वे दावा यह भी करते हैं कि जो दूसरा जान रहा है वह गलत जान रहा है। मैं ठीक जान रहा हूं और शेष सारे लोग गलत जान रहे हैं। सारे दुनिया के धर्मों की बुनियाद तो इसी भ्रम पर खड़ी हुई है कि हम ठीक जानते हैं।
हिंदू कहता है, हिंदू ठीक जानते हैं, मुसलमान गलत जानते हैं। मुसलमान कहता है कि हम ठीक जानते हैं, जैन, ईसाई सब गलत जानते हैं। जैन भी यही कहता है। उन सब की बीमारियां एक जैसी हैं। उनकी बीमारी एक ही हैः इस बात का ख्याल कि हम जानते हैं।

जब तक दुनिया में यह ख्याल है कि हम जानते हैं, तब तक दुनिया से संप्रदायों को मिटाना असंभव है। क्योंकि असत्य शुरू हो गया, जहां से यह ख्याल पैदा हुआ। धार्मिक आदमी वह नहीं है जो कहता है, मैं जानता हूं। धार्मिक आदमी वह है जो अनुभव करता है कि मेरी जानने की सीमा बहुत जल्दी आ जाती है, बहुत जल्दी लिमिटेशंस शुरू हो जाते हैं। जो जानता है कि हाथ नहीं बढ़ाता हूं कि अज्ञात शुरू हो जाता है, आंख नहीं उठाता हूं कि अनंत के विस्तार शुरू हो जाते हैं, जहां कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता और कुछ भी नहीं जाना जा पाता है।
जीवन क्षुद्र नहीं है कि जाना जा सके। जो भी जाना जा सकता है वह क्षुद्र है। जो भी जानने का विषय बन सकता है, जो भी आब्जेक्ट बन सकता है, वह जानने वाले से छोटा हो जाता है। जिस बात को भी मैं जान सकता हूं, वह मुझसे छोटी हो जाती है। जीवन मुझसे बड़ा है। जीवन मुझसे बहुत बड़ा है! इस जीवन में मेरा कोई हिसाब नहीं, मेरी कोई मात्रा नहीं, मेरा कोई अनुपात नहीं। मैं कहां हूं!
लेकिन हम तो कहते हैं, हम जीवन को जानते हैं, आत्मा को जानते हैं, मोक्ष को जानते हैं। पागल हो गई है मनुष्य-जाति। जिस दिन से जानने का ख्याल पैदा हुआ, उसी दिन से मैडनेस शुरू हो गई। उसी दिन से पागलपन शुरू हो गया।
बच्चे स्वस्थ होते हैं, क्योंकि उन्हें जानने का भ्रम नहीं होता। बूढ़े पागल हो जाते हैं, क्योंकि जिंदगी उन्हें जानने का भ्रम पैदा कर देती है। काश! बूढ़े भी बच्चों जैसे हो सकें, तो उनके जीवन में धर्म की शुरुआत हो जाए। जिस दिन कोई बूढ़ा आदमी भी बच्चे जैसे आश्चर्य से खड़े होकर जीवन को देख पाता है, उसी दिन उसके जीवन में मंदिर के द्वार खुल जाते हैं।
जीसस क्राइस्ट एक बगीचे से निकलते थे। कुछ लोगों ने उन्हें वहां रोक लिया और उनसे बातें करने लगे। फिर उस गांव की भीड़ वहां इकट्ठी हो गई। फिर बहुत लोग आ गए और वे जीसस से पूछने लगे कि हम सुनते हैं कि तुम ईश्वर के राज्य की बातें करते हो। लेकिन कौन होगा तुम्हारे ईश्वर के राज्य का अधिकारी? कौन पा सकेगा ईश्वर को? कौन उपलब्ध हो सकेगा उस स्वर्ग के राज्य को?
तो जीसस क्राइस्ट ने उस भीड़ में एक नजर डाली। उस भीड़ में बड़े-बूढ़े थे,
उस भीड़ में गांव का धर्मगुरु था, उस भीड़ में गांव का शिक्षक था, उस भीड़ में गांव के बोलने वाले थे, उस भीड़ में गांव का राजा था। लेकिन जीसस की आंखें उन सबको पार कर गईं और फिर भीड़ के पीछे खेलते हुए एक बच्चे को उन्होंने उठा लिया। उस धूल में खेलते हुए बच्चे को ऊपर किया और उस भीड़ से कहा, जो इस बच्चे की भांति होंगे, वे स्वर्ग के राज्य में प्रवेश कर सकते हैं।
क्या मतलब? क्या बच्चे स्वर्ग के राज्य में प्रविष्ट हो जाते हैं? तब
तो जो बच्चे मर जाते होंगे, वे परमात्मा को उपलब्ध हो जाते होंगे। नहीं, जीसस क्राइस्ट का यह मतलब नहीं। जीसस क्राइस्ट यह नहीं कहते कि जो बच्चे हैं वे स्वर्ग में प्रवेश कर जाते हैं। उन्होंने कहा, जो बच्चों की भांति हैं, वे स्वर्ग में प्रवेश कर जाते हैं। जिनका शरीर तो बचपन को पार कर गया, लेकिन जिनके प्राण और आत्मा बचपन की निर्दोषता को, इनोसेंस को पार नहीं किए हैं।
नालेज, ज्ञान इनोसेंस की हत्या है, निर्दोषता की हत्या है। शायद इसीलिए तो वह अदभुत कहानी है कि ईश्वर ने अदम और ईव को बनाया और फिर उनसे कहा कि तुम इस सारे जंगल के वृक्षों के मालिक हो, इसके फल चखना, लेकिन इसमें एक नालेज ट्री, एक ज्ञान-वृक्ष भी है, उसके फल मत चखना, उसे भर छोड़ देना। एक ट्री ऑफ नालेज भी है, एक ज्ञान का वृक्ष भी है, उसको मत चखना, उसके फल मत चखना। बस जिस दिन तुम उसके फल चखोगे, उसी दिन आनंद के राज्य के बाहर हो जाओगे।
ज्ञान के फल चख लेना क्या पाप हो सकता है?
लेकिन ईश्वर से मालूम होता है थोड़ी सी भूल हो गई। ईश्वर से यह भूल हो गई, अगर वह अदम और ईव को यह न बताता कि तुम ज्ञान के वृक्ष के फल मत चखना, तो शायद वे कभी भी न चखते। उन्हें पता भी नहीं चलता कि वह ज्ञान का वृक्ष कहां

है। लेकिन बड़ी साइकोलाजिकल, बड़ी मनोवैज्ञानिक भूल हो गई। सभी मां-बाप से हो जाती है। ईश्वर भी कहते हैं पिता है, इससे हो गई।
पिताओं से यह भूल अक्सर हो जाती है। बच्चों से कहते हैंः सिगरेट मत पीना। और बच्चों को पहली दफा पता चलता है कि सिगरेट भी पीने जैसी कोई चीज है। बच्चों से कहते हैंः झूठ मत बोलना। और बच्चे हैरान हो जाते हैं कि यह झूठ क्या है, पता लगाना चाहिए।
बाप से जो भूल होती है वह ओरिजिनल फादर से भी हो गई, वे जो मौलिक पिता हैं उनसे भी हो गई। उन्होंने अदम और ईव से कहा कि ज्ञान के वृक्ष के फल मत चखना! और फिर उसी दिन से अदम और ईव की नींद हराम हो गई होगी। फिर उन्होंने ज्ञान के फल चख लिए। और ज्ञान का फल चखते ही वे स्वर्ग के राज्य के बाहर निकाल दिए गए।
आज तक कोई भी नहीं कह सकता कि बात क्या है इस कहानी में।
बात बहुत सीधी और साफ है। आदमी जब भी ज्ञान के भ्रम में पड़ता है और ज्ञान के फल को चख लेता है, तभी आश्चर्य और विस्मय समाप्त हो जाते हैं। आश्चर्य और विस्मय ही स्वर्ग का द्वार है।
डी.एच.लारेंस एक छोटे से बच्चे के साथ एक बगीचे में घूम रहा था। उस बच्चे ने लारेंस को पूछा कि देखते हैं, वृक्षों को देखते हैं, एकदम हरे हैं! और उस बच्चे ने पूछा, क्या मैं पूछ सकता हूं, व्हाई दि ट्रीज आर ग्रीन? ये वृक्ष हरे क्यों हैं?
लारेंस हंसने लगा, आगे बढ़ गया। उस बच्चे ने फिर पूछा, आप बताते नहीं हैं, ये वृक्ष हरे क्यों हैं? व्हाई दि ट्रीज आर ग्रीन?
डी.एच.लारेंस ने कहा, दि ट्रीज आर ग्रीन बिकाज दे आर ग्रीन। वृक्ष हरे हैं क्योंकि हरे हैं। और ज्यादा मुझसे मत पूछो, मुझे कुछ पता नहीं है।
उस बच्चे ने कहा, लेकिन मेरे पिता से मैं पूछता हूं तो वे तो हर चीज का उत्तर देते हैं, आप उत्तर नहीं देते? अपने स्कूल के गुरु से पूछता हूं, वे हर चीज का उत्तर देते हैं, आप उत्तर नहीं देते? चर्च के पादरी से पूछता हूं, वे हर चीज का उत्तर देते हैं, आप उत्तर नहीं देते?
डी.एच.लारेंस ने कहा, आदमी को आज तक, जीवन क्यों वैसा है जैसा कि है, इसका कोई उत्तर नहीं मिल सका है। और परमात्मा करे कि कभी भी न मिले। क्योंकि जिस दिन यह उत्तर मिल जाएगा उसी दिन जीवन व्यर्थ हो जाता है। जीवन की सारी मिस्ट्री, जीवन का सारा रहस्य इसलिए है कि जीवन अनुत्तर है, जीवन में कोई उत्तर नहीं है। जीवन प्रश्न है; उत्तर नहीं है। जीवन जिज्ञासा है; हल नहीं है, समाधान नहीं है। जीवन पूछता है, लेकिन प्रत्युत्तर नहीं पाता। यही जीवन का रहस्य है। और जीवन के रहस्य का अनुभव धर्म की पहली सीढ़ी है।
शास्त्र नहीं है धर्म की पहली सीढ़ी। न पढ़ने-लिखने से कोई धार्मिक होता है और न पढ़े-लिखे को आचरण में उतार लेने से कोई धार्मिक होता है। पढ़ने-लिखने से पंडित पैदा होता है और पढ़े-लिखे को आचरण में उतार लेने से अभिनेता पैदा होता है। पढ़े-लिखे को आचरण में उतार लेने से कोई धार्मिक नहीं होता। धार्मिक होता है व्यक्ति जीवन के साक्षात से। और जीवन का साक्षात होता है रहस्य के अनुभव में। वह जो मिस्टीरियस है, उसकी प्रतीति में। धर्म जीवन का काव्य है, वह जीवन की पोएट्री है। धर्म फिलासफी नहीं है। धर्म तत्वज्ञान नहीं है। तत्वज्ञान तो कोरे शब्दों का खेल है, जो कुछ होशियार लोग अपने घरों में बैठ कर करते रहते हैं। धर्म तो जीवन का अनुभव है--नग्न जीवन का। वह तो जीवन का काव्य है।
लेकिन जीवन के काव्य को कौन जान पाता है?
वे जो प्रेम करते हैं, वे जान सकते हैं। वे नहीं जो शास्त्र पढ़ते हैं। धर्म के रहस्य को कौन जान पाता है?
वे जो विस्मय से भर कर खड़े हो जाते हैं। वे नहीं जो ज्ञान के पोथे लेकर जीवन के पास जाते हैं। और धर्म के इस रहस्य को जानने के लिए न तो किन्हीं मंदिरों और मस्जिदों में जाने की जरूरत होती है, क्योंकि मंदिरों और मस्जिदों में कौन सा रहस्य है? आदमी ने जो भी बनाया है उसमें रहस्य नहीं हो सकता है। जिसका बनाने वाला आदमी ही है उसमें रहस्य क्या हो सकता है?

जिसे हम बनाते हैं उसे हम पूरी तरह जानते हैं। जिसे हमने नहीं बनाया है उसमें रहस्य हो सकता है। जिसे हम नहीं बना सकते हैं उसमें रहस्य हो सकता है।
यह जो चारों तरफ विराट जीवन प्रतिपल आंदोलित हो रहा है--फूल में, पत्तियों में, हवाओं में, वृक्षों में, आदमियों की आंखों में, शरीर के सौंदर्य में, आत्मा के गीतों में--सब तरफ यह जो जीवन प्रकट हो रहा है, क्या इसके रहस्य की अनुभूति हमें होती है? क्या हमारे प्राणों को यह रहस्य का तीर छेद जाता है और कहीं कोई कसक, कोई पीड़ा छूट जाती है?
अगर नहीं... और मैं आपसे कहूं, ज्ञानी के मन में कभी विस्मय का कोई तीर प्रविष्ट नहीं होता। उसके मन में कभी कोई प्रश्न इतनी ज्वलंतता से खड़ा नहीं होता कि जिसका उसे उत्तर न मिल सके। उत्तर उसके पास पहले से रेडीमेड होते हैं, पहले से तैयार होते हैं। हर चीज का उत्तर वह पहले ले आता है, फिर प्रश्न पूछता है। वह बड़ा होशियार है। वह उन बच्चों की भांति है, जो गणित का सवाल हल करने के पहले किताब उलट कर पीछे उत्तर देख लेते हैं। फिर गणित का सवाल हल करने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। लेकिन वे बच्चे गणित के राज को जानने से भी वंचित रह जाते हैं।
शास्त्रों को उलट कर जो शब्द सीख लेते हैं और उत्तर सीख लेते हैं-- ईश्वर है, आत्मा है, स्वर्ग है, मोक्ष है, ऐसा है, वैसा है--जो इन सारी हजारों साल से दोहराई गई बातों को चुपचाप स्वीकार करके उत्तर बना लेते हैं और फिर प्रश्न पूछते हैं। खूब धोखा देते हैं अपने को। उत्तर पहले से तैयार है और आप प्रश्न पूछ रहे हैं! आपको भलीभांति पता है कि उत्तर क्या निकलना है। और प्रश्न पूछ रहे हैं! प्रश्न झूठा है, थोथा है, बेईमानी का है। और तब इस ज्ञान के चक्कर में आप घूमते रहेंगे और सच में ज्ञान के द्वार कभी नहीं खुल सकेंगे।
ज्ञान के द्वार खोलने हों, तो अपने अज्ञान का पूरा अनुभव चाहिए। चाहिए अनुभव कि मैं नहीं जानता हूं। क्या यह अनुभव होता है कि हम नहीं जानते हैं? क्या यह अनुभव होता है? क्या जीवन यह अनुभव प्रकट नहीं कर देता कि हम नहीं जानते हैं?
अगर आंख खोल कर देखेंगे, तो इस अनुभव में हो जाने में देर नहीं लगेगी। क्या जानते हैं हम? क्या है हमारा जानना? हमने क्या जान लिया है?
एक आदमी जीवन भर जीता है, अस्सी वर्ष जीता है। मरते वक्त कोई उससे पूछे, उसने जीवन को जाना? तो वह मृत्यु को देख कर कंप रहा है। हाथ-पैर कंप रहे हैं, आंखें उसकी धूमिल हुई जाती हैं, प्राण उसके रो रहे हैं, वह चिल्ला रहा है कि मैं मर न जाऊं! वह रो रहा है, वह प्रार्थना कर रहा है। वह आदमी अस्सी साल जिंदा था। वह अभी भी मृत्यु से घबड़ा रहा है, यह इस बात का सबूत है कि उसने जीवन को नहीं जाना। क्योंकि जो जीवन को जान लेते हैं उनके लिए कोई मृत्यु नहीं बच रहती।
अस्सी साल जीए हम और जीवन को नहीं जान पाए, और हम क्या जानेंगे? एक आदमी किसी मकान में अस्सी साल रहे और उस मकान को न जान पाए। एक आदमी एक रास्ते से अस्सी साल तक गुजरे और उस रास्ते को न जान पाए। हम रोज श्वास के रास्ते पर घूमते हैं, यात्रा करते हैं। श्वास के रास्ते से, जब श्वास बाहर जाती है तो हम मृत्यु से जुड़ जाते हैं और जब श्वास भीतर जाती है तो हम जीवन से जुड़ जाते हैं। मृत्यु और जीवन के बीच अस्सी वर्ष एक आदमी डोलता है, प्रतिपल। मृत्यु कोई आकस्मिक घटना नहीं कि किसी दिन घट जाती है। मृत्यु जीवन का अनिवार्य अंग है। जीवन की रिदम है।
लहर उठती है सागर पर। जब उठती है तब और जब वापस गिरती है तब, वह जो उठना
है लहर का और वह जो गिर जाना है, वह एक ही लहर के दो हिस्से हैं। अगर उठना ही उठना हो तो भी लहर नहीं हो सकती, अगर गिरना ही गिरना हो तो भी लहर नहीं हो सकती। गिरने और उठने के बीच लहर प्रकट होती है।
श्वास बाहर जाती है, हम मौत से जुड़ जाते हैं। श्वास भीतर जाती है, हम जीवन समझने लगते हैं। जीवन और मृत्यु के बीच, जिसे हम जीवन कहते हैं वह लहर है, जो उठती है और गिरती है। अस्सी वर्ष, प्रतिपल हम इस जीवन और मृत्यु के बीच डोलते हैं। लेकिन क्या हम जीवन को जानते हैं? क्या हम मृत्यु को जानते

हैं? नहीं जानते। लेकिन हमने सिद्धांत खूब गढ़ रखे हैं, जो हमें यह भ्रम पैदा कर देते हैं कि हम सब जानते हैं। और आश्चर्य की बात यह है कि जीवन को जानने के लिए भी हमें किताबों में खोज करनी पड़ती है! जीवन को जानने के लिए भी किताबों में खोज करनी पड़ती है! जीवन--जिसमें हम खड़े हैं प्रतिपल! समुद्र की एक मछली पूछने लगे आपसे कि मुझे समुद्र के संबंध में कुछ जानना है, कोई किताब है जिसे मैं पढूं? तो हम कहेंगे, या तो यह मछली पागल हो गई, यह पूछती है समुद्र के संबंध में कोई किताब हो तो मैं पढूं। यह समुद्र में है, और अगर समुद्र में होकर भी समुद्र को नहीं पढ़ पाती है तो किस किताब को पढ़ कर समुद्र को जान पाएगी!
जीवन में हम घिरे हैं। वह जो विस्मयजनक है, वह जो मिस्टीरियस है, वह जो परमात्मा है, वह प्रतिपल हमें घेरे हुए है। सब तरफ से वही घेरे हुए है। और हम पूछ रहे हैं कि हम परमात्मा को जानना चाहते हैं--हम गीता पढ़ें? हम कुरान पढ़ें? हम मोहम्मद के चरणों में झुकें कि कृष्ण के चरणों में? कहां जाएं? किससे पूछें?
जीवन चारों तरफ खड़ा है और आप किससे पूछने जा रहे हैं? और अगर आप जीवन
से ही नहीं पूछ सकते हैं तो आप कहीं भी नहीं पूछ सकेंगे।
लेकिन जीवन से हम नहीं पूछते हैं, क्योंकि हमने तो उत्तर सीख रखे हैं। उत्तर हमारे पास तैयार हैं। हम तो केवल अपने तैयार उत्तरों को सुनने के लिए प्रश्न खड़े कर रहे हैं। प्रश्न हमारे सूडो, मिथ्या, झूठे हैं। उत्तर पहले से मौजूद हैं। ये जो उत्तर मौजूद हैं, इन्होंने आदमी को ज्ञानी होने का भ्रम पैदा कर दिया है।
एक फकीर एक छोटे से गांव से गुजर रहा था। वह फकीर ज्ञानी था, जानता था। उसने अपनी परंपरा के सभी शास्त्र पढ़े थे। उसने अपनी परंपरा के शास्त्रों पर टीकाएं भी लिखी थीं। ऐसी कोई बात न थी जिसके बाबत उसे ज्ञात न हो। वह पूरा दार्शनिक था, वह पूरा फिलासफर था। वह वैसा ही फिलासफर था, वैसा ही दार्शनिक था, जैसा आइंस्टीन ने एक बार किसी को कहा था। आइंस्टीन से किसी ने पूछा था कि एक दार्शनिक में और एक वैज्ञानिक में क्या फर्क होता है? तो आइंस्टीन ने कहा, दार्शनिक के पास आप कोई भी प्रश्न ले जाएं, वह उत्तर फौरन देगा, वह कभी यह नहीं कहेगा कि मैं नहीं जानता हूं। और वैज्ञानिक के पास आप हजार प्रश्न ले जाएं, तो मुश्किल से एकाध प्रश्न पर वह कहेगा, मैं जानता हूं। और वह भी बहुत गार्डेड, बहुत होश से, समझ कर वह यह कहेगा कि अभी जितना हम जानते हैं वह यह है, कल यह गलत हो सकता है, परसों हम और जान सकते हैं और यह सब हमें पोंछ देना पड़े।
तो वह फकीर वैसा ही दार्शनिक था जिसके पास हर चीज के उत्तर थे। वह एक गांव से गुजरता था। उस दिन कोई सभा नहीं हो सकी थी, कोई सुनने वाले उसे इकट्ठे नहीं हो सके थे। जिसके पास ज्ञान है, उसे सुनने वाले न इकट्ठे हों, तो बड़ी बेचैनी होती है उसे, उसे बड़ी तकलीफ होती है। सुनने वाले इकट्ठे हों, तो उसे बड़ी राहत मिलती है। क्योंकि जिस रोग को उसने पाल रखा है वह दूसरों में बांट कर बहुत निश्चिंत हो जाता है। बीमारी के कीटाणु सब में फैला देता है। ज्ञान बड़ा संक्रामक है।
उस दिन गांव में लेकिन कोई इकट्ठा नहीं हुआ था। बड़ा अजीब गांव रहा होगा। क्योंकि ऐसा कम ही होता है कि कहीं ज्ञान-सत्र हो और लोग इकट्ठे न हो जाएं। क्योंकि ज्ञान की पिपासा और ज्ञान की जिज्ञासा बहुत है। लोग इस ख्याल में हैं कि कहीं ज्ञान मिल जाएगा, वहां इकट्ठे हो जाते हैं। लेकिन उस गांव में लोग इकट्ठे नहीं हुए थे। वह दिन भर घूमता रहा था, लेकिन कोई नहीं मिला था कि उससे कुछ पूछता और वह कोई उत्तर देता।
आखिर वह घबड़ा गया। सांझ होने को आ गई थी, रात उतरने लगी थी। एक छोटा सा बच्चा एक मंदिर की तरफ दीये को जला कर ले जा रहा है। उसने उसको ही रोक लिया। जब कोई न मिले तो फिर कोई भी मिल जाए तो काम चल जाता है। उसने कहा, सुन! तुझसे मुझे एक बात पूछनी है। तू यह दीया कहां ले जा रहा है?
उस बच्चे ने कहा, मैं मंदिर में चढ़ाने जा रहा हूं।
उस फकीर ने पूछा, क्या तू मुझे बता सकता है इस दीये में ज्योति कहां से आई?

जानता था कि यह बच्चा क्या उत्तर देगा इसका! और उत्तर नहीं देगा तो फिर मैं कुछ सलाह देने का मौका पाऊंगा। मैं कुछ उत्तर दे सकूंगा। लेकिन उसे पता नहीं था कि बच्चे कभी ऐसी बातें कर देते हैं कि बूढ़े चकित रह जाएं। उस बच्चे ने फूंक मार कर उस दीये को बुझा दिया और कहा, स्वामी जी, क्या आप बता सकते हैं कि ज्योति कहां चली गई? अगर आप बता सकते हों कि ज्योति कहां चली गई, क्योंकि बिल्कुल अभी-अभी आंखों के सामने गई है, तो फिर मैं भी बता सकता हूं कि ज्योति कहां से आई थी।
उस फकीर को पता भी नहीं रहा होगा कि एक छोटे से बच्चे से ज्ञान हार जाएगा।
और मैं आपसे कहता हूं, एक छोटे से बच्चे से भी ज्ञान हार जाता है। ज्ञान की कोई ताकत ही नहीं है। ज्ञान तो बिल्कुल कमजोर, लचर।
वह फकीर उस बच्चे के चरणों में सिर रख दिया और उसने कहा, मैं बहुत ज्ञानियों के पास गया, उन सबने मुझे ज्ञान दिया, लेकिन तूने पहली दफा मेरा अज्ञान प्रकट कर दिया है। और इस अज्ञान के क्षण में मैं इतनी ह्युमिलिटी, इतनी विनम्रता अनुभव कर रहा हूं, जिसकी कोई मुझे कल्पना भी न थी।
ज्ञान के क्षण में ईगो मजबूत होती है। जब कोई समझता है कि मैं जानता हूं, तो अहंकार मजबूत होता है। ज्ञान के अहंकार से बड़ा कोई अहंकार नहीं है। धन का भी अहंकार उतना बड़ा नहीं है। क्योंकि धन चोर चुरा कर ले जा सकते हैं, दिवाला निकल सकता है, सरकार बदल सकती है, हजार तरह की गड़बड़ें हो सकती हैं। धन डूब सकता है। लेकिन ज्ञान? ज्ञान को कोई भी नहीं छीन सकता। ज्ञान बड़ी सुरक्षित संपदा है।
इसलिए जो नासमझ हैं वे धन इकट्ठा करते हैं। जो ज्यादा कनिंग हैं वे ज्ञान इकट्ठा करते हैं, जो चालाक हैं वे ज्ञान इकट्ठा करते हैं। और वे जो चालाक हैं ज्ञान इकट्ठा करने वाले, वे धन इकट्ठा करने वालों से कहते हैंः पागलो, तुम कहां की संपदा इकट्ठी कर रहे हो! यह यहीं छूट जाएगी। हम जो इकट्ठी कर रहे हैं वह मृत्यु के उस पार जाएगी।
जैसे कि ज्ञान मृत्यु के उस पार जाता हो।
पागल हो गए हैं, ज्ञान नींद में भी नहीं जाता, मृत्यु के उस पार जाने
का तो कोई सवाल नहीं है। ज्ञान नींद में भी नहीं जाता। आप जो जानते हैं वह नींद में भी आपके साथ नहीं रह जाता। नींद में एक गंवार और एक पंडित बराबर हो जाते हैं। नींद में एक अज्ञानी और ज्ञानी बराबर हो जाते हैं। नींद में एक नेता और अनुयायी बराबर हो जाते हैं। नींद में पढ़ा-लिखा और गैर पढ़ा-लिखा बराबर हो जाते हैं। नींद में भी साथ नहीं जाता, वह जो हम इकट्ठा कर रहे हैं। मृत्यु में तो क्या साथ जाएगा?
लेकिन उस फकीर ने कहा कि तूने मेरे अज्ञान को प्रकट कर दिया और मैं अनुगृहीत हूं।
मैं उस जगह को मानता हूं कि वह धार्मिक जगह है जहां आपका अज्ञान प्रकट
हो जाए, जहां आपको पता चल जाए कि हम नहीं जानते हैं। अगर आज आप यहां से यह अनुभव करके लौट सकें कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं, अगर आपका विस्मय जग जाए, आपका बच्चा जीवित हो जाए, आपके भीतर वह छिपा हुआ जो बालक है, वह जो निर्दोष, जो नहीं जानता, वह सजग हो जाए, वह चौंक कर जीवन को देखने लगे कि मैं तो नहीं जानता हूं, आपके भीतर का पंडित मर जाए, तो आपके भीतर धार्मिक क्रांति की शुरुआत हो गई।
इसे मैं पहली सीढ़ी कहता हूंः मनुष्य के भीतर पंडित की मृत्यु और बालक
का जन्म। पंडित और बालक, दो ही विरोधी हैं जगत में। ये दो एक्सट्रीम हैं। एक बहुत बड़ा ज्ञानी, एक बहुत बड़ा ज्ञानी चीन में हुआ, लाओत्से। लोग उससे मजाक में यह कहने लगे कि यह आदमी बूढ़ा ही पैदा हुआ है। फिर तो कहानी बढ़ती चली गई और लोग यह मानने ही लगे कि लाओत्से बूढ़ा ही पैदा हुआ था, सफेद बाल ही लेकर पैदा हुआ था। लोग पूछते कि यह अफवाह क्यों फैल गई कि लाओत्से बूढ़ा पैदा हुआ? तो लाओत्से के मां-बाप ने बताया कि यह पैदा होने के साथ ही ज्ञान की बातें करने लगा है। तो लोग इसको बूढ़ा कहने लगे हैं।
आदमी बूढ़ा पैदा हो सकता है। और हमारी यह तीन-चार हजार वर्षों की परंपरा ने बच्चे पैदा होने बंद कर दिए हैं। बच्चे बूढ़े ही पैदा होते हैं।

क्योंकि जैसे ही वे पैदा हुए, हम उन्हें बूढ़ा बनाने की कोशिश में लग जाते हैं, ज्ञान देने की कोशिश में लग जाते हैं। उनके विस्मय को विकसित नहीं करते। उनमें ज्ञान थोपते हैं। उनके वंडर को, उनके आश्चर्य को नहीं जगाते। जानने का भाव, आई नो का ख्याल पैदा करते हैं। और जो बच्चा जितने जल्दी दावेदार हो जाता है कि मैं जानता हूं, हम कहते हैं, यह बच्चा उतना ही बुद्धिमान है। यह सारी मनुष्य की जाति इसलिए विकृत होती चली गई है। यह विकृति ज्ञान के भ्रम पर खड़ी हुई है।
नहीं, सच में ही हम कुछ भी नहीं जानते हैं। जीवन बहुत अज्ञात, बहुत रहस्यपूर्ण है। नहीं हम कह सकते कि दीये की ज्योति कहां से आती है और न कह सकते कि कहां चली जाती है। नहीं हम कह सकते कि जीवन में श्वासें कहां से उपलब्ध होती हैं और कहां लीन हो जाती हैं। नहीं हम कह सकते कि लहरें उठतीं क्यों, क्यों शून्य हो जाती हैं; क्यों जीवन जागता; क्यों यह नृत्य और गीत और फिर क्यों मृत्यु और मरघट आ जाता है। नहीं, हम कुछ भी नहीं कह सकते हैं। लेकिन आज तक इतने साहस के लोग पैदा नहीं हो सके जो यह मान लेते कि हम नहीं जानते हैं। आज तक इतने साहस के लोग नहीं पैदा हो सके जो मान लेते कि हम नहीं जानते हैं। अज्ञान की स्वीकृति इतने बड़े साहस की मांग करती है जिसका कोई हिसाब नहीं। ज्ञान का दावा तो कमजोर से कमजोर आदमी कर सकता है। लेकिन न जानने का दावा, दुनिया में जो बहुत बलशाली हैं केवल उनका ही भाग्य होता है।
सुकरात कह सकता था कि मैं नहीं जानता हूं। उपनिषद के ऋषि कह सकते थे
कि ज्ञान अज्ञान से भी ज्यादा अंधकारपूर्ण रास्तों पर भटका देता है। बुद्ध कह सकते थे--सैकड़ों प्रश्नों के उत्तर में--कि नहीं, मैं नहीं जानता हूं। इतना साहस, यह जीवन के प्रति समादर है। यह न जानने का स्पष्ट बोध परमात्मा के प्रति सबसे बड़ा सम्मान है। यह इस बात की सूचना है कि जीवन हमसे बड़ा और विराट और अनंत है। और जीवन बड़ा और विराट और अनंत है! थोड़ा आंखें उठाएं और चारों तरफ देखें।
लेकिन हमने एक ह्यूमन कार्नर बना रखा है, एक आदमी की अलग दुनिया बना रखी है। हम उसके बाहर आंखें ही नहीं उठाते। न हम चांद-तारों की तरफ देखते हैं, न सूरज की तरफ, न आकाश की तरफ। जहां अनंत हमारे चारों तरफ खड़ा है वहां हम आंख उठा कर देखते ही नहीं। हमने तो एक आदमी की अपनी दुनिया बना रखी है। जैसे चींटियों की अपनी दुनिया है। चींटियों को पता भी नहीं होगा हमारा, चींटियों को पता भी नहीं होगा चांद-तारों का। आदमी की जाति भी धीरे-धीरे चींटियों की जाति होती जा रही है। वे अपने काम में लगे हुए हैं--अपने धंधे में, अपनी रोटी में, अपनी रोजी में, अपने मकान में। अपनी समस्याएं हैं, अपने प्रश्न हैं, अपनी उलझनें हैं, उनको सुलझा रहे हैं। और उनके चारों तरफ जो विराट जीवन फैला हुआ है, उस तरफ उनकी न कोई दृष्टि है, न कोई ख्याल है, न कोई ध्यान है।
एक बार थोड़ा जीवन की तरफ आंख उठा कर देखें, तो यह पता चलने में कठिनाई नहीं होगी कि हम कैसे जान सकते हैं!
किताबें हैं जो दावा करती हैं कि दुनिया कैसे बनी! किताबें हैं जो दावा करती हैं किस तारीख में बनी दुनिया! किताबें हैं जो दावा करती हैं कि भगवान ने दुनिया कितने दिनों में बनाई! किताबें हैं जो दावा करती हैं कि भगवान ने इसलिए दुनिया बनाई!
पागलपन के सबूत हैं ये किताबें, आदमी की इनसेनिटी के। हम कैसे जान सकते हैं? हम तो सृष्टि के एक हिस्से हैं, हम तो जीवन हैं, जीवन के हिस्से हैं। जीवन कैसे शुरू हुआ, यह हम कैसे जान सकते हैं? क्योंकि जब जीवन शुरू होगा तब हम तो नहीं हो सकते थे। हम अपने से पहले तो नहीं हो सकते हैं। हम जीवन की शुरुआत में तो नहीं हो सकते हैं। हम लौट कर वहां तो खड़े नहीं हो सकते जहां सृष्टि का उपक्रम शुरू हुआ हो।
लेकिन नहीं, इसके दावेदार हैं। और इसके दावेदार पंथ हैं, और संप्रदाय हैं, और गुरु हैं, और झगड़े हैं, और विवाद हैं। और आज तक मनुष्य-जाति यह नहीं कह पाई कि ये पागलपन की बातें बंद करो! आदमी कैसे जान सकता है कि दुनिया

कैसे बनी? विश्व कैसे शुरू हुआ? क्योंकि यह तो कंट्राडिक्ट्री है यह बात ही।
मैं एक खिलौना बनाऊं। खिलौना बन कर तैयार हो जाए। फिर क्या खिलौना जान सकता है कि मेरे बनने के पहले कैसी हालत थी? क्योंकि जब तक वह नहीं बना था तब तक वह नहीं था। और जब वह बन गया तब से वह है। वह अपने से पहले नहीं हो सकता। कोई भी अपने से पहले नहीं हो सकता।
सृष्टि हमेशा एक रहस्य रहेगी, क्योंकि उसके प्रारंभ को कभी भी नहीं जाना जा सकता है। और जिसके प्रारंभ को नहीं जाना जा सकता, क्या आप सोचते हैं उसके अंत को जाना जा सकता है? जिसके प्रारंभ को नहीं जाना जा सकता उसके अंत को कैसे जाना जा सकता है? क्योंकि अंत जब हो जाएगा तो हम नहीं होंगे। हम अपने अंत के बाद कैसे हो सकते हैं?
और मैं आपसे पूछता हूं कि जिसके प्रारंभ को नहीं जाना जा सकता, जिसके अंत को नहीं जाना जा सकता, क्या उसके मध्य को जाना जा सकता है?
जिसके प्रारंभ को नहीं जाना जा सकता, जिसके अंत को नहीं जाना जा सकता, उसके मध्य को भी नहीं जाना जा सकता। जीवन हमेशा से एक रहस्य है और हमेशा एक रहस्य रहेगा। जीवन को ज्ञान बनाने की नासमझी छोड़ देनी उचित है।
इसलिए पहली सीढ़ी मैं कहता हूंः ज्ञानियों के प्रति विद्रोह, रिबेलियन अगेंस्ट नालेज।
और फिर यह आदि-अंतहीन, सच में इसका प्रारंभ कैसे हो सकता है? जो है वह है, वह ना-कुछ से कैसे आएगा? जो है वह रहेगा, वह ना-कुछ कैसे हो जाएगा? अंतहीन है समय की यात्रा। पीछे, और पीछे, और पीछे, वह क्षण कभी नहीं मिल सकता जहां हम कहें कि यहां से समय शुरू होता है, यहां से काल शुरू होता है। अनादि है, अनंत है। विस्तार भी असीम है। कहीं कोई सीमा नहीं जहां हम कह सकें, यह आ गई दुनिया की सीमा। क्योंकि यह पागलपन की बात है, यह विरोधाभास की बात है। क्योंकि जहां हम कहेंगे आ गई सीमा, सीमा हमेशा दो चीजों से बनती हैः एक समाप्त होती है, दूसरी शुरू होती है। जिसके आगे कुछ भी नहीं है वहां सीमा नहीं हो सकती। सीमा बनाने के लिए दूसरे का होना जरूरी है।
मेरा घर जहां समाप्त होता है वहां कुछ और शुरू होता है, इसलिए सीमा बन पाती है। लेकिन जगत कहीं ऐसी कोई जगह नहीं जहां सीमा आ जाए। क्योंकि सीमा का मतलब यह होगा कि आगे फिर कुछ शेष है जो सीमा बना रहा है। फिर हम सीमा पर नहीं आए। और आगे बढ़े--और आगे, और आगे, और आगे--क्या कभी हम उस जगह पहुंच पाएंगे जहां सीमा आ जाएगी? कभी भी नहीं पहुंच पाएंगे। सीमा इनहेरेंट कंट्राडिक्शन है। वह अंतर्विरोध है। कहीं कोई सीमा नहीं जगत की।
जो असीम है क्या वह जाना जा सकता है? और इसके विस्तार का भी, हमारी कल्पना में भी हम कल्पना भी नहीं कर सकते, उतना विस्तार है इस जीवन का। सूरज हमसे कितनी दूर है! दस मिनट लगते हैं सूरज की किरण हम तक पहुंचने में। और किरण बड़ी तीव्र यात्रा करती है। हम कल्पना भी नहीं कर सकते उतनी तीव्र, हम स्वप्न भी नहीं देख सकते उतने तीव्र। सूरज की किरण, प्रकाश की किरण एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील चल जाती है। एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील! एक मिनट में इससे साठ गुना ज्यादा। एक घंटे में उससे साठ गुना ज्यादा।
सूरज से दस मिनट लगते हैं, सूरज बहुत करीब है हमारे। लेकिन जो सूरज के बाद दूसरा सूरज है, जो दूसरा तारा हमसे सबसे ज्यादा निकट है, उससे चार साल लग जाते हैं किरण आने में। और दूर सूरज हैं, जिनसे साठ साल लगते हैं, हजार साल लगते हैं, लाख साल लगते हैं, करोड़ साल लगते हैं, अरब साल लगते हैं। ऐसे सूरज हैं, पृथ्वी जब बनी होगी, कहते हैं पृथ्वी जब संगठित हुई होगी, पृथ्वी जब इस रूप में आई होगी, तब से चली हुई किरण अब तक नहीं पहुंच पाती दो अरब वर्ष से। और उसके आगे भी सूरज हैं, और उसके आगे भी। विज्ञान गिनती करता है तो कोई दो अरब सूरज की गिनती कर पाता है। और आगे अभी हमारी गिनती नहीं जाती, हमारी सामर्थ्य नहीं जाती। आगे सूरज, और आगे सूरज, और आगे...
यह विस्तार अंतहीन है और हम कहते हैं इसे हम जानते हैं! थोड़े से एक्वेनटेंस को, थोड़े से परिचय को हम ज्ञान समझ लेते हैं।

एक पति कहता है, मैं अपनी पत्नी को जानता हूं, क्योंकि वह तीस साल एक्वेनटेंस में रहा है, तीस साल परिचय में रहा है। लेकिन कोई पति किसी पत्नी को कभी नहीं जानता; न कोई पत्नी किसी पति को जानती है; न कोई मां अपने बेटे को जानती है; न कोई बेटा अपने बाप को जानता है। हम सिर्फ परिचित होते हैं और परिचय को हम ज्ञान समझ लेते हैं। परिचय ज्ञान नहीं है। परिचय कुछ भी नहीं है। परिचय केवल कामचलाऊ है, जीवन की यात्रा में उपयोगी है, और कुछ भी नहीं है। विज्ञान एक परिचय है, ज्ञान नहीं है।
पहले धर्मों ने यह भ्रम पैदा किया कि आदमी जानता है। फिर वही रोग विज्ञान के हाथों में आ गया और विज्ञान ने यह कोशिश की कि आदमी जानता है। विज्ञान और धर्म दोनों ने मिल कर मनुष्य-जाति के मन से आश्चर्य को नष्ट कर दिया। आज उसके भीतर कोई विस्मय का भाव नहीं रह गया। हम कभी विस्मय-विमुग्ध होकर खड़े नहीं रह जाते।
किसी फूल के पास कभी आप विस्मय-विभोर होकर खड़े रह जाते हैं? कभी घड़ी
भर को फूल रह जाता है, आप रह जाते हैं? कभी आकाश के तारों के पास आप विस्मय में डूबे खड़े रह जाते हैं? कभी जीवन किन्हीं आंखों से ऐसा झांकता है कि आप ठगे रह जाते हैं और कुछ भी नहीं समझ पाते? कभी सारी अंडरस्टैंडिंग को, सारी समझ को पार कर जाने वाली कोई किरणें आप तक पहुंचती हैं?
अगर नहीं, तो धर्म आपके जीवन में नहीं उतर सकता है। धर्म उतरेगा विस्मय से, धर्म विस्मय के सेतु से ही आता है। विस्मय की आंखें चाहिए। और विस्मय की आंखों के लिए ज्ञान को विदा देनी जरूरी है।
ज्ञान को छोड़ें और विस्मय वापस उपलब्ध हो जाएगा। छोटे बच्चे की भांति
आप जीवन को देख पाएंगे। फिर एक छोटा सा पत्थर भी चमकदार आंखों को खींच लेगा, हाथ रुक जाएंगे, धन्यवाद देने का मन होगा। फिर एक छोटा सा घास का फूल भी हवा में डोलता होगा और उसका नृत्य प्राणों को पकड़ लेगा और कोई अनजाने संदेश उससे उपलब्ध होने शुरू हो जाएंगे। और पानी पर लहर डोलेगी और आपके प्राणों में भी कोई कंपन हो जाएगा। और किसी गीत की कोई कड़ी आकाश में गूंजेगी और आपके प्राणों की वीणा पर भी कोई संगीत पैदा होने लगेगा। कुछ होगा, जिसे शब्द नहीं दिए जा सकते, और जिसे गणित नहीं बनाया जा सकता। कुछ होगा, जिसे बंधी हुई लीकों और रेखाओं में प्रकट नहीं किया जा सकता।
और जब वह होने लगेगा तभी आपको पहली खबर आनी शुरू होगी कि परमात्मा है। परमात्मा के होने की खबर शास्त्र से नहीं आती, सिद्धांत से नहीं आती। जीवन में विस्मय जब आपके प्राणों की वीणा को छेड़ता है, तब! बस तब, और कभी नहीं।
तो विस्मय-विमुग्धता को मैं पहला सूत्र कहता हूं। ज्ञान तथाकथित, सो काल्ड नालेज, संगृहीत ज्ञान, शब्द और शास्त्र और सिद्धांत, और यह ख्याल कि मैं जानता हूं, यह बीमारी "आई नो", इस बीमारी को मैं पहली बाधा मानता हूं। इसको पार हो जाएं और विस्मय को उपलब्ध कर लें।
वह है भीतर। वह मौजूद है। आप उसको दबा-दबा कर रोके हुए हैं। कोई बूढ़ा ऐसा नहीं जिसका विस्मय नष्ट हो गया हो। विस्मय नष्ट होता ही नहीं, वह जीवन का हिस्सा है। केवल हम ज्ञान से उसे थोप देते हैं और दाब देते हैं। जैसे कोई अंगारे पर राख छा जाए, ऐसे हमारे विस्मय पर ज्ञान छा जाता है। इसे झाड़ दें, इसे फूंक मार दें, इसे हवाओं में उड़ जाने दें--और भीतर का वह चमकता हुआ अंगारा निकल आए जो जीवन को देखने लगे नई आंखों से।
इसीलिए मैंने कहा, परंपराओं को जाने दें, कल संध्या आपसे। क्योंकि परंपराएं आपका ज्ञान बन जाती हैं। मैंने आपसे कहा, अनुगमन मत करें। क्योंकि जब आप अनुयायी बनते हैं, तब आप किसी ज्ञान की स्वीकृति को उपलब्ध हो जाते हैं कि वह ठीक है, तब आप किसी ज्ञान और शास्त्र को स्वीकार कर लेते हैं, तब आप राख इकट्ठी करने लगते हैं। और वह राख इकट्ठी हो जाएगी। और फिर? फिर आपके और जीवन के बीच एक दीवाल खड़ी हो जाएगी।
ज्ञान के अतिरिक्त जीवन और आपके बीच कौन सी दीवाल खड़ी है?
इसलिए इस ज्ञान के भ्रम को जाने दें, विदा होने दें। उपलब्ध कर लें अपने निर्दोष चित्त को। उस बच्चे को मरने न दें जो भीतर है। वह जीवन का बालक, वह चेतना का बालक कभी बूढ़ा नहीं होता। अगर हम उसे बूढ़ा बनाने की

कोशिश न करें, तो वह मरते क्षण तक भी जागरूक, जानने को उत्सुक, पहचानने को आतुर, जिज्ञासा से भरने को तैयार।
सुकरात को जहर दिया गया। वह बच्चों की तरह आनंदित हो रहा है। उसके सारे मित्र इकट्ठे होकर रो रहे हैं। और उसके एक मित्र क्रेटो ने कहा कि आप इतने उत्सुक होकर किस बात की प्रतीक्षा कर रहे हैं? सुकरात ने कहा, मैं देख रहा हूं, जल्दी ही जहर आएगा। बाहर जहर घोंटा जा रहा है, तैयार किया जा रहा है। उसकी आवाज मुझ तक आ रही है। बहुत जल्दी जहर का प्याला आ जाएगा और मैं उसे पीऊंगा। जीवन से तो मैं परिचित हो चुका, अब मैं मृत्यु के दर्शन को जा रहा हूं। तो मेरा विस्मय बहुत तीव्र हो उठा है, मैं आश्चर्य से भर गया हूं कि मृत्यु कैसी है? एक अनुपम अवसर आ रहा है कि मैं मृत्यु को भी पहचान पाऊंगा, मृत्यु में प्रवेश करूंगा। इसलिए मैं आतुर हुआ जा रहा हूं।
जैसे कोई प्रेमी अपनी प्रेयसी से मिलने को आतुर हो, जैसे कोई अपने प्रियतम की बाट जोहता हो, ऐसा सुकरात दीवाना है। बार-बार झांक कर देख आता है कि जहर तैयार हो गया कि नहीं, समय हो गया कि नहीं।
फिर उसे जहर लाकर दिया गया। फिर उसने जहर पी लिया है। वह जहर पीकर लेट गया है। उसके मित्र रो रहे हैं। और वह कह रहा है कि तुम क्यों रो रहे हो? क्योंकि अगर मेरे भीतर ऐसा कुछ भी नहीं था जो मृत्यु के पार नहीं बचेगा, तो मैं पहले भी मरा हुआ ही था। तब तो रोने की कोई जरूरत नहीं है। और अगर ऐसा कुछ था मेरे भीतर जो जीवन है, तो मृत्यु उसे कैसे ले जा सकेगी? तब भी रोने का कोई भी कारण नहीं है। या तो मैं बिल्कुल मिट जाऊंगा। और मिट जाऊंगा तो दुख की कोई गुंजाइश नहीं। तो तुम क्यों दुखी होते हो, जब मैं दुखी ही नहीं होऊंगा, क्योंकि मैं मिट जाऊंगा। और या फिर मैं बच रहूंगा। और अगर बच रहूंगा तो दुखी क्यों होते हो? क्योंकि जब मैं बच ही रहूंगा तो दुख का कोई भी कारण नहीं।
यह आदमी आतुरता से, विस्मय से मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा है।
फिर जहर दे दिया गया। और वह अपने मित्रों को कहने लगा, मेरे पैर देखो ठंडे हुए जाते हैं, लगता है पैर गए। अब थोड़ी देर में घुटनों के ऊपर भी सब चला जाएगा। फिर थोड़ी देर में मेरे हाथ भी ढीले होने लगे हैं। और सुकरात कहने लगा कि पैर चले गए हैं, हाथ चले गए हैं, प्राणों तक सब शांत हुआ जा रहा है, लेकिन मैं हूं! मुझे पता चल रहा है कि पैर चले गए, निश्चित ही पैर मुझसे अलग होंगे ऐसा मालूम पड़ता है।
यह खोज है, यह जिज्ञासा है, यह विस्मय है, जो इस क्षण में भी, मृत्यु के क्षण में भी, तटस्थ किनारे पर खड़ा होकर देखने के लिए आंखें खुली रखे है, उत्सुक है, उसने मान नहीं लिया है कि आत्मा अमर है, उसने मान नहीं लिया है कि आत्मा मर जाती है, मरणधर्मा है। वह देखने को आतुर जरूर है कि क्या होता है? क्या है रहस्य?
लेकिन हम या तो मान लेते हैं कि आत्मा मरणधर्मा है--तथाकथित नास्तिक। उनका भी एक ज्ञान है, उनके भी शास्त्र हैं। चार्वाक से लेकर मार्क्स तक उनके भी गुरु और ऋषि-मुनि हैं। उनकी अपनी परंपरा है। दूसरी तरफ वे लोग हैं जो मान लेते हैं आत्मा अमर है। इनके अपने शास्त्र हैं, इनके अपने ऋषि-मुनि हैं। लेकिन दोनों मान लेते हैं और कोई भी जानने के लिए तैयार नहीं है। विस्मय चाहिए। बिना किसी पक्ष के, बिना कुछ तय किए जीवन को देखने की क्षमता चाहिए। मन हो खुला, मुक्त, अनबंधा, जंजीरें न हों, कि जीवन जहां ले जाए हम जा सकें।
लाओत्से कहता थाः जब मैं ज्ञान की यात्रा पर निकला, जब मैं जीवन को जानने निकला, तो मैं एक सूखे पत्ते की भांति हो गया। हवाएं जहां ले जातीं, चला जाता। हवाएं नीचे गिरा देतीं तो गिर जाता, हवाएं आकाश में उठा देतीं तो उठ जाता। फिर मेरा अपना कोई आग्रह न रहा। मैं एक सूखा पत्ता हो गया। जीवन की हवाएं जहां ले जातीं, मैं वहीं चला जाता। गिरा देतीं हवाएं तो पड़ा रह जाता वृक्षों के नीचे, उठा देतीं आकाश में तो उठ जाता। हवाओं पर सवारी भी करता, जमीन की धूल में भी पड़ा रहता। पूरब तो पूरब, पश्चिम तो पश्चिम, दक्षिण तो दक्षिण, उत्तर तो उत्तर, जहां हवाएं ले जाने लगीं मैं जाने लगा। मेरी कोई क्लिंगिंग, मेरी कोई पकड़, मेरा कोई आग्रह न रहा। मैं कच्चा पत्ता

न रहा जो झाड़ से अटका रहता। हवाएं हिला तो जाती हैं उसे, लेकिन हवाएं चली जाती हैं, वह फिर अपनी जगह रह जाता है।
हम सब कच्चे पत्तों की भांति हैं, अपने-अपने ज्ञान की जड़ से जकड़े हुए, अपने-अपने ज्ञान के झाड़ को पकड़े हुए। जीवन की हवाएं हिला जाती हैं। लेकिन हम मजबूरी में हिलते हैं, जबरदस्ती हिलते हैं, परेशानी में हिलते हैं। जीवन की हवाओं के विरोध में हिलते हैं। मजबूरी है, हिल लेते हैं। हवाएं निकल जाती हैं, हम फिर अपनी जगह खड़े रह जाते हैं।
अस्सी साल जीवन की हवाएं हिलाएंगी और हम अपनी ही जगह रह जाएंगे। जहां
हम जन्म के समय थे, ठीक मरते वक्त वहीं। हममें कोई, कोई क्रांति, कोई रूपांतरण, कोई ट्रांसफार्मेशन नहीं होगा। क्योंकि हम सूखे पत्ते की भांति नहीं। हवाएं जहां ले जाती हैं चला जाता है।
जिज्ञासा है सूखे पत्ते की भांति, विस्मय है सूखे पत्ते की भांति, वह कहीं अटका नहीं है; हमेशा हर जगह जाने को तैयार है। और ज्ञान है हरे पत्ते की भांति, वृक्ष से जकड़ा हुआ, पकड़ा हुआ; हवाओं के साथ उड़ने को राजी नहीं है। क्या आप एक हरे पत्ते ही बने रहेंगे या सूखे पत्ते बनने की सामर्थ्य है? इस प्रश्न पर आज की बात मैं पूरी कर देता हूं। कल और परसों हम दूसरे और तीसरे सूत्र पर बात करेंगे।
मेरी बातों को इतने प्रेम से सुना, परमात्मा करे ये बातें कहीं आपका ज्ञान न बन जाएं। ये आपके भीतर अज्ञान को दिखाएं, तब तो ठीक। और अगर ये आपके लिए ज्ञान बन जाएं तो फिर मैं भी आपका एक शत्रु हो जाता हूं। और शत्रुओं की लंबी परंपरा है, उसमें मैं सम्मिलित होने के लिए उत्सुक नहीं हूं।
मेरी बातों को इतने प्रेम से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। अंत में सबके भीतर अज्ञात, अनजान बैठे परमात्मा के लिए प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

माटी कहै कुम्हार सूं
नौवां प्रवचन

रहस्य का बोध

मेरे प्रिय आत्मन्!
बीते दो दिनों की चर्चाओं के संबंध में मित्रों ने बहुत से प्रश्न पूछे हैं। उनमें से कुछ पर अभी विचार हो सकेगा।

किसी ने पूछा हैः कल मैंने कहा कि आश्चर्य, विस्मय और रहस्य की भावना जितनी तीव्र और गहरी होगी, मनुष्य के जीवन में ईश्वर का संपर्क उतना ही ज्यादा हो सकता है। उन्होंने पूछा है, विस्मय का यह भाव कैसे गहरा हो? कैसे तीव्र हो? आश्चर्य की यह दृष्टि कैसे मिले? हम कैसे जीवन को रहस्य की भांति देख सकें?

दो-तीन बातें इस संबंध में समझ लेनी उपयोगी होंगी।
पहली बातः जीवन तो रहस्य है। यह मत पूछिए कि हम जीवन के रहस्य को कैसे देख सकें। यह पूछिए कि हमने जीवन के रहस्य को कैसे देखना बंद कर दिया है। एक आदमी आंख बंद किए हुए खड़ा है और पूछता है, मैं प्रकाश को कैसे देख सकूं? पूछना चाहिए यह कि मैंने प्रकाश को देखना किस भांति बंद कर दिया है। प्रकाश तो है, आंख भी है। प्रकाश को कहीं से लाना नहीं है, आंख को भी कहीं से लाना नहीं है, लेकिन हम आंख बंद किए खड़े हैं। हम आंख बंद किए हुए हैं। हम कैसे आंख बंद किए हुए हैं, हमने किस भांति आंख बंद कर ली है, अगर हम यह समझ लें, तो आंख कैसे खुल सकती है, इसे समझने में कोई कठिनाई नहीं रह जाएगी। जीवन के रहस्य को हमने किस भांति बोथला कर दिया है, किस भांति हमने देखना बंद कर दिया है? हम कैसे अंधे हो गए हैं? कुछ बातों के कारण। उनमें पहली बात, एक आदमी आज सुबह बगीचे में जाए और गुलाब के खिले हुए एक फूल को देखे। वह फूल को देख कर फौरन उन गुलाब के फूलों के संबंध में सोचने लगता है जो उसने पहले देखे थे। उसे यह ख्याल आता है कि मैं तो गुलाब के फूलों को जानता हूं।
इसमें कुछ भ्रम हो रहा है, कोई फैलेसी हो रही है, कोई भूल हो रही है। उसने जिन फूलों को जाना था, यह फूल वे फूल नहीं है। यह फूल बिल्कुल नया और अलग है। उसने जो फूल जाने थे वे और थे। प्रत्येक फूल का अपना व्यक्तित्व है, अपनी प्रतिभा है, अपनी क्षमता, अपनी निजता है, अपनी इंडिविजुअलिटी है। लेकिन हम यह माने बैठे हैं कि गुलाब का फूल यानी गुलाब का फूल।
गुलाब का फूल जैसी कोई चीज होती नहीं। यह गुलाब का फूल होता है, वह गुलाब का फूल होता है। लेकिन गुलाब का फूल जैसी कोई चीज नहीं होती। आदमी जैसी कोई चीज नहीं होती। यह आदमी होता है, वह आदमी होता है। आदमी जैसी चीज बिल्कुल भी नहीं होती। प्रत्येक मनुष्य का अपना व्यक्तित्व है। हम एक मनुष्य को जान लेते हैं, हम सोचते हैं, हमने मनुष्य को जान लिया। एक मनुष्य को पहचान लेते हैं, सोचते हैं, मनुष्यता को पहचान लिया। मिस्ट्री नष्ट हो जाती है, क्योंकि हम प्रत्येक व्यक्ति को उसका व्यक्तित्व छीन लेते हैं। व्यक्तित्व के छीन लेने से जीवन का रहस्य नष्ट हो जाता है। और जीवन की प्रत्येक चीज का अपना व्यक्तित्व है, अपना ही व्यक्तित्व है।
और जब हम चारों तरफ आंख उठा कर देखेंगे और हर चीज में व्यक्तित्व को अनुभव करेंगे, तो हमें रहस्य के दर्शन शुरू हो जाएंगे। तब हम गुलाब के फूल के पास खड़े होकर यह नहीं कह सकते हैं कि मैं गुलाब को जानता हूं। मैंने जिन फूलों को जाना था वह यह फूल नहीं। यह फूल बिल्कुल नया है। यह फूल पहली बार मेरी चेतना के समक्ष उपस्थित हुआ है। यह एनकाउंटर, यह मुलाकात बिल्कुल पहली है। और यह मुलाकात दुबारा फिर कभी नहीं होगी, क्योंकि सांझ तक यह फूल विदा हो जाएगा। और अगर यह फूल विदा भी न हो, तो भी बदल जाएगा। और अगर यह फूल न भी बदले, तो सांझ तक मैं बदल जाऊंगा। यह मुलाकात दुबारा नहीं होनी है। जीवन में प्रत्येक पल अनूठा है और दुबारा नहीं लौटता है।

रिपिटीटिव, पुनरुक्ति से जीवन का रहस्य नष्ट हो जाता है। और हमने सारे जीवन को एक पुनरुक्ति बना रखा है। हम सोचते हैं चीजें दोहरती हैं। कोई चीज कभी नहीं दोहरती। जीवन कभी पीछे नहीं लौटता। जीवन फिर कभी वैसा नहीं होता जैसा था। जो था, अब कभी नहीं होगा। प्रतिपल सब नया होता चला जाता है।
बुद्ध के पास सुबह-सुबह एक दिन एक व्यक्ति मिलने आया। घंटे भर बाद जब
वह जाने लगा तो उस व्यक्ति ने कहा कि मुझे बहुत आनंद हुआ एक घंटा आपसे मिल कर, मैं जा रहा हूं, मैं फिर कभी मिलने आऊंगा।
बुद्ध ने कहा, जाते समय एक बात तुमसे मैं और कह दूं। तुम जो आए थे घंटे
भर पहले, तुम वही नहीं जा रहे हो। और तुम जब दुबारा आओगे तो तुम्हीं नहीं आ सकते हो।
उसने कहा, आप क्या कहते हैं! मैं ही आया था घंटे भर पहले, मैं ही जा रहा हूं।
बुद्ध ने कहा कि नहीं, घंटे भर पहले तुम जो आए थे वह तुम अब नहीं हो, घंटे भर में गंगा का बहुत पानी बह गया। घंटे भर में तुम्हारे व्यक्तित्व की भी धारा बहुत बह गई। उसने नये किनारे छू लिए, नये आकाश देख लिए।
तुम्हारा चित्त भी, तुम्हारी चेतना भी घंटे भर में बहुत बह गई, तुम वही नहीं हो जो आए थे। और मैं भी वही नहीं हूं, जो तुम आए थे तब मैं मिला था। मेरी चेतना धारा भी बह गई। और अब तुम दुबारा जब आओगे तब तुम फिर नये आदमी। तुम फिर बिल्कुल नवीन।
बुद्ध ने कहा, सांझ को हम एक दीया जलाते हैं। सुबह हम कहते हैं, हम उसी दीये को बुझा रहे हैं। झूठ है यह बात। सांझ जो दीया जलाया था, वह ज्योति तो रात भर बदलती चली गई है, वह ज्योति रात भर दूसरी होती चली गई है। सुबह जिस दीये को हम बुझाते हैं, यह वही दीया नहीं है जो सांझ जलाया गया था।
जीवन प्रतिपल नया है। और हमने सोच रखा है कि जीवन एक पुनरुक्ति है। जहां पुनरुक्ति है वहां रहस्य नहीं होगा। जहां पुनरुक्ति है वहां आश्चर्य का भाव नहीं होगा। और जहां पुनरुक्ति नहीं है, जहां रिपिटीटिव सर्किल नहीं है, जहां जीवन प्रतिक्षण नई दिशा को छूता है, नये आकाश में प्रवेश करता है, नये सूरज से मिलता है, नई रातों को पार करता है, नये किनारे, नये सागर, वहां जीवन अगर विस्मय न होगा तो और क्या होगा?
मनुष्य ने जीवन के विस्मय को नष्ट करने की जो पहली तरकीब, जो पहली टेक्नीक उपयोग की है वह यह है कि उसने जीवन को एक पुनरुक्ति मान रखा है, जीवन को बासा और पुराना मान रखा है। इससे सारा रहस्य नष्ट हो जाता है, दिखाई नहीं पड़ता है।
पहली बातः प्रत्येक घटना के व्यक्तित्व को अनुभव करें--प्रत्येक व्यक्ति के, प्रत्येक फूल के, प्रत्येक पत्ते के, प्रत्येक पत्थर के।
अगर हम खोजने जाएं एक पत्थर जैसा दूसरा पत्थर, तो सारी पृथ्वी पर हम खोज नहीं सकेंगे। एक पत्थर अपने ही जैसा है, उस जैसा कोई पत्थर कहीं भी नहीं। एक व्यक्ति भी अपने जैसा है, उस जैसा कोई दूसरा व्यक्ति भी कहीं नहीं। एक घटना भी अपने जैसी है, उस जैसी घटना कभी नहीं घटी और कभी नहीं घटेगी। अगर यह अभिनव का भाव, अगर यह नयेपन का, यह ताजगी का, यह जीवंतता का, यह परिवर्तन का बोध स्पष्ट हो जाए, तो आपके दरवाजे पर विस्मय खड़ा हो जाएगा, आपको उसे खोजने कहीं जाना नहीं पड़ेगा।
लेकिन हम, हम इस विस्मय को द्वार पर खड़े नहीं होने देते। कल रात जब आप सोए थे, तो जिस पत्नी से आपने विदा ली थी, सुबह वही पत्नी आपके घर में नहीं है, वही व्यक्ति आपके घर में नहीं है--गंगा का बहुत पानी बह गया। लेकिन सुबह आप उससे ऐसे ही मिल रहे हैं जैसे यह वही व्यक्ति है जो रात था। आप जीवन को कोई मुर्दा ढांचा समझे हुए हैं? तो फिर इस पत्नी में सुबह कोई रस नहीं रह जाता, कोई विस्मय नहीं रह जाता। जो पुराना है उसमें कोई रस और विस्मय कैसे हो सकता है?
चीन में एक विचारक था, च्वांग्त्से। वह एक ही गांव में कोई तीस वर्ष
तक रहा। उसके मित्रों ने, जो कि देश के दूर-दूर कोनों को छू आए, उसके कुछ

मित्र परदेश हो आए, उन्होंने लौट कर च्वांग्त्से को कहा कि तुम एक ही गांव में तीस वर्ष से रह रहे हो, तुम घबड़ा नहीं गए?
उसने कहा, गांव अगर एक ही होता तो मैं घबड़ा जाता, लेकिन गांव रोज बदल जाता है। मैं रोज नये गांव में हूं। और फिर मैं भी रोज बदल जाता हूं। नये गांव में, मैं भी नया आदमी हूं। तुम नये को खोजने कहां गए थे नया तो यहां घटित हो रहा है इसी गांव में। वह सामने जो वृक्ष पर पत्ते लगे हैं, पिछले वर्ष नहीं थे। पुराने पत्ते गिर गए हैं, वृक्ष नया हो गया है। ये जो गांव में तुम्हें बूढ़े दिखाई पड़ रहे हैं, ये तीस वर्ष पहले बूढ़े नहीं थे, ये जवान थे। ये गांव में तुम्हें जवान दिखाई पड़ रहे हैं, ये तीस वर्ष पहले बिल्कुल नहीं थे, ये कहीं भी नहीं थे, ये बिल्कुल नये हैं। नये मकान गिर गए हैं, पुराने मकान टूट गए हैं, नये मकान बन गए हैं। यह सब कुछ बदल गया है। और च्वांग्त्से ने कहा, मैं तो हैरान हूं। मैंने एक भी सुबह नहीं देखी जो वही हो जो पहले हो चुकी है। मैंने एक भी चांद नहीं देखा जो वही हो जो पहले निकल चुका है। रोज सब कुछ नया है।
इस नये की स्मृति, इस नये की रिमेंबरिंग जीवन में विस्मय का द्वार खोल देगी।
तो पहली बात हैः जीवन में नये का बोध, जीवन की प्रत्येक घटना को व्यक्तित्व का अनुभव, जीवन के सतत प्रवाह का स्मरण कि जीवन एक सतत प्रवाह है, रोज सब नया होता चला जा रहा है। कल सुबह जब उठें, आज सांझ जब घर जाएं, तो थोड़ा देखें, खोजें--पुराना है कुछ या सब बदल गया? रास्ते से निकलें तो थोड़ा रुकें, देखें वृक्षों को, रात तारों को देखें, सुबह सूरज को--वही है सब या बदल गया?
सब रोज बदल जाता है। लेकिन आदमी पुराने में जीए चला जाता है, और वह सोचता है कि कुछ भी नहीं बदला। इसलिए मिस्ट्री, इसलिए रहस्य का बोध नहीं होता। मनुष्य की स्मृति बाधा देती है विस्मय के बोध में, वह जो मेमोरी है। जगत में पुराना कुछ भी नहीं है, लेकिन आदमी की स्मृति में सब कुछ पुराना है, आदमी की स्मृति में नया कुछ भी नहीं है। स्मृति नये की हो ही नहीं सकती। नये का अनुभव होता है, पुराने की स्मृति होती है, स्मृति नये की नहीं हो सकती। जो नया है उसकी स्मृति कैसे होगी? जो जाना नहीं गया है उसकी स्मृति कैसे होगी? जो पहले जीया नहीं गया है उसकी स्मृति कैसे होगी? स्मृति तो होगी पुराने की। जो जान लिया गया, पहचान लिया गया, जी लिया गया, जहां से हम गुजर गए हैं, उसकी स्मृति होगी।
गंगा निकलती है गंगोत्री से, उसे हिमालय की स्मृति होगी। लेकिन मैदानों का अनुभव, वह उसकी स्मृति कैसे हो सकती है? फिर वह मैदानों से गुजरती है, उसे मैदानों की स्मृति होगी। लेकिन सागर से मिलन का अनुभव, वह उसकी स्मृति कैसे हो सकती है? जो घट चुका उसकी स्मृति होती है। और जीवन प्रतिक्षण अनघटा हुआ है, जो अभी नहीं घटा, जो अभी घटने को है, जो अभी नहीं हुआ, जो अभी होने को है।
स्मृति के द्वार से हम इस अनहोने को देखते हैं तो विस्मय नष्ट हो जाता है। स्मृति को हटा दें, क्योंकि स्मृति नये को देखने के लिए कोई भी मार्ग नहीं बन सकती है। कल मैंने जो फूल देखे, आज जब नये फूल को देखूं तो उन कल के फूलों की स्मृति बीच में नहीं आनी चाहिए। अगर बीच में आएगी तो मैं इस फूल को नहीं देख पाऊंगा जो मेरे द्वार पर आज खिल आया है। कल आपने मुझे गाली दी थी या कल मेरा अपमान किया था, अगर आज मिलते समय कल की स्मृति बीच में आ जाती है तो मैं आपको नहीं देख पाऊंगा जो आप अभी इस क्षण हैं। बस कल बीच में आ जाएगा। मैं कल बीते हुए आदमी को देखता रहूंगा जो अब कहीं भी नहीं है। चौबीस घंटे में आपकी जीवन-धारा बहुत बह गई।
लेकिन हम इसी भांति देखते हैं। यह हमारे देखने का ढंग एकदम भ्रांत है। इसलिए विस्मय नष्ट हो जाता है।
तो यह मत पूछें कि विस्मय के द्वार कैसे खुलेंगे। यह पूछें कि हमने बंद कैसे कर रखे हैं? नये को, जीवंत को, अनघटे को, जो अभी नहीं हुआ उसके लिए देखने वाली आंख स्मृति के पास कैसे हो सकती है? इसलिए स्मृति को विदा कर

दें, बिना स्मृति के देखें जीवन को। तो जीवन बहुत विस्मय से भरा हुआ है।
जीवन बहुत विस्मय से भरा हुआ है।
बुद्ध बारह वर्ष अपने घर के बाहर रहे साधना के लिए, तपश्चर्या के लिए, सत्य की खोज में। फिर बारह वर्षों बाद वे वापस लौटे अपनी राजधानी में।
सारा नगर उन्हें लेने गया, लेकिन उनकी पत्नी उन्हें लेने नहीं गई। क्योंकि पत्नी ने सोचा कि यह वही व्यक्ति जो बारह वर्ष पहले मुझे कष्ट में छोड़ कर चला गया था! उसे पता नहीं कि बारह वर्षों में इस व्यक्ति की जीवन-धारा बदल गई, यह कोई और होकर आया है। अब यह किसी का पति नहीं है, अब यह किसी का पिता नहीं है, अब यह किसी का बेटा नहीं है। लेकिन उसकी पत्नी बारह वर्ष पुरानी स्मृति में रुकी बैठी है। वह घर के बाहर नहीं गई। उसके प्रियजनों ने कहा कि चलो, बुद्ध आते हैं! उनके स्वागत को सारा नगर जाता है, तुम नहीं जाओगी? लेकिन उसकी आंखों में क्रोध है, उसकी आंखों में गुस्सा है। बारह वर्ष पहले यह आदमी उसे छोड़ कर चला गया था। वहीं रुक गई है स्मृति, बारह वर्ष फिर कुछ नहीं हुआ, बारह वर्ष की बात वहीं अटकी रह गई है, वह स्त्री बारह वर्ष पहले खड़ी है।
बुद्ध के पिता लेने गए। लेकिन वे भी क्रोध से भरे हुए हैं, उनका लड़का बारह वर्ष पहले उन्हें छोड़ कर चला गया था। अकेला लड़का था, राज्य का अधिकारी वही था। पिता बूढ़े हो गए हैं, जीवन की संध्या आ गई है। वे बारह वर्ष पहले के ख्याल से भरे हैं। वे गए हैं बुद्ध को लेने, लेकिन बुद्ध को लेने नहीं गए हैं, वे समझाने गए हैं अपने बेटे को कि तू वापस लौट आ, अभी भी मेरे द्वार खुले हैं, मैं तुझे क्षमा कर सकता हूं। बारह वर्ष में उनका लड़का कहां चला गया, क्या हो गया, उसकी चेतना ने कौन से रूप लिए हैं, उसकी चेतना ने कौन से आकाश छू लिए, कौन से अनजाने-अपरिचित लोक छू लिए, इसका बुद्ध के पिता को कोई भी ख्याल नहीं, वे वहीं रुके हैं बारह वर्ष पहले। वे जाकर बुद्ध के सामने खड़े हो गए हैं और बुद्ध से कहने लगे हैं कि मैं तुझे क्षमा कर दूंगा। तूने मुझे बहुत चोट पहुंचाई है इस बुढ़ापे में, लेकिन मैं माफ कर दूंगा, मेरे पास पिता का हृदय है। तू वापस लौट चल! मेरे द्वार अभी भी खुले हैं, मैं क्षमा कर सकता हूं।
बुद्ध हंसने लगे और उन्होंने कहा, शायद आप देख नहीं रहे कि आप किससे बात कर रहे हैं। जो बारह वर्ष पहले आपके घर को छोड़ कर गया था वह अब कहीं भी नहीं है। मैं बिल्कुल दूसरा व्यक्ति होकर वापस लौटा हूं। मैं वही नहीं हूं। आप आंखों को पोंछें, क्रोध को हटाएं और मुझे देखें कि मैं कौन हूं। आप किससे कह रहे हैं? आप किसको लौट आने की बात कह रहे हैं? आप मुझे देखें, आप मुझे पहचानें।
बुद्ध के पिता को स्वभावतः क्रोध आ गया कि मैं तुझे नहीं पहचानता हूं? मेरा खून तेरे खून में बह रहा है! मैंने तुझे पैदा किया! और मैं तुझे नहीं पहचानता हूं?
बुद्ध फिर हंसने लगे, उन्होंने कहा, भूल करते हैं आप। जरूर आपसे मैं पैदा हुआ, लेकिन आपने मुझे पैदा नहीं किया है। आप एक रास्ते की भांति थे जिस पर से मैं आया। एक मार्ग थे जिसको मैंने पार किया और मैं जीवन में प्रविष्ट हुआ। लेकिन अभी जिस रास्ते पर गुजर कर मैं आ रहा हूं सैकड़ों मील चल कर, क्या वह रास्ता कह सकता है कि मुझे जानता है, क्योंकि मैं सैकड़ों मील उस पर चला? थोड़ी सी यात्रा मैंने आपके रास्ते से की है, लेकिन उससे आप मुझे कैसे पहचान सकते हैं? मुझे कैसे जान सकते हैं? दूर हूं मैं, आप स्वयं अपने को पहचानते हैं? मुझे पहचानना तो बहुत कठिन है। मैं इसी यात्रा पर गया था अपने को पहचानने की और मैं बिल्कुल दूसरा व्यक्ति होकर लौटा हूं। क्योंकि जो अपने को नहीं पहचानता था वह बिल्कुल दूसरा व्यक्ति था, वैसा ही जैसे एक अंधा आदमी जो रोशनी को नहीं जानता है। और जो अपने को पहचानता है वह बिल्कुल दूसरा व्यक्ति है, वैसा ही जैसे अंधे की आंख खुल गई और उसे रोशनी दिखाई पड़ गई। ये दोनों दो व्यक्तित्व हैं, ये बिल्कुल अलग घटनाएं हैं, ये बिल्कुल दोनों दो अलग अनुभव हैं।

पता नहीं बुद्ध के पिता को सुनाई पड़ी यह बात या नहीं सुनाई पड़ी। शायद
वे फिर भी बारह वर्ष पहले के ख्याल में ही उलझे रहे हों। उन्हें ये बातें बड़ी बेबूझ मालूम पड़ी होंगी कि यह लड़का क्या कह रहा है?
हम सब की भी दशा यही है। हम हमेशा पीछे ही ठहरे रह जाते हैं। इसलिए जीवन रोज-रोज क्या कहता है, हमें सुनाई नहीं पड़ता। हम हमेशा पीछे ही अटके रह जाते हैं। इसलिए नई कौन सी खबरें जीवन लाता है, वे हमें दिखाई नहीं पड़तीं।
यह जो पीछे अटक जाना है स्मृति में, यह विस्मय के लिए सबसे बड़ी बाधा है। आश्चर्य को लाना हो, तो स्मृति को बीच से हटाने की क्षमता पैदा करनी जरूरी है। जब भी देखें किसी को, स्मृति को हटा दें और देखें।
फिर आप पाएंगे, शायद आप अनुभव करेंगे एक रिवीलेशन, कि यह तो व्यक्ति मैंने कभी नहीं देखा था जो आज मेरे सामने खड़ा है। जो आपको बिल्कुल परिचित मालूम हो रहे हैं वे भी बिल्कुल अपरिचित हैं। रोज-रोज पास गुजर जाने से कोई परिचित नहीं हो जाता। रोज-रोज निकट होने से कोई ज्ञात नहीं हो जाता। जीवन बहुत गहरा है, जीवन के रहस्य बहुत गहरे हैं। उन गहरे रहस्यों को देखने के लिए यह स्मृति से धुंधली हो गई आंखें काम नहीं देती हैं। यह तो पहला स्मरण रखना जरूरी है।
दूसरा स्मरणः दूसरा स्मरण भी रखना जरूरी है कि जितना हम देखते हैं वह हमेशा अंश है, वह हमेशा एक पार्ट है। जितना हम जानते हैं वह एक छोटा सा खंड है। समग्र, समग्र का बोध, टोटेलिटी का बोध बहुत रहस्यपूर्ण है। लेकिन हम समग्र को देखते नहीं, हम खंड-खंड को, टुकड़ों-टुकड़ों को देखते हैं। और हमें पता नहीं कि जब भी हम चीजों के टुकड़े-टुकड़े करते हैं तभी उनका रहस्य नष्ट हो जाता है।
अगर मैं एक गीत गाऊं और उस गीत के शब्दों को आप टुकड़े-टुकड़े कर लें और कहें कि क्या है इस गीत में, इतने शब्दों का जोड़ है यह! तो आप बिल्कुल ही ठीक कहते हैं, शायद इतने ही शब्दों का जोड़ है। लेकिन गीत शब्दों के जोड़ से कुछ ज्यादा है।
एक चित्र आपके सामने ले आऊं और आप कहें कि क्या है इस चित्र में, थोड़े
से रंग हैं! थोड़े से रंग हैं जरूर, लेकिन चित्र रंगों से ज्यादा है। चित्र रंगों के जोड़ से ज्यादा है।
एक आदमी के व्यक्तित्व को हम तोड़ लें टुकड़ों-टुकड़ों में, तो कुछ हड्डियां मिलेंगी, कुछ मांस मिलेगा, कुछ मज्जा मिलेगी, कुछ खून मिलेगा। और क्या मिलेगा? लेकिन मनुष्य का व्यक्तित्व हड्डी-मांस-मज्जा के जोड़ से कुछ ज्यादा है।
अगर जीवन के रहस्य को नष्ट करना हो तो चीजों को तोड़ कर देखने की तरकीब सीखनी चाहिए और अगर जीवन के रहस्य को बड़ा करना हो तो चीजों को जोड़ कर देखने की तरकीब विकसित करनी चाहिए। और इतना स्मरण रखिए कि चीजें जुड़ी हुई हैं, चीजें टूटी हुई नहीं हैं। चीजें एक अबूझ इंटीग्रेशन में खड़ी हैं, एक अबूझ जोड़ में खड़ी हैं, एक अबूझ अखंडता में खड़ी हैं। चीजें अलग-अलग नहीं हैं।
एक फूल खिला है। हम तो फूल को देखते हैं सिर्फ; लेकिन हम यह नहीं देखते
कि फूल खिल नहीं सकता था, अगर नीचे पत्ते न होते, शाखाएं न होतीं। लेकिन पत्ते और शाखाएं भी नहीं हो सकती थीं, अगर जड़ें, जमीन के नीचे छिपी हुई रूट्स न होतीं, जड़ें न होतीं।
लेकिन जड़ें दिखाई नहीं पड़ती हैं। फूल दिखाई पड़ता है। लेकिन फूल बिना जड़ों के कहां है? फूल इस समय भी फूले हुए पन में, जड़ों से जुड़ा है। जो नहीं दिखाई पड़ता वह पीछे मौजूद है। और जड़ें भी नहीं हो सकती थीं, अगर पृथ्वी से रस न मिलते, सूरज से रोशनी न मिलती। अगर रात चांद अमृत न बरसाता, अगर आकाश की बदलियां पानी न गिरातीं, जड़ें भी नहीं हो सकती थीं।
तो जड़ें भी और दूर से जुड़ी हैं--वहां सूरज से जुड़ी हैं, वहां आकाश के बादलों से जुड़ी हैं, यहां पृथ्वी से जुड़ी हैं। अगर सूरज आज सुबह न निकलता, यह फूल नहीं खिल सकता था फिर। कि खिल सकता था? यह फूल फिर कभी भी नहीं खिलता। अगर सूरज आज सुबह न निकलता तो यह फूल न खिलता।

तो जब आप फूल को देख रहे हैं तब आपको पता नहीं है कि सूरज की मौजूदगी फूल के प्राणों का हिस्सा है। नहीं तो फूल कभी नहीं हो सकता था। सूरज से जुड़ा है फूल, वह जो करोड़ों मील दूर सूरज है, उससे किसी अंतरिक्ष यात्रा में फूल के प्राण संयुक्त हैं। फूल नहीं हो सकता है बिना सूरज के। लेकिन कौन कह सकता है कि अगर फूल न हो तो सूरज भी न हो सके! यह भी संभव है, यह भी जीवन के रहस्यों का हिस्सा है। अगर सूरज से फूल जुड़ा है, तो यह कैसे हो सकता है कि सूरज भी फूल से न जुड़ा हो! सब जोड़ म्युचुअल होते हैं, पारस्परिक होते हैं। अगर मैं आपसे जुड़ता हूं तो आप मुझसे जुड़ जाते हैं। कौन जानता है कि अगर फूल न खिल सकते तो सूरज भी नहीं हो सकता था! इतना तो हम जानते हैं कि सूरज नहीं होगा तो फूल नहीं खिल सकेंगे। लेकिन जीवन के सब अंतर्संबंध पारस्परिक होते हैं। सारी चीजें जुड़ी हैं, संयुक्त हैं, इकट्ठी हैं। लेकिन हम तो चीजों को तोड़ कर देखते हैं। फूल को देख लेते हैं, बात समाप्त हो जाती है। फूल के सारे विस्तार को नहीं देखते, फूल की पूरी आत्मा को नहीं देखते। फूल की आत्मा में जड़ें भी होंगी, पृथ्वी भी होगी, सूरज भी होगा, और कौन कह सकता है कि और दूर के तारे नहीं होंगे! अगर हम एक छोटे से घास के फूल के प्राणों में भी प्रवेश करेंगे तो परमात्मा में प्रवेश हो जाएगा। चीजें इतनी संयुक्त हैं।
लेकिन हम तो फूल को तोड़ कर अपनी जेब में लगा कर घर आ जाते हैं। हम उस आदमी को कहते हैं फूलों का प्रेमी जो फूल को देख कर जल्दी से तोड़ कर खीसे में लगा लेता है। यह आदमी फूलों का प्रेमी कतई नहीं है। इसे फूल के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। और जो प्रेम करता है वह तोड़ कैसे सकता है? एक बच्चा आपको बहुत प्रिय मालूम होता है, उसकी गर्दन तोड़ कर आप घर में गुलदस्ते में नहीं सजा लेते हैं। कि यह बच्चा हमें बहुत प्यारा लगा तो इसकी गर्दन तोड़ कर हमने गुलदस्ते में सजा ली है।
लेकिन ऐसे लोग भी हुए हैं--नादिर, या चंगीज, या तैमूरलंग। नादिर जिस नगर में जाता वहां छोटे-छोटे खूबसूरत बच्चों की गर्दनें कटवा लेता, भालों में छिदवा देता, जुलूस निकलवाता। खुद चलता आगे, दस हजार बच्चों की गर्दनें भालों में छिदी हुई चलतीं। वह बच्चों को प्रेम करने वाला था। अगर आप फूल को प्रेम करने वाले हैं तो वह बच्चों को प्रेम करने वाला था। लेकिन आप जानते हैं कि यह बच्चों को प्रेम करने वाला आदमी नहीं है। आप भी फूल को प्रेम करने वाले आदमी नहीं हैं।
फूल को प्रेम वह करता है जो फूल की आत्मा में प्रविष्ट हो जाता है। और
जो फूल की आत्मा में प्रविष्ट होगा वह पाएगाः धीरे-धीरे फूल तो विलीन हो गया, और गहरा जगत प्रकट होने लगा--जड़ें दिखाई पड़ने लगीं; फिर जड़ें भी विलीन हो गईं, पृथ्वी दिखाई पड़ने लगी; फिर पृथ्वी भी विलीन हो गई और सूरज दिखाई पड़ने लगे; फिर सूरज भी विलीन हो गया और सारा ब्रह्मांड एक फूल के द्वार से चेतना को घेर लिया।
एक फूल परमात्मा का द्वार बन सकता है। किसी की आंख में झांक कर कोई परमात्मा तक पहुंच सकता है। किसी एक व्यक्ति को प्रेम करके कोई समग्र परमात्मा को उपलब्ध हो सकता है। कोई गीत की एक छोटी सी कड़ी, संगीत का कोई छोटा सा स्वर, वीणा पर किसी के हाथ की छोटी सी झनक, सारे जगत को अपने में समाए हुए है। एक वीणा पर जिसने जरा सी चोट कर दी है, तार झनझना कर शांत हो गए हैं। इस झनझनाहट में सारे ब्रह्म का साथ है, सारे ब्रह्मांड का साथ है, अन्यथा यह झनकार नहीं हो सकती थी। यह झनकार कभी नहीं होती।
लेकिन यह हमें नहीं दिखाई पड़ता। हम चीजों को उनके खंडों में पकड़ते हैं, इसलिए जीवन का रहस्य व्यर्थ हो जाता है।
दूसरा सूत्र हैः जीवन को उसकी अखंडता में, जीवन को उसकी टोटेलिटी में, उसकी होलनेस में, उसकी पूर्णता में जितना आप देखने में समर्थ होने लगेंगे, उतना ही आप पाएंगे कि जीवन अत्यंत विस्मय के मार्गों पर ले जाता है। सब विस्मय हो जाता है, चकित खड़े रह जाते हैं, हैरान हो जाते हैं। क्योंकि फिर समझ के पार हो जाती है बात, बियांड अंडरस्टैंडिंग हो जाती है बात।

एक फूल को तो हम समझ सकते हैं। एक वनस्पति शास्त्री से पूछें कि फूल क्या है? वह कहेगा, फूल? कुछ थोड़े से केमिकल्स, कुछ थोड़े से खनिज पदार्थ, इनका जोड़ है। यह एनालिसिस हुई, यह विश्लेषण हुआ।
एक कवि से पूछें। तो वह कहेगा, फूल? फूल मुझे अपनी प्रेयसी की आंखों की याद दिलाता है। यह काव्य हुआ, फूल यहां सिंबल हो गया।
एक धार्मिक व्यक्ति से पूछें। वह कहेगा, फूल? फूल मेरे लिए समग्र है, फूल मेरे लिए परमात्मा है। यहां फूल का न तो विश्लेषण हुआ, न तो फूल खनिज और केमिकल्स रह गया, न फूल सिंबालिक प्रतीक बन गया अपनी प्रेयसी की आंखों का। फूल यहां अपनी पूरी वास्तविकता में, अपनी पूरी एक्चुअलिटी में, अपनी पूरी सचनेस में, फूल जैसा है अपनी परिपूर्णता में प्रकट होगा, तो फूल समग्र परमात्मा बन जाएगा। न तो उसका विश्लेषण होगा, न तो वह कुछ खनिज होगा, न केमिकल्स, न वह कोई प्रतीक होगा किसी की स्मृति का, वह समग्र जीवन का द्वार बन जाएगा।
वैज्ञानिक चीजों को तोड़ कर देखता है, इसलिए वैज्ञानिक के हाथ में चीजों की आत्मा पकड़ में नहीं आती। कवि चीजों को प्रतीक बना लेता है, इसलिए कवि के हाथों में भी जीवन की आत्मा पकड़ में नहीं आती। लेकिन उसे मैं धार्मिक, उसे मैं रिलीजस माइंड कहता हूं, जो चीजों को उनकी समग्रता में, वह जो एक इनर कॉरसपांडेंस है, वह जो चीजें भीतर से कहीं जुड़ी हैं, जुड़ी हैं, जुड़ी हैं, एक बड़ा जोड़ है, उस जोड़ में जो देख पाता है उस व्यक्ति के सामने संपूर्ण रहस्य प्रकट होता है।
तो चीजों को खंड-खंड में देखने की आदत रहस्य की शत्रु है। अगर रहस्य
को विकसित हुआ देखना है तो चीजों को अखंड देखने की क्षमता, विस्तार में अखंड। दो तरह की अखंडताएं--समझने के लिए दो तरह की, एक ही तरह की होगी, लेकिन समझने के लिए दो रूप हैं--एक तो विस्तार में, एक्सटेंशन में। जैसा मैंने कहा, एक फूल आकाश के तारों से जुड़ा है, सूरज से जुड़ा है, पृथ्वी से जुड़ा है। यह तो विस्तार हुआ, यह तो स्पेस में, क्षेत्र में जोड़ हुआ। दूसरा जोड़ टाइम में है--पीछे और आगे।
आप हैं। आप सिर्फ इसीलिए हैं कि आपके पहले कोई था--आपके पिता थे, आपकी मां थी। आपके पिता और मां नहीं होते तो आप नहीं होते। आपके होने में आपके पिता और मां का होना अंतर्गर्भित है, वह मौजूद है। जैसे फूल के होने में जड़ें मौजूद हैं। जड़ें दिखाई नहीं पड़ रहीं। और आपके मां और पिता भी नहीं होते अगर उनके मां और पिता नहीं होते। और अगर हम इस पीछे की यात्रा में उतर जाएं तो हम कहां पहुंचेंगे? हम पाएंगेः एक अनंतशृंखला पीछे की तरफ चली गई है, जिसका कोई छोर नहीं है। आपके होने में वह सारी अनंतशृंखला मौजूद है। उसमें एक भी कड़ी खो जाएगी तो आप नहीं हो सकेंगे।
तो जब मैं आपको देखता हूं, अगर आपके भीतर उतरूं, तो जैसे फूल के भीतर
हम उतरे, तो हम चांद-तारों तक पहुंच गए, अगर आपके भीतर हम उतरें, तो एक अनंत, सारा इतिहास, सारी हिस्ट्री, जीवन का सारा अतीत, सब जो बीत गया, वह एक अनिवार्यशृंखला में जुड़ा हुआ दिखाई पड़ेगा। और ज्ञात होगाः वह सब आपके भीतर मौजूद है, क्योंकि उसके बिना आप नहीं हो सकते थे। आप उस सब को अपने भीतर समेटे हुए हैं। तब एक छोटा सा आदमी भी छोटा सा आदमी नहीं रह जाता, एक अनंत इतिहास का हिस्सा हो जाता है। यह आदमी नहीं हो सकता था अगर राम और कृष्ण नहीं होते; अगर बुद्ध और महावीर नहीं होते तो यह आदमी नहीं हो सकता था। दुनिया जैसी थी अगर उसमें जरा सा फर्क होता तो यह आदमी नहीं हो सकता था। इस आदमी के पीछे सारा इतिहास जुड़ा है। एक-एक टुकड़े के पीछे सारा अनंत इतिहास जुड़ा है।
और इस टुकड़े के साथ अनंत भविष्य भी जुड़ा है, इस टुकड़े के भीतर अनंत भविष्य भी छिपा है। एक बीज मैं आपको भेंट कर दूं। बीज क्या है? एक अनंत संभावना है। उसे आप घर जाकर बो देंगे और एक वृक्ष निकलेगा; और वृक्ष में फूल आएंगे और फूलों में बीज लग जाएंगे; एक बीज में अनंत बीज निकल आएंगे। फिर उन अनंत बीजों को हम बो दें, तो एक-एक बीज में फिर पौधे होंगे, एक-एक पौधे में फिर अनंत बीज होंगे। इस एक छोटे से बीज में कितने बीजों की संभावना छिपी है, कोई कैलकुलेशन, कोई गणित कभी बता सकेगा? कभी भी नहीं बता

सकेगा। एक छोटे से बीज में अनंत बीजों की संभावना छिपी है। एक छोटे से आदमी में सारी मनुष्यता छिपी है। एक छोटे से रेत के टुकड़े में सारे जगत के पर्वत छिपे हैं। एक छोटी सी पानी की बूंद में सारे जगत के अनंत सागर छिपे हैं।
लेकिन यह हमें नहीं दिखाई पड़ता, इसलिए हमें रहस्य का बोध नहीं होता है।
दूसरी दिशा हैः पीछे-आगे, समय की, काल की, टाइम की। इस दूसरी दिशा में
भी अनंतशृंखला है। सब चीजें संयुक्त हैं। सारा अतीत सिकुड़ कर आ गया है वर्तमान में। और सारा भविष्य छिपा है वर्तमान के गर्भ में, वह सब प्रकट होगा, अनफोल्डमेंट होता रहेगा। अगर हम चीजों को इस भांति देख सकें, अगर चीजों को हम इस भांति आंख खोल सकें, तो क्या आप सोचते हैं कि रहस्य के द्वार नहीं खुल जाएंगे?
एक छोटी सी घटना से मैं समझाने की कोशिश करूं।
एक छोटे से गांव में एक बूढ़ा किसान था। उस बूढ़े किसान के पास एक बहुत कीमती घोड़ा था। उस घोड़े की दूर-दूर तक प्रशंसा थी। दूर-दूर से बड़े-बड़े सम्राट भी उस घोड़े को मांगने आए। और उन्होंने कहा, जो भी दाम लेना हो ले लो। यह घोड़ा राजमहलों में रहने के योग्य है। तुम किसान, तुम्हारे झोपड़े में इसे क्यों बांध रखा है? तुम जो भी मांगोगे वह मूल्य हम देंगे। लेकिन उस किसान ने कहा, प्रेम बेचा नहीं जाता। इस घोड़े से मुझे प्रेम है। और उस किसान ने कहा, जहां प्रेम है वहां महल है और जहां प्रेम नहीं पैसा है वहां महल कहां? यह झोपड़ा इस घोड़े के लिए महल है, क्योंकि मेरे हृदय में इसके लिए प्रेम है। और मैं इसे बेचने में असमर्थ हूं, क्योंकि प्रेम को बेचा कैसे जा सकता है? अगर दुनिया में कोई एक चीज है जो नहीं बेची जा सकती तो वह प्रेम है। और सब कुछ बेचा जा सकता है, खरीदा जा सकता है।
अब ऐसे आदमी से क्या करते! राजा थक गए और उस घोड़े की फिक्र छोड़ देनी पड़ी। वह बूढ़ा अस्सी साल का बूढ़ा था। उसका एक जवान लड़का था, वही बुढ़ापे में उसकी सेवा करता है। लेकिन दूर-दूर से यात्री उस घोड़े को देखने जरूर आते थे। वह ऐसा ही शानदार जानवर था। उसकी जवानी, उस घोड़े की परुषता, उसका बल, वह देखने ही जैसा था।
लेकिन एक रात वह घोड़ा पता होता है कहीं खो गया या चोरी चला गया। अस्तबल सुबह पाया तो खाली था। जब वह बूढ़ा सुबह उठ कर पहुंचा तो अस्तबल खाली था, घोड़ा वहां मौजूद नहीं था। गांव के लोगों को बिजली की तरह खबर दौड़ गई, लोग सुबह ही सुबह इकट्ठे हो गए और कहने लगे, यह तो बहुत बुरा हुआ, यह तो बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण हुआ; जिस घोड़े के लाखों रुपये मिल सकते थे वह चोरी चला गया। वे उस बूढ़े को सांत्वना देने लगे कि दुख न करो। अब जो हुआ सो हुआ, भाग्य की बात है।
लेकिन वह बूढ़ा कहने लगा, दुख की बात इसमें कहां? और कौन कहता है कि बुरा हुआ? हम कुछ भी नहीं जानते हैं कि बुरा हुआ कि भला हुआ। तथ्य, फैक्ट केवल इतना है कि घोड़ा रात अस्तबल में था, अब अपने अस्तबल में नहीं है। इससे ज्यादा कुछ भी कहना उचित नहीं है। जीवन बड़ा रहस्यपूर्ण है। यह अच्छा हुआ कि बुरा हुआ, यह परमात्मा जानता होगा जो पूरे जीवन को जानता है। पूरे जीवन के अतीत को जानता है और पूरे जीवन के भविष्य को, अगर कहीं कोई ऐसा परमात्मा है, तो वह जानता होगा कि बुरा हुआ कि भला हुआ। हम कुछ भी नहीं कह सकते कि क्या हुआ।
गांव के लोगों ने कहा, इसमें इतनी दर्शन की जोड़ने की कोई जरूरत नहीं, सीधी सी बात है, कीमती घोड़ा था, चोरी चला गया और बुरा हुआ।
लेकिन पंद्रह दिन बाद ही गांव के लोगों को क्षमा मांगनी पड़ी। वह घोड़ा वापस लौट आया। वह जंगल भाग गया था। और उसके साथ पंद्रह जंगली घोड़े भी वापस लौट आए। गांव के लोगों में फिर खबर पहुंच गई कि घोड़ा वापस आ गया, पंद्रह जंगली घोड़े भी वापस आ गए। वे पंद्रह जानवर भी एक से एक शानदार जानवर थे। उन्होंने बूढ़े से कहा, तुम ठीक कहते थे, हमारी गलती थी, हम माफी मांगते हैं। यह तो बहुत अच्छा हुआ।

बूढ़े ने कहा, तुम फिर गलती कर रहे हो। यह मत कहो कि अच्छा हुआ, क्योंकि हमें कुछ भी पता नहीं कि क्या हुआ। इतना ही कहो कि घोड़ा आ गया, पंद्रह घोड़े साथ आ गए। इतने दूर तक तो तथ्य है, इसके बाद कल्पना शुरू हो जाती है। कल्पना मत जोड़ो! मत कहो कि अच्छा हुआ। कौन जाने क्या हो! क्या छिपा हो इनके आने में!
लोगों ने कहा, अब व्यर्थ की बातें मत करो, नगद फायदा है। पंद्रह घोड़े
भी साथ आ गए हैं, शानदार जानवर हैं, थोड़े दिन में चलना सीख जाएंगे, विक्रय के योग्य हो जाएंगे।
लेकिन पंद्रह दिन बाद गांव के लोगों को फिर क्षमा मांगनी पड़ी। जंगली घोड़े को चलाने के लिए बूढ़े का जवान लड़का कोशिश कर रहा था चाल सिखाने की, उस पर से गिर पड़ा, उसके दोनों पैर टूट गए। उस लड़के की शादी होने वाली थी। लड़की वाले ने इनकार कर दिया कि पैर टूटे लड़के से शादी नहीं हो सकेगी। बूढ़ा बहुत बूढ़ा था। वह लड़का ही सहारा था, वही सेवा करता था। उलटी स्थिति हो गई कि बूढ़े को लड़के की सेवा करनी पड़ेगी। और लड़के के पैर ठीक होंगे कि नहीं होंगे, नहीं कहा जा सकता, चोट भारी थी।
गांव के लोगों ने कहा, तुम ठीक कहते थे, यह तो बहुत बुरा हुआ, यह तो दुर्भाग्य हुआ। ये घोड़े क्या आए, तुम्हारे जीवन का सहारा टूट गया, यह लड़का लंगड़ा हो गया। अब क्या होगा?
बूढ़े ने कहा, तुम मानते ही नहीं, तुम पुरानी आदत दोहराए चले जाते हो। इतना ही कहो कि कल तक लड़के के पैर ठीक थे, अब पैर टूट गए। इतना तो ठीक है, इसके आगे मत कहो कि क्या अच्छा हुआ, क्या बुरा हुआ। हम कुछ भी नहीं जानते। जीवन बहुत मिस्टीरियस है। जीवन बहुत रहस्यपूर्ण है। कुछ पता नहीं कि क्या हुआ, क्या होगा।
लोगों ने कहा, अब तो कुछ गुंजाइश ही नहीं कहने की। जवान लड़के के पैर टूट गए हैं और तुम दर्शन की बातें करते हो!
लेकिन पंद्रह दिन बाद गांव के लोगों को फिर क्षमा मांगनी पड़ी। पंद्रह दिन बाद ही गांव के ऊपर हमला हो गया पड़ोस के राजा का। और गांव के सब जवान लड़के जबरदस्ती मिलिट्री में भर्ती कर लिए गए, सिर्फ उस बूढ़े का लड़का छोड़ दिया गया। लंगड़े की क्या जरूरत थी वहां!
गांव के लोग इकट्ठे हुए और कहने लगे, यह तो बहुत, बहुत ही अच्छा हुआ, तुम्हारा सौभाग्य कि लड़के के पैर टूट गए। लड़का घर में तो है, लंगड़ा है तो क्या हुआ। हमारे लड़के तो गए और उनके लौटने की कोई संभावना नहीं। युद्ध भयानक है, शत्रु मजबूत है, लड़के वापस नहीं लौट सकेंगे, उनकी मृत्यु निश्चित है। यह तो तुम्हारे लिए बहुत ही अच्छा हुआ।
वह बूढ़ा कहने लगा--खूब हंसने लगा और कहने लगा--कि तुम बाज नहीं आते। तुम अपनी आदत से बाज नहीं आते, तुम यही कहे चले जाते हो। इतना ही कहो कि तुम्हारे लड़के चले गए युद्ध पर, मेरा लड़का नहीं गया। लेकिन अच्छा हुआ कि बुरा हुआ, कोई भी नहीं जानता है।
जीवन के रहस्य को केवल वे ही अनुभव कर सकते हैं, जो जीवन की यह जो अनंतशृंखला है--अज्ञात, अनजान--इसके प्रति जिनका बोध सजग हो जाए। जीवन के तथ्य कोई भी हमें ज्ञात नहीं हैं। कोई उपाय ही नहीं है कि जीवन के सारे तथ्यों की अनंतशृंखला को हम कभी भी जानने में समर्थ हो सकेंगे। कोई मार्ग भी नहीं है। कब क्या बुरा हुआ और कब क्या भला हुआ, नहीं कहा जा सकता इस सारी अनंत टोटेलिटी में।
गांधी का होना अच्छा था कि गोडसे का होना, कहना बहुत मुश्किल है। जीसस क्राइस्ट के उपदेश अच्छे थे कि सूली पर लगा देने वाले लोग, इस जीवन की अनंतशृंखला में कहना बहुत मुश्किल है। साधुओं के द्वारा जगत में भली बातें उतरती हैं या बेईमानों के द्वारा, कहना बहुत मुश्किल है। जजमेंट सब अधूरे और बचकाने हैं। जजमेंट सब, निर्णय सब बहुत ऊपर से लिए गए हैं। घोड़ा चोरी चला गया तो बुरा हो गया। पंद्रह घोड़े वापस लौट आए तो अच्छा हो गया। लड़के की टांग टूट गई तो बुरा हो गया। लड़का सेना में जाने से बच गया तो भला हो गया। सब निर्णय, सारी मनुष्यता के सारे निर्णय इतने ही ओछे और थोथे और व्यर्थ हैं।

कोई भी नहीं जानता कि इस जगत में जो भी सौंदर्य है, जो भी सुख है, वह किनके कारण है। वह राम के कारण है या रावण के कारण, कोई भी नहीं जानता। कोई भी नहीं जानता किसकी पूजा करो--राम की कि रावण की। कौन जाने राम भी इसलिए हो पाते हैं क्योंकि रावण है, नहीं तो राम भी न हो पाएं। कौन जाने कि गांधी इसलिए हो पाते हैं कि गोडसे है, नहीं तो गांधी भी न हो पाएं। कोई भी नहीं जानता।
नहीं जानते हैं हम, इस बात की जितनी गहरी और प्रगाढ़ हमारी स्थिति होगी, उतना ही जीवन हमारे लिए रहस्यपूर्ण हो जाएगा। निर्णय लेना बंद हो जाएगा। अनिर्णीत, बिना निर्णय के जीवन को हम देखने में समर्थ हो जाएंगे। और जिस दिन जीवन को हम बिना निर्णय के, बिना जजमेंट के, बिना न्यायाधीश बने... ।
हम रोज जीवन के न्यायाधीश बन जाते हैं बिना किसी के पूछे। किसने हमें जीवन का न्यायाधीश बनाया? किसने हमें कहा कि तुम जीवन का निर्णय लो? किसने हमें जीवन की अदालत में बिठाया? हम सब अपने ही हाथों स्वनिर्मित न्यायाधीश बन जाते हैं, जीवन का निर्णय लेते हैं। और ये सब निर्णय जीवन के रहस्य को नष्ट कर देते हैं।
केवल वे ही लोग रहस्य को जान सकते हैं--वह जो मिस्टीरियस है, वह केवल उन्हीं प्राणों को आंदोलित करेगा--जिनके पास कोई निर्णय नहीं, जो जीवन को मौन, चुप उसकी अनंत अज्ञातता में देखने को तत्पर और तैयार हो जाते हैं। एक छोटी सी घटना, और मैं अपनी बात पूरी करूं।
जीसस क्राइस्ट एक गांव के बाहर ठहरे हुए हैं। एक छोटी सी नदी है, नदी
के किनारे पर पत्थर ही पत्थरों का ढेर है, वे रेत में बैठे हैं। शायद बहती हुई नदी को देखते हों या सांझ सूरज को डूबते हुए को देखते हों या कुछ भी न करते हों, मौन बैठे हों। और तभी गांव से एक बड़ी भीड़ चली आई। और वह भीड़ बड़ा शोरगुल कर रही है और बड़े अपशब्द बोल रही है, और साथ में एक जवान स्त्री को घसीट रही है। फिर वह भीड़ आ गई है जीसस क्राइस्ट के पास और कहने लगी है जीसस से कि सुनते हैं, इस स्त्री ने व्यभिचार किया है। और हमारी पुरानी किताब कहती है--धर्म की पुरानी किताब कहती है--कि जो स्त्री व्यभिचारिणी हो उसे पत्थर मार-मार कर मार डालना चाहिए। आपकी क्या आज्ञा है?
वे लोग बड़े मतलब से आए हैं। वे उस स्त्री को भी मारना चाहते हैं और जीसस को भी फंसाना चाहते हैं। वे यह सोच कर आए हैं कि अगर जीसस कहेंगे कि नहीं-नहीं, स्त्री को पत्थर से मत मारना। क्योंकि जीसस तो यह कहते हैं कि बुराई का प्रतिरोध मत करो। रेसिस्ट नाट ईविल! जीसस तो यह कहते हैं, बुराई से भी मत लड़ो। और जीसस तो यह कहते हैं कि तुम्हारे गाल पर जो एक चांटा मारे, दूसरा गाल भी उसके सामने कर देना। और जीसस तो यह कहते हैं कि अगर कोई तुमसे कहे कि अपना कोट दे दो, तो कमीज भी दे देना। और जीसस तो यह कहते हैं कि कोई तुमसे कहे कि मेरा बोझ एक मील ढोकर चलो, तो तुम दो मील तक ढो देना। तो जो आदमी यह कहता है, यह आदमी किसी स्त्री को पत्थर मार-मार कर मार डालने की आज्ञा नहीं देगा। और अगर इसने यह आज्ञा न दी, तो हम कहेंगे, तुम हमारी पुरानी किताब के खिलाफ हो। तुम धर्म के शत्रु हो। क्योंकि यह धर्म की किताब है और इसमें लिखा है कि जो तुम्हारी एक आंख फोड़े, उसकी तुम दोनों फोड़ देना। इसमें लिखा है कि जो तुम्हें ईंट मारे, तुम पत्थर से जवाब देना। और इसमें लिखा है कि जो व्यभिचार करे, उसे पत्थरों से ठोंक-ठोंक कर उसके प्राण ले लेना। तो या तो तुम कहो कि यह ठीक है किताब। और अगर यह ठीक है तो तुम्हारे सारे उपदेश व्यर्थ। और या तुम कहो कि तुम जो कहते हो वह ठीक है। तो यह किताब गलत है। तो हमारे सारे पैगंबर पागल थे, गलत थे, नासमझ थे। तुम ही एक समझदार पैदा हुए हो?
पुरानी किताबों के मानने वाले हमेशा यह कहते हैं कि तुम ही एक समझदार पैदा हुए हो? हमारे सब पैगंबर, तीर्थंकर गलत थे? नासमझ थे?
जीसस थोड़ी देर उनकी तरफ देखे और उन्होंने कहा, ठीक है, मैं भी कहता हूं, इस स्त्री ने अगर व्यभिचार किया है तो इसे पत्थरों से मार डालो। लेकिन एक शर्त और है मेरीः पत्थर मारने के अधिकारी केवल वे ही हैं जिन्होंने व्यभिचार कभी न किया हो और कभी व्यभिचार करने का विचार भी न

किया हो। पत्थर उठा लें वे लोग जिनके मन में व्यभिचार नहीं आया है कभी, वे इसे पत्थरों से मार डालें।
वे लोग पत्थर उठाए हुए खड़े थे, लेकिन जो भीड़ के सामने खड़े थे वे धीरे- धीरे पीछे सट गए। लोगों ने पत्थर हाथ से नीचे छोड़ दिए। भीड़ पीछे से खिसकनी शुरू हो गई। क्योंकि वहां एक भी आदमी नहीं था जिसने व्यभिचार न किया हो या व्यभिचार के सपने न देखे हों या व्यभिचार की कामना न की हो।
धीरे-धीरे भीड़ विदा हो गई, सांझ उतर आई, वह औरत अकेली बैठी रह गई, उसने जीसस के पैरों पर सिर रख दिया और उसने कहा कि मुझे सजा दें, मैंने पाप किया है।
जीसस ने कहा, मैं सजा देने वाला कौन? मैं निर्णय करने वाला कौन? मैं कैसे निर्णय करूं कि जो हुआ है वह पाप है या नहीं पाप है? तू जान, तेरा परमात्मा जाने। इसके बीच मुझे आने की कोई भी जरूरत नहीं। तू अपने घर जा। यह जो आदमी है, ऐसा आदमी तो जीवन के रहस्य को जान सकता है। जो कहता हैः मैं निर्णय लेने वाला कौन? मैं कौन हूं जो निर्णय लूं? जिस आदमी ने यह निर्णय ले लिया कि मैं कौन हूं कि निर्णय लूं, उस आदमी ने जीवन के रहस्य को जानने का निर्णय ले लिया। उसके लिए द्वार खुल जाएंगे। उसके लिए कोई अनजाने मार्ग प्रकट हो जाएंगे। वह तैयार हो गया, उसकी रिसेप्टिविटी उपलब्ध हो गई, उसकी ग्राहकता आ गई, उसकी पात्रता भर गई। अब वह तैयार है। अब जीवन कहीं से भी उसके लिए बच नहीं सकता। वह जीवन के भीतर प्रवेश कर जाएगा। लेकिन हम सारे लोग तो बिल्कुल उलटे लोग हैं। हमने तो हर चीज पर निर्णय
ले रखे हैं। और जिनको हम साधु-संत कहते हैं और जिनको हम अच्छे आदमी कहते हैं, वे लोग सबसे कम रहस्य को जान पाते हैं, क्योंकि वे सबसे बड़े निर्णायक हैं। वे जीवन में हर चीज का निर्णय कर रहे हैं। जिनको हम साधु-संत कहते हैं, उनसे ज्यादा कठोर, उनसे ज्यादा दुष्ट आदमी जमीन पर खोजने कठिन हैं। क्योंकि वे सब के निर्णायक हैं। वे सब का कंडेमनेशन, सबकी निंदा, सबके पाप का हिसाब-किताब उनके पास है।
एक पादरी एक चर्च में लोगों को समझा रहा था कि तुम ये-ये पाप करोगे तो तुम्हें नरक में ये-ये सजाएं भोगनी पड़ेंगी। तेल के कड़ाहों में जलाए जाओगे, कीड़े-मकोड़े तुम्हारे शरीर को छेद-छेद कर देंगे। प्यास से तड़पोगे, नदी सामने होगी, लेकिन पानी नहीं पी सकोगे, मुंह बंद होगा। सब तरह के कष्टों का वर्णन कर रहा था। फिर उसने आखिर में यह कहा, इतनी कड़क सर्दी होगी वहां कि तुम्हारे दांत कड़कड़ाएंगे, इतनी पीड़ा होगी वहां कि तुम्हारे दांत किसमिसाएंगे। तो एक आदमी ने खड़े होकर कहा, माफ करिए, मेरे दांत सब टूट गए हैं, मेरा क्या होगा? उस पादरी ने कहा, बेफिक्र रहो, नकली दांत प्रोवाइड किए जाएंगे, वहां नकली दांत दिए जाएंगे, ताकि उनको तुम पहन लो, किड़किड़ाओ, घबड़ाओ।
नरक का इंतजाम कर रखा है। नरक का जिन्होंने इंतजाम किया है और नरक की जिन्होंने कल्पना की है, ये कैसे लोग होंगे? ये लोग धार्मिक हो सकते हैं? ये लोग रिलीजस हो सकते हैं? और फिर अधार्मिक कौन होगा?
हिटलर को हम अधार्मिक कहते हैं। क्योंकि उसने कनसनट्रेशन कैंप बनाए। उसने कैदियों को बंद किया, उसने गैस चैंबर बनाए। उसने हजारों लोगों को एक-एक मकान में बंद करके गैस से जला दिया। इसको हम कहते हैं यह बड़ा पापी था। लेकिन जिन धर्मगुरुओं ने नरक की योजना की है, उनके सामने हिटलर भी फीका पड़ जाएगा। वहां हिटलर बहुत बचकाना मालूम पड़ेगा, उसके गैस चैंबर बहुत छोटे मालूम पड़ेंगे।
ये नरक की योजना करने वाले चित्त निर्णय लेने वाले चित्त हैं। वे अपने लिए तो स्वर्ग की व्यवस्था कर लेते हैं बड़ी सस्ते में। वे कहते हैं, चूंकि हम रोज सुबह उठ कर नमोकार मंत्र पढ़ते हैं, हम रोज सुबह उठ कर अल्लाह-अल्लाह कहते हैं, हम रोज सुबह उठ कर राम-राम जपते हैं, इसलिए हमको स्वर्ग मिलेगा। और जो अल्लाह-अल्लाह नहीं कहता, नमोकार नहीं पढ़ता, राम-राम नहीं जपता, यह नरक जाएगा और यह सारी योजना में भटकेगा।
अपने लिए उन्होंने बड़े सस्ते इंतजाम कर लिए हैं--क्योंकि हम उपवास करते हैं, क्योंकि हम कपड़े खादी के पहनते हैं, क्योंकि हम नंगे पैर चलते

हैं धूप में, क्योंकि हम बाल उखाड़ कर तोड़ते हैं, उस्तरों का उपयोग नहीं करते, क्योंकि हम पानी छान कर पीते हैं, क्योंकि हम यह करते हैं, क्योंकि हम वह करते हैं, इसलिए स्वर्ग के सारे सुख हमें उपलब्ध होंगे। और जो लोग यह नहीं करते, उनके लिए नरक की सारी पीड़ाएं इंतजाम कर रखी हैं।
लेकिन सबसे अदभुत बात यह है कि धार्मिक आदमी वह है जो निर्णय नहीं लेता किसी के ऊपर। जो किसी का निर्णायक नहीं बनता, वह तो रिलीजस माइंड है। एक सूफी फकीर औरत थी, राबिया। कुरान में कहीं एक वचन आता होगा कि शैतान को घृणा करो। राबिया ने वह वचन काट दिया कुरान से। एक फकीर "हसन" उसके घर मेहमान था। सुबह ही उठा कि कुरान पढ़ने लगा। देखा कुरान में वचन कटा हुआ है! अब इससे बड़ा पाप, इससे बड़ा कुफ्र और क्या हो सकता है कि कोई धर्मग्रंथों में सुधार कर दे! उसने कहा, राबिया, यह किसने पागलपन किया है? किताब को काटा है! धर्मग्रंथ का संशोधन नहीं किया जा सकता।
राबिया ने कहा, मैं मजबूरी में पड़ गई। जब तक मैं धार्मिक नहीं थी, मैं
इस वाक्य को पढ़ जाती थी, मुझे पता भी नहीं चलता था कि इसमें कोई भूल है। लेकिन जब से मेरे चित्त में परमात्मा की थोड़ी झलक आनी शुरू हुई, जब से मेरे जीवन में प्रार्थना और प्रेम का स्पर्श हुआ, जब से मैंने चारों तरफ फैले हुए जगत को आंख खोल कर देखा, तब से मैं मुश्किल में पड़ गई। यह वाक्य एक कांटे की तरह मुझे छिदने लगा। इसलिए मेरे मन में कांटे की तरह छिदने लगा कि मैं कौन हूं किसी को शैतान मानने का निर्णय लेने वाली? मैं कौन हूं कि मैं निर्णय करूं कि यह शैतान है? अगर शैतान भी है कहीं तो परमात्मा की मर्जी के बिना नहीं हो सकता है। इस टोटेलिटी की मर्जी होगी। इस समग्रता के भीतर वह भी पैदा होता है।
गुलाब के पौधे में फूल लगते हैं और कांटे भी। फूल के प्राणों में कांटों की भी कोई जगह होगी फूल के साथ ही साथ, अन्यथा कांटे नहीं लगते, फूल ही फूल लगते। फूल के प्राण कांटों को भी भेजते हैं और फूल को भी। फूल की समग्रता में, फूल के पौधे की समग्रता में कांटों का भी अपना स्थान, अपनी जगह, अपनी जरूरत है।
तो मैं नहीं जानती कि कौन शैतान है और कौन शैतान नहीं। पहली बात, मैं निर्णय लेने वाली कौन? और दूसरी बात, शैतान भी मेरे सामने खड़ा हो जाए तो मैं घृणा करने में असमर्थ हो गई हूं, मैं घृणा नहीं कर सकती हूं। मेरे भीतर प्रेम है। और घृणा तो मैं तभी कर सकती हूं जब मेरे भीतर घृणा हो, बिना घृणा हुए मैं घृणा कैसे करूं? शैतान भी मेरे सामने होगा तो मैं प्रेम ही करने को मजबूर हूं, मैं प्रेम ही कर सकती हूं। चाहे परमात्मा सामने हो और चाहे शैतान, मैं प्रेम ही कर सकती हूं। और मैं यह भी कह देना चाहती हूं, उसने कहा, कि प्रेम को पता नहीं चलता कि कौन कौन है। प्रेम को पता ही नहीं चलता कि कौन कौन है।
मजा है जीवन का बहुत, आश्चर्य है बहुत। हम इसलिए घृणा नहीं करते किसी
को कि वह शैतान है, असल में हम घृणा करना चाहते हैं इसलिए किसी को शैतान होने का निर्णय ले लेते हैं। हम इसलिए किसी को प्रेम नहीं करते कि वह प्यारा है, हम प्रेम करना चाहते हैं इसलिए प्यारा होने का निर्णय ले लेते हैं। उसके प्यारे होने के पहले हमारा प्रेम बहना शुरू हो जाता है। उसके शैतान होने के पहले हमारी घृणा बहनी शुरू हो जाती है। हमारी घृणा पहले है, उसका शैतान होना बाद में है, वह हमारी घृणा का निर्णय है। और किसी का प्यारा होना पीछे है, वह हमारे प्रेम का निर्णय है।
लेकिन जिसके हृदय में प्रेम ही प्रेम हो, उसके लिए कोई निर्णय नहीं रह जाता, उसके लिए कोई शैतान नहीं रह जाता, कोई परमात्मा नहीं रह जाता। धार्मिक व्यक्ति उसे मैं कहता हूं, जो निर्णायक के पद पर नहीं बैठता, जो जज होने से इनकार कर देता है, जो न्यायाधीश होने से इनकार कर देता है। उसके जीवन में रहस्य का अवतरण हो सकता है।
ये दो बातें मैंने कहीं। एकः जीवन की ताजगी, नयापन, जीवन का परिवर्तन, जीवन का रोज-रोज बदल जाना, प्रत्येक चीज का व्यक्तित्व, इसका बोध चाहिए। दूसरी बात मैंने कहीः जीवन की अनंतता, जीवन का विस्तार, जीवन की समग्रता का बोध चाहिए।

तीसरी बात मैंने कहीः निर्णय का अभाव, निर्णय नहीं। तो फिर--जहां निर्णय आया वहीं हम रुक जाते हैं, उसके आगे जाना बंद हो जाता है--जहां कोई निर्णय नहीं, वहां कोई सीमा नहीं, वहां हम गहरे, और गहरे, और गहरे जा सकते हैं।
और जीवन में इतनी गहराई है कि आप कितने ही गहरे चले जाएं, आप जीवन की तलहटी पर कभी नहीं पहुंच पाएंगे। जीवन में इतनी गहराई है कि आप कितने ही दूर चले जाएं, आप यही पाएंगे कि मैं अभी दो-चार कदम ही चला हूं, अभी अनंत कदम चलने को शेष है। कोई मनुष्य कभी भी वहां नहीं पहुंच सकता जहां वह कह सके कि जीवन का अंत आ गया, मैंने सब जान लिया। ऐसी कहीं भी कोई जगह नहीं है। यही है जीवन की अनंतता, यही है परमात्मा का असीम होना, यही है सत्य का विस्तार। इसीलिए तो हम इस सारे सत्य को ब्रह्म कहते रहे हैं। ब्रह्म का एक ही अर्थ होता हैः विस्तार, अनंत विस्तार। ब्रह्म कोई व्यक्ति नहीं, ब्रह्म कहीं कोई बैठी हुई शक्ति नहीं। ब्रह्म का अर्थ हैः इनफिनिट एक्सटेंशन। उसका अर्थ हैः अनंत विस्तार। विस्तार, और विस्तार, और विस्तार। कोई सीमा नहीं, कोई सीमा नहीं, कहीं कोई जगह नहीं जहां समाप्त हो जाता हो। सब जगह प्रारंभ है और अंत कहीं भी नहीं है। सब जगह केंद्र है और परिधि कहीं भी नहीं है।
इसका जो बोध होगा, इस तरफ जो यात्रा होगी, तो विस्मय में प्रतिष्ठा मिलती है। और विस्मय धार्मिक व्यक्ति का अनिवार्य लक्षण है।

और बहुत से प्रश्न रह गए, कुछ की कल सुबह हम बात कर सकेंगे। प्रश्न छूट जाते हों किसी के, तो उसे नाराज नहीं होना चाहिए। इसलिए कि मैं जो उत्तर देता हूं उनसे भी कोई उत्तर तो नहीं मिल जाएगा। मेरा उत्तर तो आपके मन में और प्रश्न पैदा कर सकेगा, तो सफल है। अगर उत्तर मिल गया, तो निर्णय पूरा हो गया, बात खत्म हो गई। तो मेरे सारे उत्तर की चेष्टा यह है कि और प्रश्न, और प्रश्न खड़े हो जाएं। एक दिन आप इतने प्रश्नों से घिर जाएं कि उत्तर एक न रह जाए और प्रश्न ही प्रश्न हो जाएं। तो विस्मय उपलब्ध हो जाएगा। तो मिस्ट्री खड़ी हो जाएगी। तो रहस्य खड़ा हो जाएगा।
मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। सबके भीतर छिपे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

माटी कहै कुम्हार सूं
दसवां प्रवचन

दुखवाद के प्रति विद्रोह

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक छोटी सी कहानी से मैं अपनी आज की बात शुरू करना चाहूंगा।
एक नया मंदिर निर्मित हो रहा था, सैकड़ों मजदूर उसे बनाने में लगे थे। नये पत्थर तोड़े जा रहे थे, नई मूर्तियां बनाई जा रही थीं। एक कवि भी भूला- भटका हुआ उस मंदिर के पास से गुजर गया। उसने एक पत्थर तोड़ते मजदूर से पूछा कि मेरे मित्र, क्या कर रहे हो?
उस मजदूर ने क्रोध से भरी हुई आंखें ऊपर उठाईं, तो उसकी आंखों में जैसे आग जलती हो, और उतने ही क्रोध से उसने कहा, क्या तुम अंधे हो? तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता कि मैं क्या कर रहा हूं? मैं पत्थर तोड़ रहा हूं। और वापस उसने पत्थर तोड़ना शुरू कर दिया। वह जैसे पत्थर न तोड़ता हो, पूरे जीवन से बदला ले रहा हो। वह जैसे पत्थर न तोड़ता हो, किसी प्रतिशोध में हो।
वह कवि आगे बढ़ गया और थोड़ी दूर पर दूसरे मजदूर से उसने पूछा--वह मजदूर
भी पत्थर तोड़ रहा था--उसने उससे पूछा कि मेरे मित्र, क्या कर रहे हो?
उस मजदूर ने अपनी उदास आंखें ऊपर उठाईं, उस कवि को देखा और फिर कहा, बच्चों के लिए रोटी-रोजी कमा रहा हूं। और उतनी ही उदासी से उसने फिर पत्थर तोड़ना शुरू कर दिया। जैसे जिंदगी में उसके कोई रस न हो, कोई आनंद न हो, कोई गीत न हो; जिंदगी में उसके कोई सौंदर्य न हो, कोई संगीत न हो, कोई सुख न हो। जीवन जैसे एक बोझ हो जिसे ढोना है और ढोए चले जाना है और समाप्त हो जाना है। उसका पत्थर तोड़ना ऐसा था, जैसे एक बोझ को कोई खींचता हो असमर्थता में, बेबसी में, मजबूरी में। जिस बोझ से बचने का कोई उपाय न हो, ऐसे वह पत्थर तोड़ रहा था।
वह कवि आगे बढ़ गया और उसने तीसरे मजदूर से पूछा। वह मजदूर भी पत्थर तोड़ रहा है। लेकिन वह पत्थर भी तोड़ रहा है और गीत भी गा रहा है। उसकी आंखों में जैसे एक चमक है, एक खुशी है, उसके प्राणों में जैसे कोई सुगंध है। वह जैसे किसी लोक में नृत्य कर रहा है। उस कवि ने उससे भी पूछा कि मेरे मित्र, क्या कर रहे हो?
उसने हंसती हुई आंखें ऊपर उठाईं और जैसे उसके शब्दों से फूल झर गए हों, उसने कहा, भगवान का मंदिर बना रहा हूं।
वे तीन मजदूर, तीनों ही पत्थर तोड़ते थे। वे तीनों ही एक ही काम करते
थे। लेकिन उनके काम को देखने की दृष्टि भिन्न थी। एक क्रोध, दुख और पीड़ा में। एक उदासी में, बोझ में, अर्थहीनता में। एक आनंद में, किसी मग्नता में, किसी समर्पण में। एक पत्थर तोड़ रहा था, एक रोटी-रोजी कमा रहा था, एक प्रभु का मंदिर बना रहा था। पत्थर तोड़ना आनंद का काम कैसे हो सकता है? और रोटी- रोजी कमाने में नृत्य कहां से आएगा? संगीत कहां से आएगा? लेकिन प्रभु का मंदिर बनाना निश्चित ही आनंद हो सकता है।
इस कहानी से इसलिए शुरू करना चाहता हूं कि जीवन के मंदिर में भी तीन तरह के लोग ही होते हैं। जीवन के मंदिर को बनाने में भी तीन तरह के मजदूर होते हैं। हम किस भांति के मजदूर हैं? हम पत्थर तोड़ रहे हैं, रोटी-रोजी कमा रहे हैं या प्रभु का मंदिर बना रहे हैं?
और स्मरण रहे कि हम जीवन को जिस भांति देखना शुरू करते हैं, जीवन वैसा
ही हो जाता है। जीवन अपने आप में बिल्कुल कोरी स्लेट है। हमारी दृष्टि उस पर कुछ लिखना शुरू करती है और वही लिख जाता है। जीवन कोरा कागज है, हमारे प्राण उस पर थिरकते हैं और कुछ लिख जाते हैं, वही हमारी कथा हो जाती है, वही हमारा जीवन हो जाता है। जीवन लेकर हम पैदा नहीं होते, जीवन को हम रोज निर्मित करते हैं। जीवन जन्म के साथ नहीं मिलता, मृत्यु के साथ उपलब्ध होता है। जीवन एक लंबी यात्रा है और इस लंबी यात्रा में रोज हम जैसा देखते हैं और जैसा निर्मित करते हैं वैसा ही निर्मित होता चला जाता है।
सारी दुनिया लेकिन दुख से भरी है और आदमी के प्राण अंधेरे से भरे हैं।
सब अर्थहीन, मीनिंगलेस मालूम होता है। सारे जगत में आदमी के प्राणों से

गीत खो गए हैं, अर्थ खो गया है, आनंद खो गया है, जीवन की पुलक खो गई है। क्यों खो गई है? क्या हो गया है?
एक बात हो गई है दुर्भाग्यपूर्णः हजारों साल की शिक्षा ने मनुष्य को दुखी होना सिखा दिया है। मनुष्य की दृष्टि को दुख से भर दिया है। आज तक पृथ्वी पर जीवन के आनंद को स्वीकार करने वाली शिक्षा पैदा नहीं हो सकी है। जीवन का विरोध करने वाली, जीवन का निषेध करने वाली, जीवन की निंदा करने वाली, जीवन को दुखपूर्ण सिद्ध करने वाली, जीवन छोड़ देने योग्य है यह समझाने वाली, जीवन के बाहर कहीं कोई मोक्ष है वहां चले जाना है, जीवन से मुक्त हो जाना है, ऐसा सिखाने वाली शिक्षा तो पृथ्वी पर रही। लेकिन पृथ्वी के जीवन को ही मोक्ष बना लेना है, जो उपलब्ध है उसे ही आनंद में परिवर्तित कर लेना है, ऐसा विज्ञान, ऐसी शिक्षा उत्पन्न नहीं हो सकी है। इसलिए मनुष्य की यह दुर्दशा हो गई है।
इस दुर्दशा में अतीत में दी गई दुखपूर्ण शिक्षा का हाथ है। हजारों साल से एक ही बात आदमी के मन पर ठोंकी जा रही है कि जीवन व्यर्थ है, असार है, माया है, बुरा है, छोड़ देने योग्य है, जीवन पाप है। केवल वे ही लोग पैदा होते हैं जिन्होंने पाप किए हैं। जो पाप नहीं करते वे जन्म नहीं लेते, वे मुक्त हो जाते हैं। पापी पैदा होते हैं, जीवन पापियों की जगह है। और जो पुण्यात्मा हैं वे मोक्ष चले जाते हैं, वे जीवन में वापस नहीं लौटते हैं। यही सिखाया जा रहा है कि आवागमन से मुक्त हो जाओ! जीवन से छूट जाओ! जीवन है जंजीर, जीवन से मुक्त हो जाओ!
यह शिक्षा इतनी विषाक्त, इतनी पाय.जनस, इतनी जहरीली है जिसका कोई हिसाब नहीं। और अगर इसने पूरी मनुष्यता के प्राणों से सारा आनंद छीन लिया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। यह होने ही वाला था। और एक बड़ा मजा है, आदमी के तर्क हमेशा विसियस सर्किल का रूप ले लेते हैं, हमेशा दुष्टचक्र बन जाता है। जीवन दुखपूर्ण है, इसलिए नहीं कि जीवन दुखपूर्ण है, इसलिए कि हम जीवन को आनंदपूर्ण बनाने की क्षमता और पात्रता उपलब्ध नहीं कर पाते हैं। जीवन दुखपूर्ण है, इसलिए नहीं कि जीवन का स्वभाव दुख है। जीवन दुखपूर्ण है, क्योंकि हम दुख भरी आंखों से जीवन को देखने की कोशिश करते हैं। हमारी दृष्टि की दुख भरी छाया सारे जीवन को अंधकारपूर्ण कर देती है।
एक अंधा आदमी खड़ा हो, सूरज निकला हो, रोशनी बरस रही हो, अंधे आदमी के लिए कोई रोशनी नहीं है। वह कहेगा, घनी अंधेरी रात है, अमावस मालूम होती है। सूरज का कोई कसूर नहीं, लेकिन अंधा आदमी, उसके पास आंख नहीं है।
लेकिन अंधे आदमी को क्षमा किया जा सकता है, उसका कसूर क्या, उसके पास आंख नहीं है। लेकिन जीवन के आनंद को न देख पाने में हम अंधे नहीं हैं, आंख वाले लोग आंख बंद किए हुए खड़े हैं। अंधे भी होते तो हमें क्षमा किया जा सकता था। आंख है और आंख बंद किए हुए खड़े हैं। एक दुष्टचक्र पैदा हुआ है। जीवन दुखपूर्ण मालूम होता है, क्योंकि जीवन को आनंद से कैसे देख पाएं उसकी कला का हमें कोई बोध नहीं है।
एक घर में, मैंने सुना है, सैकड़ों वर्षों से एक वीणा रखी हुई थी। वह वीणा घर में एक उपद्रव थी। क्योंकि घर में जब भी कोई गंभीर बात चलती होती, कोई बच्चा उस वीणा को छेड़ देता और बूढ़े नाराज होते कि यह शोरगुल क्यों मचा रखा है! बंद करो यह! घर में जब भी कोई मेहमान आता तो वीणा छिपा दी जाती कि कहीं कोई बच्चा उसके तारों को न छेड़ दे।
फिर घर के लोग तंग आ गए; कोई पूजा करता होता, बच्चे वीणा छेड़ देते; कोई बच्चा वीणा को गिरा देता, घर झनकार से भर जाता; बड़ा डिस्टरबेंस मालूम होता। रात लोग सोए होते, चूहे दौड़ जाते, बिल्लियां दौड़ जातीं, वीणा गिर जाती, आवाज हो जाती, घर भर में कोलाहल हो जाता, नींद टूट जाती। फिर आखिर घर के लोगों ने तय किया कि इस वीणा को यहां से हटा देना उचित है, यह बड़े उपद्रव की चीज हो गई है। और उन्होंने एक दिन घर के बाहर सुबह ही सुबह वीणा को ले जाकर कचरेघर में डाल दिया।
वे घर में वापस भी नहीं लौट पाए थे कि उनके पीछे ही कोई अदभुत स्वरों
की लहरी घर के भीतर प्रविष्ट होने लगी। कोई भिखारी रास्ते से गुजरता था, उसने वीणा उठा ली है और बजाने लगा है। वे ठगे रह गए, वे वापस लौट आए घर के

लोग और उन्होंने देखा कि उस कूड़ेघर के वृक्ष के पास बैठ कर कोई भिखारी वीणा बजा रहा है।
उनकी आंखों में आंसू आ गए और उन्होंने उस भिखारी से कहा, क्षमा करना! हमें पता नहीं था कि वीणा में इतना संगीत छिपा है! हमारे घर में तो एक उपद्रव का कारण थी यह, इसलिए हम इसे बाहर फेंक गए। तुमने हमारी आंखें खोल दी हैं।
लेकिन उस भिखारी ने कहा, वीणा में कुछ भी नहीं छिपा है, जैसी अंगुलियां लेकर आदमी वीणा के पास जाता है वही वीणा से प्रकट होने लगता है। जीवन की वीणा में भी कुछ भी नहीं छिपा है। हम जैसी अंगुलियां लेकर, जैसी दृष्टि लेकर जीवन के पास जाते हैं वही जीवन से प्रकट होने लगता है। हमारी अपात्रता है कि हम आनंद को जन्म नहीं दे पाते, वीणा से संगीत पैदा नहीं कर पाते; दोष वीणा को देते हैं। इस दोष से कोई वीणा से संगीत पैदा नहीं हो जाएगा। इस दोष से एक बात भर होगी कि जो अंगुलियां कुशल हो सकती थीं, वे कभी कुशल नहीं हो पाएंगी, क्योंकि दोष उस पर थोप दिया गया जिसका दोष न था। अंगुलियां थीं गैर-कुशल, अकुशल; और वीणा दोषी हो गई।
मनुष्य पात्रता पैदा नहीं कर पाया कि जीवन से संगीत उत्पन्न हो जाए।
और दोष दे दिया जीवन को कि जीवन है असार, जीवन है व्यर्थ, जीवन है दुख, जीवन है नरक, जीवन है छोड़ देने योग्य। और जब जीवन को छोड़ देने योग्य समझ लिया गया, जब वीणा को हम कचरेघर पर फेंक आए, तो अगर वीणा टूट जाए और अगर असार हो जाए, और अगर वीणा के तार बिखर जाएं तो आश्चर्य क्या है?
हजारों साल से जीवन उपेक्षित है, तो जीवन दुखपूर्ण होता चला गया। और
जब जीवन दुखपूर्ण होता चला गया तो हमारी शिक्षा सही मालूम होने लगी कि ठीक थे वे लोग जो कहते थे कि जीवन गलत है, जीवन बुरा है। ऐसा विसियस सर्किल पैदा हो गया। शिक्षा ठीक मालूम होने लगी, क्योंकि लोग ठीक थे।
यह शिक्षा गलत है और यह चक्र भी गलत है। धर्म असफल होता चला गया, क्योंकि धर्म का एक गलत एसोसिएशन हो गया, धर्म का एक गलत संबंध हो गया। दुखवादी शिक्षकों से धर्म के संबंध हो जाने के कारण दुनिया अधार्मिक हो गई। आनंद और आनंद की स्वीकृति जिनके मन में है वे ही लोग सम्यक धर्म को पृथ्वी पर वापस उतार सकते हैं।
लेकिन जो लोग दुखी हैं, पीड़ित हैं, चिंतित हैं, विक्षिप्त हैं, जिन्हें जीवन से कोई संगीत पैदा करने की क्षमता नहीं, वे सारे लोग क्रोध में, प्रतिशोध में जीवन को गाली देते हैं और जीवन को ही इनकार करने लगते हैं। यह हमारी सहज आदत है, यह हमारी आदत का हिस्सा है कि जब भी हम दोष देते हैं तो अपने को बचा लेते हैं, दोष हमेशा दूसरे को दे देते हैं। दो आदमी लड़ते हैं और दोनों तय करते हैं कि दूसरा जिम्मेवार है, मैं जिम्मेवार नहीं हूं।
जीवन से एक निरंतर हमारा संघर्ष चल रहा है। और हमेशा हम जीवन को जिम्मेवार ठहरा देते हैं, अपने को बचा लेते हैं। लेकिन इससे जीवन का कुछ भी नहीं बिगड़ता, हमारा सब कुछ नष्ट हो जाता है। जीवन दुख नहीं है, हमारे देखने की दृष्टि कहीं भूल भरी है, हम गलत जगह से खड़े होकर देख रहे हैं। हमारी अपनी देखने की क्षमता भ्रांत है। उस भ्रांत क्षमता के कारण सब भ्रांत दिखाई पड़ता है।
एक संध्या एक राजमहल में उस गांव के कुछ प्रतिष्ठित लोगों को भोजन पर आमंत्रित किया गया था। गांव का एक बूढ़ा धनपति, वह भी आमंत्रित था। वह सज-धज कर तैयार हो गया, उसकी बग्गी जुत कर तैयार हो गई, वह बैठने को था, तभी उसे ख्याल आया कि उसकी नास की डिबिया खाली है। उसने सोने की डिबिया निकाली और अपने लड़के को कहा कि तू शीघ्र जा, अच्छी से अच्छी नास, स्नफ खरीद ला, इस डिब्बी को भरवा ला। उसे पांच रुपये दिए।
वह लड़का भागा बाजार की तरफ। लेकिन रास्ते में एक खिलौनों की दुकान पर
एक नई छोटी खिलौना गाड़ी आई थी, उसके दाम पांच ही रुपये थे। और उस बच्चे का मन लालच से भर गया। बूढ़ों के मन तक खिलौनों के प्रति लालच से भर जाते हैं तो बच्चों का क्या? उस बच्चे का मन लालच से भर गया, वह लोभ से जाकर खड़ा हो गया दुकान पर। उसके पास पांच रुपये थे। उसने पांच रुपये दे दिए और खिलौना

गाड़ी खरीद कर वापस लौटने लगा। लेकिन तब उसे ख्याल आया कि घर जाकर तो बहुत मुसीबत हो जाएगी। नास कहां है? डिब्बी खाली है और पिता तैयार खड़े हैं राजमहल जाने को! क्या करूं, क्या न करूं?
तभी उसे रास्ते के किनारे घोड़े की लीद का ढेर पड़ा हुआ दिखाई पड़ा। उसने थोड़ी सी लीद उठा कर उस डिब्बी में भर दी। रंग बिल्कुल एक जैसा था और देखने से पहचानना कठिन था कि क्या है। जाकर उसने पिता के हाथ में डिब्बी दे दी, उन्होंने देखी, डिब्बी भरी थी, खुश, उन्होंने डिब्बी खीसे के भीतर रख ली। और वे राजमहल पहुंच गए।
फिर भोजन का पहला दौर चला। राजा के पास ही वह धनपति बैठा था। दौर के बाद उसने अपनी सोने की डिबिया निकाली और राजा को कहा कि थोड़ी सी नास लेंगे? लेकिन राजा ने कहा, अभी नहीं, थोड़ी देर बाद। तब उसने बड़ी चुटकी भरी और खुद नास ली। लेकिन नास लेते ही से उसने बड़ी ससपीशियस नजर से चारों तरफ देखा, बड़ा सूंघ कर पहचानने की कोशिश की--कि मामला क्या है? फिर उसने राजा से कहा, क्या आपको घोड़े की लीद की बास तो नहीं आती है कहीं? इट सीम्स फनी! बड़ा अजीब सा लगता है! डू यू स्मेल हॉर्स डंग? राजा ने कहा, नहीं-नहीं, यहां राजमहल में घोड़े की लीद की बास कहां!
फिर उसने डिब्बी बंद रख ली। लेकिन वह बार-बार सूंघ कर देखता रहा कि कहीं से घोड़े की लीद की बास चली आती है। फिर दूसरा भोजन का दौर चला। उसने बाद में फिर डिबिया निकाली, राजा को कहा, अब आप लेंगे? राजा ने अब की बार इनकार करना ठीक न समझा, उसने भी बड़ी चुटकी भरी और जोर से नास ली। नास लेते ही से वह भी फिर संदेह भरी नजरों से चारों तरफ झांकने लगा और उसने कहा कि आपकी नास बड़ी अदभुत मालूम होती है। मुझे भी घोड़े की लीद की दुर्गंध आने लगी!
उस भवन में और भी बहुत मेहमान थे, अगर उस नास को वे सभी सूंघ लेते तो उन सभी को उस भवन में घोड़े की लीद की दुर्गंध आने लगती। लेकिन वह कसूर उस भवन का न था। वह नास न थी, घोड़े की लीद ही थी।
इस सारे जीवन में चारों तरफ दुख दिखाई पड़ रहा है। यह जीवन की दुर्गंध नहीं है, यह हमने कोई दुख भरी शिक्षा की नास अपनी नाक में भर रखी है। इसलिए चारों तरफ हमें दुर्गंध मालूम पड़ रही है, चारों तरफ दुख मालूम पड़ रहा है। फिर जिसको दुख मालूम नहीं पड़ता, हम कहते हैं, तुम अभी नासमझ हो, जरा थोड़े दिन जिंदगी में जीओगे तो पता चल जाएगा। अभी जवान हो, अभी होश नहीं, जब बूढ़े होओगे तब पता चलेगा कि जिंदगी असार है। बूढ़े होते-होते तक वह भी नास चख लेगा, वह भी उन्हीं शास्त्रों को पढ़ लेगा और उन्हीं शिक्षकों के चरणों में बैठ जाएगा, वह भी उन मंदिरों और मस्जिदों में हो आएगा, जहां वह नास दुख की बिक रही है सारी दुनिया पर। बूढ़े होते-होते तक बचना बहुत मुश्किल है। बच्चे बच जाते हैं, थोड़े-बहुत दिन तक जवान बच जाते हैं, लेकिन बूढ़ा होते- होते तक बचना मुश्किल है। भोजन के एक दौर पर नास मत सूंघिएगा, दूसरे दौर पर मत सूंघिएगा, लेकिन कोई अगर पूछता ही चला जाएगा--कि नास लेंगे? नास लीजिएगा? फिर नास ले ही लेंगे आप। और पता चलेगा कि अरे, यह सारी जिंदगी बड़ी दुखपूर्ण मालूम पड़ रही है!
शिक्षाएं दुख भरी आदमी की छाती पर भारी पड़ गई हैं। और तरकीब है, जीवन
को दुख सिद्ध किया जा सकता है। जीवन को कुछ भी सिद्ध किया जा सकता है।
और एक बात स्मरण रखना आप, जो लोग अपने आनंद में लीन होते हैं उन्हें इसकी फिक्र ही नहीं होती कि वे किसी के सामने सिद्ध करने जाएं कि जीवन आनंद है।
कभी आपको पता चला? जब आप स्वस्थ होते हैं तो आपको पता भी नहीं चलता कि
आप स्वस्थ हैं। जब आप आनंदित होते हैं तो आपको पता भी नहीं चलता कि आप आनंदित हैं। जब आप प्रेम से परिपूर्ण होते हैं तो आपको पता भी नहीं चलता कि आप प्रेम से भरे हैं। लेकिन जब आप बीमार होते हैं तो पता चलता है कि मैं बीमार हूं। स्वस्थ होते हैं तो पता नहीं चलता।
जो आदमी आनंद में होता है उसे पता ही नहीं चलता कि वह आनंद में है। उसे
यह ख्याल भी नहीं आता कि वह सिद्ध करे कि जीवन आनंद है। जीवन आनंद है, इसे सिद्ध करने की कोई जरूरत नहीं रह जाती।

लेकिन जो लोग दुख में भरे होते हैं उनके सामने विकल्प हो जाता है खड़ा--
या तो वे यह मान लें कि वे गलत हैं इसलिए जीवन दुखपूर्ण मालूम पड़ रहा है या वे यह सिद्ध कर दें कि जीवन दुखपूर्ण है और तब अपनी आत्म-आलोचना से बच जाएं।
तो दुखी आदमी सिद्ध करने निकल पड़ता है कि जीवन दुखपूर्ण है; आनंदित लोग सिद्ध करने नहीं जाते कि जीवन आनंदपूर्ण है। इसलिए आनंद की शिक्षा विकसित नहीं हो सकी, दुख की शिक्षा विकसित हो सकी। दुख की शिक्षा इसलिए विकसित हो सकी कि दुख के लिए कोई आर्ग्युमेंट चाहिए, कोई वजह चाहिए। दुख को बिना वजह कोई भी स्वीकार करने को राजी नहीं है। आनंद को तो बिना वजह हम स्वीकार करते हैं। जब आप आनंदित होते हैं तब आप पूछते हैं किसी से कि आनंद क्यों है? कोई नहीं पूछता कि आनंद क्यों है। आनंद सहज स्वीकृत है, उसके लिए कोई कॉजलिटी नहीं मांगता।
जब आप स्वस्थ होते हैं तब आप पूछते हैं किसी से जाकर कि मैं स्वस्थ क्यों हूं? आप स्वास्थ्य को स्वीकार कर लेते हैं। कोई आर्ग्युमेंट, कोई प्रूफ, कोई प्रमाण की, किसी शास्त्र की, किसी शिक्षक की, किसी शास्ता की कोई भी जरूरत नहीं कि जीवन स्वस्थ क्यों है? आनंद क्यों है? लेकिन जब आप बीमार होते हैं तो आप पूछते हैंः मैं बीमार क्यों हूं? कॉजलिटी क्या है? कारण क्या है?
जब आदमी दुखी होता है तो पूछता है कि मैं दुखी क्यों हूं?
दो ही कारण हो सकते हैंः या तो मैं गलत आदमी हूं और या फिर जीवन दुख है। लेकिन मैं गलत आदमी हूं, यह अहंकार को स्वीकार नहीं होता। फिर एक ही रास्ता रह जाता है कि जीवन ही ऐसा है कि उसमें दुख होगा। इसमें मेरा और तेरा सवाल नहीं, जीवन दुख है।
इसलिए जीवन को दुख सिद्ध करने की चेष्टा चलती है और जीवन को दुखी सिद्ध करने के लिए दलीलें खोजी जाती हैं, तरकीबें खोजी जाती हैं, प्रमाण खोजे जाते हैं।
यह आश्चर्यजनक है लेकिन सत्य है कि जीवन जब भी वैसा होता है जैसा होना चाहिए, तो हम उसे जीते हैं, हम सिद्ध करने की चिंता में नहीं पड़ते हैं। लेकिन जीवन जब वैसा हो जाता है जैसा नहीं होना चाहिए, तो हम सिद्ध करने की कोशिश करते हैं, फिर जीने का तो कोई उपाय नहीं रह जाता है।
आनंद में जो हैं, वे जीवन को जीते हैं। दुख में जो हैं, वे जीवन को दुख है, ऐसा सिद्ध करते हैं। और एक विकल्प यह था कि वे स्वीकार करते कि मैं कुछ भूल में हूं, मैं कुछ भ्रांत हूं, मेरी कोई गलती है। लेकिन इसे कोई मानने को तैयार नहीं होता।
एक छोटा सा गांव। एक सुबह ही सुबह मैं उस गांव के द्वार पर खड़ा हूं। अभी गांव जगने के करीब है। एक बूढ़ा आदमी गांव का, गांव के बाहर बैठा है। एक बैलगाड़ी आकर रुक गई है। और उस बैलगाड़ी का मालिक पूछता है उस बूढ़े से, मैं इस गांव में निवासी बनना चाहता हूं, क्या बता सकते हैं इस गांव के लोग कैसे हैं
उस बूढ़े ने नीचे से ऊपर तक उस गाड़ी के सवार को देखा है और फिर कहा, इसके पहले कि मैं कुछ कहूं, मैं जान लेना चाहूंगा कि तुम जिस गांव को छोड़ कर आ रहे हो उस गांव के लोग कैसे थे? क्योंकि बिना उस गांव के बाबत जाने, इस गांव के बाबत कुछ भी बताना बहुत मुश्किल है।
मैं भी हैरान हो गया हूं, वह गाड़ी का सवार भी हैरान हो गया है। उस गांव
से क्या संबंध इस गांव के लोगों का? जिस गांव को वह आदमी छोड़ कर आ रहा है उस गांव के बाबत जानने की क्या जरूरत इस गांव के बाबत में बताने के लिए? लेकिन वह बूढ़ा बहुत समझदार है। उस आदमी ने यह सुनते ही कि उस गांव की चर्चा की गई, प्रश्न पूछा गया, वह क्रोध से भर गया। और उस आदमी ने कहा कि क्षमा करें, उस गांव की याद न दिलाएं, मेरा खून खौल जाता है। उस गांव जैसे दुष्ट लोग पृथ्वी पर कहीं भी नहीं हैं। उन दुष्टों के कारण ही तो मैं उस गांव को छोड़ कर आ रहा हूं। और कसम खाई है भगवान के मंदिर में... भगवान के मंदिर का उपयोग लोग कसमें खाने के लिए ही करते हैं, और किसी काम के लिए

करते भी नहीं... कसम खाई है कि जब तक उस गांव को जलवा नहीं दूंगा, तब तक चैन से नहीं रहूंगा।
उस बूढ़े आदमी ने कहा, मेरे मित्र, गाड़ी पर सवार हो जाओ। मैं सत्तर साल
से इस गांव को जानता हूं, इस गांव के लोग उस गांव से भी बदतर हैं। इस गांव में ठहरने की कोई जरूरत नहीं। तुम कोई और गांव खोज लो।
उसने गाड़ी आगे बढ़ा ली है। और वह बूढ़ा हंसने लगा और मुझसे कहने लगा, इस बेचारे को कोई भी गांव नहीं मिल सकता है जो अच्छा हो। और यह बात ही होती है कि एक घुड़सवार आकर रुक गया और वह पूछने लगा कि मैं इस गांव में निवासी बनना चाहता हूं, इस गांव के लोग कैसे हैं?
बूढ़े ने फिर वही पूछा, उस गांव के लोग कैसे थे जहां से तुम आते हो?
वह आदमी खुशी से भर गया, कोई धन्यवाद, कोई अनुग्रह उसकी आंखों में झलक आया, कोई स्मृति की सुगंध उसके चारों तरफ गूंज उठी और वह उसकी आंखों में आंसू भर आए और वह कहने लगा, उस गांव के लोगों की याद भी मेरे प्राणों को एक आतुर प्यास से भर देती है। उनको छोड़ना पड़ा, यह बिछोह भारी है। उस गांव जैसे प्यारे लोग कहां मिल सकेंगे! लेकिन अभागा था मैं, परिस्थितियां थीं कि मुझे गांव के बाहर रोटी-रोजी कमाने को निकलना पड़ा है। लेकिन सपना यही रहेगा मन में कि जब भी मौका मिले, वापस वहीं पहुंच जाऊं। मेरी कब्र वहीं बने, उसी गांव में। उस गांव जैसे प्यारे लोग कहीं भी नहीं हैं। क्या मैं इस गांव में रुक सकता हूं?
उस बूढ़े ने उठ कर उसे गले से लगा लिया और कहा, मैं सत्तर साल से इस गांव में हूं। तुम आओ, मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं, इस गांव के लोग उस गांव से भी अच्छे हैं।
तब मुझे दिखाई पड़ा कि वह बूढ़ा क्या कह रहा था। उस बूढ़े ने तो जीवन के दर्शन की सारी बात कह दी। जीवन वैसा हो जाता है जैसे हम हैं, गांव वैसा हो जाता है जैसा मैं हूं, सारी पृथ्वी वैसी हो जाती है जैसा मैं हूं, मैं ही विस्तृत होकर सारे जीवन का अनुभव बन जाता हूं।
लेकिन नहीं, मैं तो बिल्कुल ठीक हूं, जीवन दुख है, जीवन पाप है, जीवन असार है, जीवन माया है, जीवन निरर्थक है--इस दृष्टि को, इस फिलासफी को लेकर कोई भी व्यक्ति कभी प्रभु के द्वार में कैसे प्रवेश कर सकेगा? यह आदमी अगर परमात्मा के दरवाजे पर भी पहुंच जाएगा तो पाएगा कि दरवाजे में भूलें हैं। अगर यह परमात्मा के सिंहासन के पास पहुंच जाएगा तो पाएगा कि सिंहासन में गलतियां हैं। यह परमात्मा की शक्ल-सूरत में भी भूल खोजेगा। यह परमात्मा के उठने-बैठने में भी गलती देखेगा।
एक ऐसा आदमी था, उसके बाबत मैंने सुना है। उसने किसी की हत्या की थी, उसे फांसी की सजा हो गई थी।
अब हत्या वे ही लोग करते हैं जिनको यह भ्रम होता है कि हम ठीक हैं और दूसरा इतना गलत है कि उसे जीने का भी कोई अधिकार नहीं। हत्या वे ही लोग करते हैं। ये ही लोग जो जीवन को गलत कहते हैं, दूसरे को गलत कहते हैं, वे ही लोग हत्यारे भी सिद्ध होते हैं।
उसको फांसी की सजा हो गई। लेकिन फांसी की सजा भी उसको चेता नहीं पाई। उसे जब जेल के भीतर ले जाया जा रहा था अदालत से, तो उसने गुस्से में सुपरिनटेंडेंट को कहा कि ये कैसी हथकड़ियां हैं! इतनी वजनी! इतनी वजनी हथकड़ियों की क्या जरूरत है? उसने जाकर, कोठरी में जब उसे बंद किया जा रहा था, तो उसने लातें फेंकीं, चिल्लाया, कूदा कि इतनी छोटी कोठरी? उसे छह सप्ताह बाद फांसी हो जानी है। उसने जेल के अधिकारियों की नाक में दम ला दी। वे रोज प्रार्थना करने लगे कि छह सप्ताह जल्दी बीत जाएं। वह आदमी हर चीज में--रोटी तो फेंक देता, पानी तो लात मार देता, बिस्तर तो उठा कर उसने नीचे फेंक दिया कि यह कैसा बिस्तर है!
फिर आखिरी दिन सुबह उसे उठाया गया। उसने उठने से इनकार कर दिया। उसने कहा, नाश्ता कहां है? मैं बिना नाश्ता किए फांसी पर नहीं जा सकता। नाश्ता कहां है? उसके लिए दौड़ कर नाश्ता लाया गया। उसने नाश्ते में लात मार दी कि यह क्या सड़ा सामान ले आए हो, ठीक चीजें लाओ! मैं बिना ठीक चीजें खाए फांसी पर नहीं जा सकता। ठीक चीजें लाई गईं। उसे जेल से निकाल कर फांसी के तख्ते

पर ले जाया गया। वह जब सीढ़ियां चढ़ने लगा तख्ते की तो उसने कहा, सीढ़ियां हिलती हैं, इनसे अगर कोई गिर जाए तो उसकी जान निकल जाए। मैं इन सीढ़ियों पर नहीं चढ़ सकता। फांसी के तख्ते पर जा रहे हैं वह सज्जन। ये सीढ़ियां हिलती हैं, इनसे कोई गिर जाए तो उसकी जान खतरे में हो सकती है। मैं इन सीढ़ियों पर नहीं चढ़ सकता। बामुश्किल समझा-बुझा कर उसे सीढ़ियों पर चढ़ाया गया। उसने जाकर ऊपर, जो आदमी फांसी देने वाला था, जो जल्लाद था, उससे कहा कि यह कैसा सड़ा तख्ता रखा हुआ है! यह बिल्कुल भी सेफ नहीं मालूम होता, यह जरा भी सुरक्षित नहीं मालूम होता, कैसा तख्ता लगा रखा है? यह आदमी है, वह मरने के किनारे खड़ा है, लेकिन वह यह देख रहा है कि तख्ता गलत लगा रखा है। यह तख्ता ठीक होना चाहिए।
यह आदमी उन आदमियों कीशृंखला में है जो सारी चीजों को, सारे दोषों को जीवन भर, मृत्यु के क्षण तक थोपते चले जाते हैं--बाहर, बाहर, बाहर। जो एक बार भी यह नहीं पूछते अपने से कि कहीं मैं गलत तो नहीं हूं? जो एक बार भी जिनके मन में यह प्रश्न नहीं उठता कि कहीं मैं भूल में तो नहीं हूं?
मैं उस आदमी को धार्मिक कहता हूं जिसके मन में यह प्रश्न उठता है कि मैं गलत हो सकता हूं, मैं भूल में हो सकता हूं। जिस आदमी के मन में यह प्रश्न उठता है कि मैं गलत हो सकता हूं। इतनी बड़ी बस्ती को दोष देने की बजाय शायद यही उचित भी होगा कि मैं गलत होऊं। इतने बड़े जीवन की निंदा करने की बजाय यही कहीं ज्यादा आसान मालूम होता है कि मैं गलत होऊं।
लेकिन नहीं, इस अनंत जीवन पर दोष थोप देते हैं, अपने को बचा लेते हैं। कभी सोचते भी नहीं कि इसमें कोई प्रपोर्शन भी नहीं है, कोई अनुपात भी नहीं है। इतना अनंत जीवन चल रहा है, अनंत से अनंत तक चलता रहेगा। और यह जो इतना चलता है, निश्चित ही परमात्मा की स्वीकृति होगी इसके पीछे, अन्यथा यह चलेगा कैसे? यह स्वयं परमात्मा है, अन्यथा यह चलेगा कैसे?
लेकिन यह सारा जीवन है असार। यह जगत है छोड़ देने जैसा, भाग जाने जैसा,
मर जाने जैसा। ऐसे धर्म हैं, जो संथारा के लिए, मरने की भी आज्ञा देते हैं। जो कहते हैं कि अगर तुम मरना चाहो तो मर सकते हो। जीवन इतना बुरा है कि आत्महत्या को भी स्वीकार कर लेते हैं। क्या है यह? और जो नहीं इतना स्वीकार करते, वे भी संन्यास के नाम पर ग्रेजुअल स्युसाइड की आज्ञा देते हैं, धीरे-धीरे मरते जाने की। संन्यास का और मतलब क्या है--जिस संन्यास को हम जानते हैं--वह ग्रेजुअल स्युसाइड है। पहले पत्नी को छोड़ो, आधे मर गए। बच्चे छोड़ो, और मर गए। घर छोड़ो, और मर गए। सब छोड़ते चले जाओ, जब तक तुम्हें पता चले कि कुछ छोड़ा जा सकता है। आखिर में तुम बच जाओगे, उसको छोड़ दो, संथारा कर लो, मर जाओ।
यह रुग्ण और मृत्युवादी शिक्षण! जब जीवन दुख सिद्ध हो जाएगा तो अंतिम परिणाम यह होगा कि मृत्यु वरणीय और जीवन अवरणीय हो जाएगा। जीवन छोड़ने योग्य, अवांछनीय, त्यागने योग्य, और मृत्यु स्वीकार करने योग्य, मृत्यु वरण करने योग्य।
कैसा पागलपन है! कैसी विक्षिप्तता है! कैसी इनसेनिटी है! क्या सिखाया गया है यह आदमी को कि तुम जीवन को छोड़ो और भागो कब्र की तरफ--और एक बुनियाद पर कि जीवन बुरा है। और वह बुनियाद बिल्कुल ही दो कौड़ी की और गलत है।
आदमी गलत है, जीवन बुरा नहीं है। कौन कहता है जीवन बुरा है? आदमी गलत है, आदमी की साइकोलाजी गलत है, आदमी का चित्त गलत है। यह हो सकता है कि मैं गलत हूं, लेकिन जीवन को गलत कहने का मुझे क्या हक, क्या अधिकार है?
लेकिन नहीं, हम गांव बदलते हैं। दूसरे गांव चले जाएंगे, इस गांव के लोग गलत हैं। और हमें पता नहीं कि दूसरे गांव में हमें यही लोग मिलेंगे जो इस गांव में मिले थे।
अमेरिका में वे खोजबीन करते थे। जोर से तलाक बढ़ते चले जाते हैं, कोई चालीस प्रतिशत तलाकों की संख्या हो गई, तो वे खोजबीन करते थे। और उस खोजबीन में एक अजीब निष्कर्ष उनके हाथ में आया, जिसका किसी को ख्याल भी न था। एक आदमी जिंदगी में आठ तलाक देता है, आठ पत्नियां बदल लेता है। लेकिन हर बार पत्नी बदलता है और पाता है कि दूसरी पत्नी भी दो महीने में पुरानी पत्नी जैसी सिद्ध होती है। तलाकों के लंबे अध्ययन से यह पता चला है कि जो

लोग पत्नियां बदलते हैं, जो पत्नियां पति बदलती हैं--हर बार महीने, दो महीने में पाते हैं कि यह तो फिर वही का वही आदमी मिल गया। बड़े मनोवैज्ञानिक परेशान थे कि यह हो क्यों जाती है भूल?
यह भूल नहीं है, यह जीवन का सीधा तर्क है। जिस स्त्री ने पहली बार पति
को खोजा था, वही स्त्री दूसरी बार भी तो पति को खोजेगी, तीसरी बार भी वही स्त्री पति को खोजेगी, उसकी दृष्टि खोज की वही है। और जो स्त्री पहली बार पहले पति के साथ जीयी थी जिस ढंग से और तीन महीने में जो-जो चीजें पैदा हो गई थीं, वह उसी ढंग से दूसरे पति के साथ भी जीएगी, तीसरे पति के साथ भी जीएगी, वही चीजें फिर पैदा हो जाएंगी।
यह गांव बदलना है, तलाक यानी गांव बदलना, मोक्ष की खोज यानी तलाक देना, गांव बदलना। जहां मैं हूं, वहां अपने को बदलने से बचने के हम सब उपाय करते हैं। मैं बदलने से बच जाऊं, इसके हम सब उपाय करते हैं। और जो आदमी भी हमको यह समझाता है कि तुम ठीक हो, शेष सब गलत हैं, वह हमें बड़ा प्रीतिकर मालूम होता है।
इसलिए तो धर्मगुरुओं को इतना आदर मिला। अन्यथा यह आदर मिलने की कोई जगह नहीं, कोई कारण नहीं। धर्मगुरुओं को मिले आदर का, रिस्पेक्ट का एक ही कारण है कि वे जीवन को कंडेम करते हैं और आपको बचा लेते हैं। वे यह कहते हैं कि लाइफ इ.ज सच, जिंदगी ऐसी है कि दुख उसमें होगा, तुम क्या कर सकते हो? जिंदगी से बचो तो दुख से बच सकते हो। जिंदगी ऐसी है कि उसमें अशांति होगी, तुम क्या कर सकते हो? जिंदगी को छोड़ो तो शांत हो सकते हो। जिंदगी ऐसी है कि उसमें चिंता आएगी, तुम क्या कर सकते हो? जिंदगी से हटो तो चिंता बच जाएगी। और ये दलीलें बड़ी ठीक मालूम पड़ती हैं, क्योंकि ये सारी दलीलें आपको छोड़ देती हैं और जिंदगी को कंडेम कर देती हैं, जिंदगी को दोषी ठहरा देती हैं। इसलिए धर्मगुरुओं को इतना आदर और धर्म की दुखवादी शिक्षाओं को इतना सम्मान मिला। अन्यथा उनके सम्मान का न कोई कारण है, न कोई वजह है, न कोई अर्थ है। और जिस दिन भी आदमी को यह पता चल जाएगा कि इस भांति आदमी के ट्रांसफार्मेशन में, आदमी की बदलाहट में सबसे बड़ा पत्थर रख दिया गया, उसी दिन--उसी दिन--यह सारा आदर परिवर्तित हो जाएगा, ये मूल्य गिर जाएंगे। उस दिन हम देखेंगे कि आदमी का सवाल है, जीवन का नहीं। जीवन वैसा ही हो जाता है जैसा मैं हूं। जरा सा फर्क मुझमें, और जीवन दूसरा हो जाता है।
एक आदमी का सिर दुख रहा है। उसे तुम कहो कि चांदनी निकली है, बहुत अच्छी है। वह देखता है चांद को, लेकिन सिर दुखता चला जा रहा है, चांद उसे बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ता। एक आदमी बुखार से भरा है। तुम कहो कि गुलाब के फूल खिले हैं बहुत अच्छे। वह देखता है गुलाब के फूलों को, लेकिन ताप उसके प्राणों को कंपाए जा रहा है, हाथ उसके आग हुए जा रहे हैं, श्वास उसकी लपटें हुई जा रही है, उसे फूल दिखाई नहीं पड़ते; फूलों में भी उसे, लाल फूलों में भी आग की लपटें दिखाई पड़ती हैं। वह कहेगा, कहां हैं फूल? आग की लपटें हैं! आदमी के भीतर जैसी दशा है, बाहर का जगत उसे वैसा ही दिखाई पड़ता है।
एक मेरे मित्र एक गीत मुझे सुनाते थे, उस गीत में बड़ा अदभुत अर्थ था।
वह गीत था कि एक भूखा आदमी--बिल्कुल भूखा आदमी, सात दिन का भूखा आदमी--एक मित्र के घर ठहरा हुआ है। वे मित्र एक कवि हैं। पूर्णिमा की रात है। और कवियों को क्या खबर कि मेहमान जो आया है उसने रोटी भी खाई है या नहीं, वह सात दिन का भूखा है। वे रोटी की तो पूछते नहीं हैं, मित्र को बाहर ले आते हैं और कहते हैं, पूर्णिमा की रात है, आओ देखें चांद को!
वह मित्र भी चांद को देखता है, कवि कविता करता है, मित्र को दिखाई पड़ता हैः पूरी रोटी आकाश में लटकी हुई है। कवि कहता है, मुझे प्रेयसी का चेहरा दिखाई पड़ रहा है। मुझे मेरी प्यारी का चेहरा दिखाई पड़ रहा है। और वह अपना सिर ठोंकता है, वह कहता है, मुझे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता, मुझे एक रोटी दिखाई पड़ती है।
कवि कहता है, तू नासमझ! मैंने आज तक नहीं सुना कि किसी को चांद में रोटी दिखाई पड़ी हो। यह पहला ही मौका है, कभी मैंने यह उपमा नहीं सुनी। कालिदास ने, भवभूति ने, शेक्सपियर ने, किसी ने कभी नहीं कहा कि रोटी! सब कहते हैं प्रेयसी का चेहरा दिखाई पड़ता है। तू पागल हो गया है? तू बड़ा

मॉडर्न पोएट मालूम पड़ता है। तू बड़ी नई कविता लिखता मालूम होता है। रोटी कहां है वहां?
वह बेचारा घबड़ा कर चुप रह जाता है। क्योंकि परंपरा में कोई गवाही नहीं, कोई विटनेस नहीं। एक गवाही नहीं है कवियों की, एक उस्ताद नहीं है कवियों में जो कह दे कि हां ठीक, तू ठीक कहता है। जब इतने-इतने बड़े महाकवियों को रोटी नहीं दिखाई पड़ी, तो वह कहता है, मुझे गलत दिखाई पड़ता होगा। मुझे क्षमा करें! लेकिन वह देखता है, रोटी ही दिखाई पड़ती है। वह बहुत आंखें मूंदता है, लेकिन रोटी ही दिखाई पड़ती है।
यह रोटी, चांद का सवाल नहीं है, यह पेट भूखा है तो रोटी दिखाई पड़ेगी। हमारी स्टेट ऑफ माइंड, मेरे चित्त की जो दशा है, जीवन वैसा दिखाई पड़ता है। जीवन वैसा ही हो जाता है जो मेरे चित्त की दशा है। मेरे चित्त का ही प्रोजेक्शन है, मेरे चित्त का ही प्रक्षेपण है जीवन में।
हम सिनेमा में बैठे होते हैं और परदे पर फिल्में दिखाई पड़ती हैं। परदे पर कुछ भी नहीं है, परदा बिल्कुल खाली है। अगर आपको वह फिल्म मिटानी हो तो आप परदे पर जाकर मिटाने लगें तो लोग आपको पागल कहेंगे। वे कहेंगे, वहां मिटाने को कुछ भी नहीं है, वहां कुछ है ही नहीं, वहां केवल खाली परदा है। प्रोजेक्टर पीछे है। देखने वालों को परदा दिखाई पड़ता है, प्रोजेक्टर नहीं दिखाई पड़ता। वह पीठ की तरफ है, वह पीछे है, वह दूर अंधेरे में लगा हुआ है। वहां फिल्म है, वहां प्राण है चित्रों का, वहां से चित्र फेंके जा रहे हैं। परदे पर वे दिखाई पड़ते हैं, लेकिन परदे पर होते नहीं, फेंके कहीं और से गए होते हैं। जहां होते हैं वहां दिखाई नहीं पड़ते, जहां नहीं होते वहां दिखाई पड़ते हैं।
जीवन भी एक प्रोजेक्शन है, जीवन भी एक प्रक्षेपण है। चित्त पर सारा सब कुछ है, वहां से फेंका जाता है और जीवन के परदे पर दिखाई पड़ता है। जीवन कोरा परदा है। वहां पोंछने चले जाते हैं, वहां मिटाने चले जाते हैं। लगता है कि पत्नी दुख दे रही है, पत्नी को छोड़ो।
कौन पागल कहता है कि पत्नी दुख दे सकती है? किसने कहा कि कोई दूसरा दुख
दे सकता है? पत्नी को छोड़ो और भागो। तो वह आदमी भागेगा, लेकिन वह आदमी वही का वही है जिसको पत्नी दुख देती थी। कल उसको कोई और दुख देगा; परसों तीसरा दुख देगा; नरसों चौथा दुख देगा। जब सब उसे कतारबद्ध दुख देंगे तो वह कहेगा, पूरा जीवन ही छोड़ने जैसा है, जीवन में आना ही नहीं चाहिए। और वह कभी नहीं पूछेगा कि कहीं मैं दुख का प्रोजेक्टर लेकर तो नहीं घूम रहा हूं? कहीं मैं भीतर ताकत तो लेकर नहीं घूम रहा हूं कि हर चीज को दुख में बदल लेने की कीमिया, केमिस्ट्री तो मेरे पास नहीं है? वह है! कीमिया है हमारे पास। धार्मिक व्यक्ति की सजगता का दूसरा सूत्र मैं आपसे यह कहना चाहता हूं
कि इस बात को ठीक से समझ लें कि जीवन वैसा है जैसे आप हैं। दुख है जीवन, तो आपकी दृष्टि दुखपूर्ण होगी। आनंदपूर्ण हो सकता है जीवन, अगर आपकी दृष्टि आनंदपूर्ण हो।
इसलिए जीवन को दोष देना बंद कर दें, जीवन को दोष देना बहुत हो चुका और
इस शिक्षा के भारी दुष्परिणाम मनुष्य की जाति को भोगने पड़े हैं। और आगे भी अगर यह चलता रहा, तो मैं आपसे निश्चित कहे देता हूं, वे दिन गए जब कि थोड़े- बहुत लोग आत्महत्या कर लेते थे और संन्यासी हो जाते थे, वे दिन करीब आते हैं, यह भी हो सकता है कि हम सामूहिक रूप से आत्महत्या करने की तैयारी करें। युनिवर्सल स्युसाइड कर लें एक ही दिन तय करके, कि खत्म कर लो अपने को।
एक घंटा मैं यहां बोलता हूं, उस बीच एक हजार लोग पृथ्वी पर आत्महत्या
कर लेते हैं। बारह घंटे में बारह हजार लोग, चौबीस घंटे में चौबीस हजार लोग। एक घंटे में एक हजार लोग प्रति घंटा हत्या कर रहे हैं। यह संख्या अभी कम है, क्योंकि शिक्षा थोड़ी कम है, लोग धार्मिक भी थोड़े कम हैं, धर्मगुरुओं की कोई मानता भी नहीं है। यह संख्या कम है, यह संख्या बढ़ती चली जाएगी, यह संख्या बड़ी होती चली जाएगी। यह संख्या उस सीमा तक पहुंच सकती है कि हम सबको ऐसा लगे कि जब जीवन इतना दुखपूर्ण है तो क्यों जीएं?

पश्चिम के एक बहुत बड़े विचारक ने अभी कहा कि अट्ठाइस साल के बाद हर समझदार आदमी को आत्महत्या कर लेनी चाहिए। क्यों? क्योंकि अट्ठाइस साल तक समझ पूरी हो जाती है। अगर तब तक नहीं दिखाई पड़ता कि जीवन असार है, तो तुम बुद्धू हो, मंदबुद्धि हो, कायर हो, मरने की हिम्मत नहीं है तुममें। किसलिए तुम जीए जा रहे हो? जीवन तो व्यर्थ है, तुम काहे के लिए जीए चले जा रहे हो? अट्ठाइस साल तक वे छूट देते हैं कि इतनी देर में बुद्धि थोड़ी विकसित होगी, दिखाई पड़ जाएगा कि जीवन व्यर्थ है।
लेकिन उन्होंने खुद अभी आत्महत्या नहीं की है, वे अट्ठाइस साल बहुत दिन पहले पार कर चुके हैं। वे शायद इस कारण दया के वश कि अगर वे आत्महत्या कर लेंगे तो आत्महत्या समझाने के लिए कौन बचेगा, शायद इस कारण।
यह जो, यह जो जीवन के प्रति रुख है, यह जो जीवन के निषेध का, निगेशन का, विरोध का रुख है, यह रुख कभी किसी को धार्मिक नहीं बना सकता। क्योंकि धार्मिक तो वही बन सकता है जिसे जीवन में इतना आनंद अनुभव हो कि आनंद के कारण वह परमात्मा का कृतज्ञ हो सके, ग्रेटिट्यूड उसमें पैदा हो सके। धार्मिक आदमी का मतलब क्या है? ग्रेटफुलनेस, ग्रेटिट्यूड, धन्यता का भाव! उसे ऐसा लगे कि परमात्मा को धन्यवाद देने जैसा है। उसे ऐसा लगे कि मैं एक श्वास भी लेता हूं तो इतना अनुगृहीत हूं प्रभु का कि तूने मुझे एक मौका दिया कि मैंने श्वास ली, कि मैंने आंख खोलीं और सूरज की किरणों को नाचते देखा, कि तूने मुझे कान दिए और मैंने संगीत के शब्द सुने, और तूने मुझे हृदय दिया कि मैं प्रेम कर सका, और तूने मुझे हाथ दिए कि मैं किसी को छू सका, स्मरण कर सका, स्मृति दी। जिस दिन ऐसा लगे कि तूने मुझे इतना दिया, इतना कि मेरे प्राण अनुग्रह से भर जाएं, मेरे प्राण कृतज्ञता से भर जाएं, मैं धन्यवाद से भर जाऊं, मेरी श्वास-श्वास धन्यवाद देने लगे, तो मैं प्रभु के मंदिर में प्रविष्ट हो सकता हूं।
लेकिन दुख मानने वाले लोग धन्यवाद से कैसे भर सकते हैं? वे तो क्रोध
से भरे होते हैं। वे तो परमात्मा से बदला लेने के भाव से भरे होते हैं कि तुमने हमें जन्म दिया, अगर मिल जाओ तो हम तुम्हें बताएं!
परमात्मा इसीलिए, मैंने सुना है, छिपा रहता है, आता नहीं इधर-उधर कि आदमी मिल जाएं तो उसकी हत्या कर दें--कि तुमने हमें जन्म दिया, तुमने मुझे शादी करवाई, तुमने मुझे दुकान करवाई, तुमने मुझे बच्चे दिए, तुमने मुझे बंबई का निवासी बनाया, मेरी जान ले ली! तुम्हारी मैं हत्या करूंगा, तुम्हें मैं छोड़ नहीं सकता! भगवान इसीलिए छिपा रहता है।
सुना है मैंने, जब उसने पृथ्वी बनाई, आदमी बनाए। आदमी को बनाते ही वह बहुत घबड़ा गया और उसने देवताओं से पूछा कि कोई रास्ता बताओ, मैं आदमी से कैसे बचूं? क्योंकि यह बड़ा खतरनाक मालूम होता है। यह मुझे खोज लेगा तो मेरी मुसीबत हो जाएगी। मैं कैसे बचूं? मैं कहां छिप जाऊं?
किसी देवता ने कहा, आप हिमालय पर छिप जाइए, कैलाश पर्वत पर बैठ जाइए, आदमी वहां तक नहीं पहुंच पाएगा।
उसने कहा, तुम्हें पता नहीं, आज नहीं कल कोई न कोई तेनसिंह, कोई हिलेरी पैदा हो जाएगा और चढ़ जाएगा। वह पकड़ लेगा मुझे, मैं दिक्कत में पड़ जाऊंगा। वहां मैं नहीं जा सकता।
उन्होंने कहा, तुम पैसिफिक महासागर में छिप जाओ, पांच मील गहरा है, वहां नीचे बैठे रहो, वहां सूरज की किरण भी नहीं पहुंचती।
उसने कहा, तुम्हें आदमी का पता नहीं; जहां सूरज की किरण नहीं पहुंचती वहां वह पहुंच जाएगा। उसे ऐसी जगह जाने में बड़ा रस आता है जहां जाने का कोई मतलब नहीं होता। जहां जाना बिल्कुल बेकार है वहां वह जरूर चला जाता है। जहां जाने का काम है वहां आदमी कभी नहीं जाएगा, जहां जाने की कोई जरूरत नहीं वहां वह हजार यात्रा करेगा, जान जोखिम में लगाएगा और पहुंच जाएगा। वहां मुझे मत छिपाओ, मुझे कोई ठीक सुरक्षित जगह बताओ।
फिर एक बूढ़े देवता ने कहा, फिर एक ही तरकीब है कि तुम आदमी के भीतर छिप जाओ। उसे ख्याल ही नहीं आएगा कि इतना धोखा, इतना डिसेप्शन भी हो सकता है कि हमारे भीतर छिपे हों। वह सारी दुनिया खोज लेगा और अपने भीतर नहीं झांक पाएगा।

तो वहीं छिप कर बैठ गया बेचारा, तब से वहीं छिपा हुआ है। और उसकी खोज नहीं हो सकती।
दुखी आदमी सब जगह जा सकता है, अपने भीतर नहीं जा सकता--इसका आपको पता है? दुखी आदमी अपने भीतर जाने से डरता है। दुखी आदमी चाहता है मैं कहीं भी चला जाऊं, लेकिन भीतर न जाऊं, अकेला न रह जाऊं, नहीं तो कहीं भीतर का दुख दिखाई पड़ने लगे। आदमी दुख के कारण अंतर्गमन नहीं करता है। जहां दुख है वहां जाने से सार?
इसलिए कोई भी आदमी अपने साथ रुकने को क्षण भर के लिए तैयार नहीं होता।
वह कहता है, अखबार लाओ जल्दी से। मैं अकेला बैठा क्या करूं, अखबार पढूंगा। अखबार पढ़ लेता है तो बेचारा रेडियो खोल लेता है। रेडियो खत्म हो जाता है तो होटल में बैठ जाता है, क्लब में चला जाता है। कहीं जगह नहीं मिलती, मंदिर में चला जाता है, धर्मगुरु की बातें सुनने लगता है, धर्मसभा में बैठ जाता है। लेकिन जब तक जागता है, भागता रहता है, भागता रहता है। अगर कुछ नहीं मिलता, शराब पी लेता है ताकि सब भूल जाए, सिनेमा में बैठ जाता है ताकि सब भूल जाए। किसी तरह भूल जाए, सो जाए, भूल जाए या डूबा रहे, उलझा रहे, आक्युपाइड रहे या नींद में हो जाए या बेहोश हो जाए, लेकिन ऐसा मौका न आ जाए कि अपने साथ अकेला, टु बी विद वनसेल्फ, कभी ऐसा न हो जाए कि अपने साथ छूट जाऊं। क्योंकि अपने साथ छूटा कि वह सारा दुख जो मैंने इकट्ठा कर रखा है, वह दिखाई पड़ना शुरू होगा। वह इतना घबड़ाने वाला है, इतना घबड़ाने वाला, कि वह आत्महत्या करने के लिए तैयार कर देगा--कि मर जाओ, ऐसे जीने में ठीक नहीं है।
इसलिए सारी दुनिया एस्केप करती है, अपने से भागती रहती है, अपने से भागती रहती है। पति पत्नी में भाग रहा है, पत्नी पति में भाग रही है, बाप बेटों में भाग रहे हैं, बेटे सिनेमागृह में भाग रहे हैं--सब भाग रहे हैं, सारी दुनिया भाग रही है। पूछोः किससे भाग रहे हैं? कहां के लिए भाग रहे हैं? कोई उत्तर नहीं दे सकता कि मैं कहां जाना चाहता हूं। एक उत्तर हरेक दे देगा कि मैं अपने से बचना चाहता हूं, मैं अपने से भागना चाहता हूं। एक कृपा कि मेरी अपने से मुलाकात न हो जाए, कहीं मैं खुद से न मिल जाऊं, यही एक डर है। और सब कुछ हो जाए, अपने से मिलना न हो जाए।
इसलिए लोनलीनेस, अकेलापन काटता है, घबड़ाता है। एक आदमी को कहो कि अकेले रहना पड़ेगा छह महीने। वह कहेगा, मैं पागल हो जाऊंगा! अकेले मैं नहीं रह सकता! मुझे कंपनी चाहिए, मुझे साथ चाहिए। साथ किसलिए चाहिए?
आनंदित आदमी अकेला रह सकता है, दुखी आदमी अकेला नहीं रह सकता। आनंदित आदमी अकेला रहना चाहता है, भीड़ से बचना चाहता है, क्योंकि आनंदित आदमी जब भीड़ में खड़ा होता है तब भी वह अकेला होता है, तब भी वह अपने भीतर के रस को गुनता रहता है, तब भी उसके भीतर कोई संगीत बजता रहता है वह उसे सुनता रहता है, तब भी भीतर कोई आनंद का झरना बहता रहता है वह उसमें डूबा रहता है। वह भीड़ में भी अकेला होता है।
और अकेला आदमी अकेले में भी भीड़ में होता है। अगर भीड़ नहीं मिलती तो आंख बंद करके विचार करने लगता है कि फलाने दुश्मन को गोली मार दूं, कि फलाने मित्र के पास चला जाऊं, कि पत्नी को छोड़ कर दूसरी शादी कर लूं, कि क्या करूं कि क्या न करूं। वह अपने हिसाब में लगा रहता है। एक क्षण को भी वह अपने साथ नहीं होना चाहता है। जीवन भर अपने साथ नहीं, मरते क्षण तक अपने साथ नहीं।
एक आदमी मर रहा था, मरणशय्या पर पड़ा है, उसकी पत्नी उसके पास बैठी है।
उस आदमी ने आंख खोली। चिकित्सकों ने कहा, आज सांझ सूरज के डूबने के साथ यह समाप्त हो जाएगा। उसने आंख खोली, सूरज डूबने के करीब है, और उसने पूछा कि मेरा बड़ा बेटा कहां है? उसकी पत्नी ने कहा, आप निश्चिंत रहें, वह आपके पैरों के पास बैठा है।
पत्नी की आंखों में तो आंसू आ गए। उसके पति ने अपने बेटों के लिए कभी
भी नहीं पूछा था, उसे फुर्सत नहीं मिली थी। धन कमाने से, यश कमाने से, दिल्ली की यात्रा करने से उसे फुर्सत नहीं मिली थी। वह एम.पी. बनता कि बेटों की पूछता। वह एक बड़ा मकान बनाता कि बेटों की फिकर करता कि वे कहां

हैं। लेकिन उसकी पत्नी को लगा आज शायद मृत्यु के अंतिम क्षण में, विदाई के क्षण में उसे प्रेम का स्मरण आ गया, उसे बेटे की स्मृति आई। और उसकी आंखें गीली हो गईं और उसने खुशी से कहा, बिल्कुल चिंता न करें, बिल्कुल चिंता न करें, वह आपके पैरों के पास बैठा है।
उस आदमी ने कहा, और उससे छोटा बेटा?
वह भी पास था। उससे छोटा? पांच बेटे थे। सबसे छोटा?
उसकी पत्नी ने कहा, आप बिल्कुल निश्चिंत लेटे रहें, सब हम यहां मौजूद हैं, हम सब आपके पास बैठे हैं, कोई कहीं बाहर नहीं।
वह आदमी हाथ टेक कर बैठ गया और उसने कहा, इसका क्या मतलब? फिर दुकान पर कौन बैठा हुआ है?
वह पत्नी भूल में थी, वे आंसू उसने व्यर्थ बहाए, वह खुशी उसने नासमझी की। वह यह नहीं पूछ रहा था कि बेटे कहां हैं; वह यह पूछ रहा था कि दुकान चल रही है इस वक्त कि नहीं चल रही। वह यह पूछते ही मर गया। लेकिन मरते क्षण भी वह दुकान पर बैठा हुआ था, अपने पास नहीं था। जीवन भर--बाहर, बाहर, बाहर। और क्यों? क्योंकि भीतर हमने दुख पाल रखा है, दृष्टि दुख की पाल रखी है। और यह सारी बात दृष्टि की है।
तो एक अंतिम बात, फिर तीसरे सूत्र पर हम कल बात करेंगे।
यह सारी बात दृष्टि की है। जीवन को दुखवादी दृष्टि से देखने के भ्रम
को छोड़ दें। ख्याल छोड़ दें कि जीवन बुरा है। अगर बुरा हूं तो मैं बुरा हूं। और अगर यह स्मरण आ जाए कि मैं बुरा हूं, तो बदलाहट की जा सकती है। जीवन को आप कैसे बदल सकते हैं? बिल्कुल ही गलत! अगर जीवन बुरा है तब तो बदलने का कोई उपाय न रहा। जीवन है विराट, अनंत। मैं क्या कर सकूंगा? एक बूंद छोटी सी, मैं सागर को कैसे बदलूंगा? तो फिर एक ही रास्ता है कि मैं समाप्त हो जाऊं, इसको तो बदला नहीं जा सकता है।
इससे निराशा, इससे हताशा पैदा हुई। इससे रिनंसिएशन और संन्यास-- तथाकथित संन्यास--पैदा हुआ। इससे जीवन को छोड़ने वाली परंपराएं पैदा हुईं, जीवन से भागने वाले लोग पैदा हुए, जीवन की निंदा करने वाले शिक्षक पैदा हुए और सारी दुनिया को उन्होंने दुख के एक अंधकारपूर्ण घेरे में घेर कर खड़ा कर दिया। हम सब उस घेरे में खड़े हैं।
इस घेरे को तोड़ दें! कल मैंने कहा थाः रिबेलियन अगेंस्ट नालेज। आज आपसे कहता हूंः रिबेलियन अगेंस्ट पैसिमिज्म। विद्रोह ज्ञान के प्रति, ताकि विस्मय जग जाए। और विद्रोह दुखवादियों के प्रति, ताकि आनंद की क्षमता का सूत्र शुरू हो जाए, ताकि वह किरण फूट सके जो आनंद की है।
वह किरण कैसे फूट सकती है, उसकी तीसरे सूत्र में कल मैं आपसे बात करूं।
मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत आनंदित और अनुगृहीत हूं। सबके भीतर बैठे परमात्मा को अंत में प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

माटी कहै कुम्हार सूं
ग्यारहवां प्रवचन

व्यवहार का पाखंड

मेरे प्रिय आत्मन्!
बीती चर्चाओं के संबंध में बहुत से प्रश्न हैं।

एक मित्र रोज ही पूछ रहे हैं कि व्यवहार के संबंध में कुछ बोलिए।

शायद उन्हें प्रतीत होता होगा कि जो मैं बोल रहा हूं वह व्यवहार के संबंध में नहीं है। व्यवहार से लोग न मालूम किस बात को सोचते और समझते हैं। शायद वे सोचते हैंः किस भांति के कपड़े पहने जाएं, किस भांति का खाना खाया जाए, कब सोया जाए, कब उठा जाए, सच बोला जाए या झूठ बोला जाए, ईमानदारी की जाए या बेईमानी की जाए--आचरण की और सारी बातों को वे व्यवहार समझते होंगे। इसलिए मैं रोज बोल रहा हूं, लेकिन उनका प्रश्न रोज लौट आता है। वे द्वार पर ही मुझे मिल जाते हैं कि वह व्यवहार के संबंध में आपने अब तक कुछ भी नहीं कहा! तो आज पहले उनके संबंध में ही बात कर लेनी उचित होगी। व्यवहार का कोई भी मूल्य नहीं है, आचरण का दो कौड़ी भी मूल्य नहीं है। मूल्य है आत्मा का, मूल्य है चेतना का, मूल्य है विचार का, मूल्य है विवेक का। आचरण तो, भीतर जैसी चेतना होती है, उसकी सुगंध है, उसकी लक्षणा है, सूचना है। उससे ज्यादा नहीं है।
एक आदमी को बुखार चढ़ा हुआ है। उसका शरीर उत्तप्त हो गया है, ताप से भर गया है, गरम हो गया है। इस उत्ताप का क्या मूल्य है? यह कोई बीमारी थोड़े ही है। बीमारी तो भीतर है कुछ, जिसकी वजह से शरीर ने गरम होकर खबर दी है। बेचैनी की खबर दी है। गर्मी बीमारी नहीं है; गर्मी केवल लक्षण है बीमारी का। और अगर हम सोचने लगें कि गर्मी को कैसे ठीक किया जाए और बुखार के मरीज को सिर्फ ठंडे पानी में नहलाएं और ठंडक में रखें, तो बीमारी के ठीक होने की तो कोई संभावना नहीं, बीमार के मर जाने की संभावना जरूर पैदा हो सकती है। बुखार तो केवल सूचना है, इनफार्मेशन है। बुखार तो केवल लक्षण है, बीमारी कहीं भीतर है। इस लक्षण को देख कर उस भीतर की बीमारी को ठीक करेंगे तो लक्षण विलीन हो जाएगा।
आचरण, व्यवहार जो हमें बाहर दिखाई पड़ता है, वह मनुष्य की भीतर की चेतना की सूचना है। भीतर चेतना रुग्ण होती है तो व्यवहार रुग्ण हो जाता है।
कोई आदमी असत्य बोलता है, बेईमानी करता है, चोरी करता है। क्या आप सोचते हैं कि यह व्यवहार का सवाल है? चोरी जिस आत्मा से निकलती है वह रुग्ण है। असत्य जिस चेतना से निकलता है वह बीमार है। बेईमानी जहां से पैदा होती है वहां भीतर जड़ में कोई खराबी है। और अगर उस जड़ को नहीं बदला जाता, तो हम बीमारी को काटेंगे एक तरफ से, बीमारी दूसरी तरफ से पैदा होगी; दूसरी तरफ से काटेंगे, तीसरी तरफ से पैदा होगी। एक जगह से चोरी को रोकेंगे, चोरी दूसरी तरफ से घूम कर खड़ी हो जाएगी। क्योंकि जड़ तो नष्ट नहीं होती, केवल शाखाएं काट रहे हैं आप। शाखाएं काटने से पौधे नष्ट नहीं होते हैं, लेकिन जड़ें काट देने से जरूर नष्ट हो जाते हैं। और शाखाएं काटने से तो और नुकसान होता है। शाखाओं का काटना तो और नई शाखाओं के जन्म की व्यवस्था हो जाती है। एक शाखा काटिए तो दो शाखाएं पैदा होती हैं, दो काटिए तो चार पैदा होती हैं।
लेकिन धर्मगुरु आज तक लोगों को आचरण की ही शिक्षा देते रहे हैं। वे यह नहीं कहते कि उस चेतना को उपलब्ध करो जिससे सत्य पैदा होता है। वे यह कहते हैं, सत्य बोलो। यह उलटी बात है और गलत बात है। वे यह नहीं बताते हैं कि किस आत्मा से सत्य के फूल पैदा होते हैं, उस आत्मा को उपलब्ध करो। वे यह बताते हैं कि सत्य बोलो, झूठ मत बोलो! चोरी मत करो! बेईमानी मत करो! हिंसा मत करो! ये सारी की सारी शिक्षाएं लक्षणों को बदलने की शिक्षाएं हैं, अंतरात्मा को बदलने की नहीं। और लक्षण बदलने से कोई आत्मा कभी नहीं बदलती है। बदलने

का कोई मार्ग भी नहीं है। ऊपर से बदलने से, भीतर जो है, वह नहीं बदलता है। लेकिन भीतर जो है, अगर बदल जाए, तो ऊपर सब अपने आप बदल जाता है।
यह आचरण की शिक्षा ने सारी दुनिया में पाखंड को पैदा किया है। आदमी भीतर वही बना रहता है जो है। और ऊपर से आचरण को थोप लेता है और दिखाई कुछ और पड़ने लगता है। जिन देशों में मारेलिस्ट्स ने, नीतिवादियों ने, आचरणवादियों ने, व्यवहारवादियों ने मनुष्य की आत्मा को अतिक्रांत कर रखा है, उन देशों में उतना ही ज्यादा पाखंड पैदा हो गया है।
हमारा ही मुल्क एक उदाहरण है। पांच हजार साल की शिक्षा है हमारी आचरण
को ठीक करने की। हमसे ज्यादा गलत आचरण आज पृथ्वी के ऊपर किसका है? क्या हुआ इस शिक्षा का? इतने दिनों की चेष्टा का क्या परिणाम हुआ? यह परिणाम हुआ जो आज भारतीय जिस भांति का आदमी है। यह परिणाम निकला हमारी सारी चेष्टाओं का!
जरूर हमारी चेष्टाओं में कहीं कोई बुनियादी भूल हो गई है। और वह भूल
यह है कि हमने जड़ को बदलने की कोशिश नहीं की, हमने शाखाओं को बदलने की कोशिश की है। शाखाओं के बदलने से शाखाएं और बढ़ती चली गई हैं। यह हो भी नहीं सकता। यह बिल्कुल असंभव है, अवैज्ञानिक है।
एक मित्र मेरे पास आए और उन्होंने कहा कि मैं शराब पीता हूं, जुआ खेलता हूं, मांस खाता हूं, मैं सब करता हूं। और मैं अनेक दिनों से आपके पास आना चाहता था, लेकिन इस डर से नहीं आया कि मैं जाऊंगा और आप कहेंगेः मांस खाना छोड़ो, शराब पीना छोड़ो, जुआ खेलना छोड़ो, तब कुछ हो सकता है। ये मैं छोड़ नहीं सकता, इसलिए मैं आता नहीं था। लेकिन कल किसी ने मुझसे कहा कि आप तो कुछ भी छोड़ने को नहीं कहते हैं, इसलिए मैं हिम्मत करके आपके पास आ गया। क्या कुछ भी छोड़ने की जरूरत नहीं है और मैं बदल सकता हूं?
मैंने कहा, अगर छोड़ने की कोशिश की, तब तो कभी बदल ही नहीं सकोगे। बदल जाओ, तो चीजें छूट सकती हैं। छोड़ने की कोई भी जरूरत नहीं है।
मैंने उनसे कहा, इसकी फिकर छोड़ दो। क्योंकि मेरे लिए यह सवाल नहीं है
कि तुम जुआ खेलते हो। मेरे लिए सवाल यह है कि जो आदमी जुआ खेल रहा है, वह आदमी जिंदगी में दांव लगाने को आतुर है और दांव लगाने के लिए ठीक जगह उसको उपलब्ध नहीं हो रही तो वह पैसे पर दांव लगा रहा है। उसे ठीक चैलेंज नहीं मिल रहा है जिंदगी का जहां वह दांव लगा दे। यह आदमी हिम्मतवर आदमी है। जुआ जो नहीं खेलते, इस कारण कोई नैतिक नहीं हो जाते, केवल कमजोर भी हो सकते हैं, कायर भी हो सकते हैं। चुनौती, दांव लगाने की हिम्मत न हो, रिस्क न लगा सकते हों, जोखिम न उठा सकते हों, इस तरह के लोग भी हो सकते हैं। और मेरे अपने अनुभव में यही आया है कि जिनको आप समझते हैं ये जुआ नहीं खेलते, वे केवल वे लोग हैं जिनमें दांव लगाने की कोई सामर्थ्य नहीं। लेकिन जो आदमी जुआ खेलता है, इसके प्राण आतुर हैं कहीं दांव लगा देने को, किसी चीज पर यह प्राणों को तौल लेना चाहता है। लेकिन वह मार्ग नहीं खोज पा रहा है, वह जुआ ही खेल रहा है।
जो आदमी शराब पी रहा है, यह आदमी चिंतित है, दुखी है, परेशान है और अपने
को भूलना चाह रहा है, भूलने का रास्ता खोज रहा है। अगर इसकी चिंता, इसकी बेचैनी और अशांति समाप्त हो जाए, इसकी शराब उसी क्षण विलीन हो जाएगी। जिंदगी में ठीक दांव लगाने की कला आ जाए, जुआ विलीन हो जाएगा।
जो आदमी मांस खा रहा है, इसकी फिकर ही नहीं कर रहा है कि मेरे भोजन से किसी को कितनी पीड़ा और दुख पहुंचता होगा, वह आदमी कौन है?
वह आदमी वह है जो जाने-अनजाने दूसरे को दुख देने में सुख अनुभव कर रहा होगा। और ऐसा आदमी कौन होता है? ऐसा आदमी वह होता है जो इतना दुखी है, इतना पीड़ित है, इतना परेशान है कि उसके पास अब एक ही सुख का अनुभव रह गया है कि जब वह किसी को अपने से भी ज्यादा दुखी, पीड़ित और परेशान देखे। बस उतना कंपेरेटिव, जब वह अपने से ज्यादा दुखी किसी को देखे तो थोड़ी देर को उसे राहत मिलती है, उसके पास और कोई सुख नहीं है। जो आदमी दूसरे को दुख देने को तैयार है वह बहुत दुखी आदमी है। क्योंकि सुखी आदमी ने आज तक किसी को भी दुख नहीं दिया है। आनंद से भरे आदमी ने आज तक किसी को पीड़ा नहीं दी है। दुखी आदमी मजबूर है दुख देने को, उसके पास एक ही सुख की संभावना बच गई है कि वह

किसी को दुख दे, किसी को सताए। इसलिए वह इनसेंसिटिव है, संवेदनहीन है। उसके हाथ से क्या हो रहा है, उसे पता नहीं चलता।
शराबी को हम समझाते हैंः शराब मत पीओ! हम यह देखते ही नहीं कि शराबी शराब क्यों पी रहा है। चिल्लाते रहो! समझाते जाओ कि शराब मत पीओ! आपके चिल्लाने से कोई फर्क नहीं पड़ता। शराब पीने वाला बढ़ता चला जा रहा है। यह जमीन, बहुत जल्दी पूरी जमीन शराब पीएगी। इसमें आदमी खोजने मुश्किल हो जाएंगे जो शराब न पीते हों। आपके चिल्लाने से कुछ न होगा। इतना ही हो सकता है कि चिल्ला-चिल्ला कर आप भी थक जाओ और पीने लगो, और कुछ भी नहीं हो सकता। और मैं आपसे यह भी कहता हूं कि यह भी हो सकता है कि वे जो लोग पी रहे हैं शराब, पीने में अपने को भुला देते हैं। और यह भी हो सकता है कि आप जो समझाने निकल पड़े हैं लोगों को कि शराब मत पीओ! शराब मत पीओ! आप अपने को इस चिल्लाहट में ही भुलाने की कोशिश कर रहे हों।
साधु-संन्यासी इसी में अपने को भुलाए रखते हैं। दुनिया को सुधारने के पागलपन में अपने को भुला लेते हैं। यह भी शराब हो सकती है। यह भी इनटॉक्सिकेशन हो सकता है।
मैंने सुना है, एक महानगरी में एक कुत्ता था। वह कुत्ता उपदेशक था। आदमी ही उपदेशक होते हों, ऐसा नहीं है, दूसरे जानवरों में भी उपदेशक होते हैं। वह कुत्ता गांव भर के कुत्तों को समझाता था कि कुत्तों की जाति बर्बाद होती जा रही है, हमारी नीति नष्ट होती जा रही है, हमारा आचरण बिगड़ता जा रहा है। और वह यह भी कहता कि जब तक कुत्तों की जाति व्यर्थ चिल्लाना बंद नहीं करेगी तब तक कुत्तों का जीवन ऊपर नहीं उठ सकता।
अब यह चिल्लाना कुत्तों के स्वभाव का हिस्सा है। यह ऐसी कमजोरी है कि कोई कितना ही समझाए, कुत्ते इसमें क्या कर सकते हैं? कुत्ते सुन लेते थे उसकी बात, थोड़ी-बहुत देर श्वास रोक कर चुप भी रह जाते थे, लेकिन वह उपदेशक गया कि कुत्ते चिल्लाना शुरू कर देते। इतने टेंप्टेशंस आ जाते कि फिर रुकना मुश्किल हो जाता। कोई आदमी निकल जाता, कोई पुलिसवाला निकल जाता, कोई दूसरा कुत्ता भौंक देता, फिर उनके सामर्थ्य के बाहर हो जाती बात। वह उपदेशक धीरे-धीरे बड़ा होता चला गया, क्योंकि वह अकेला कुत्ता था जो चिल्लाता नहीं था, बाकी सब कुत्ते चिल्लाते थे। लेकिन बात असल यह थी कि दिन भर कुत्तों को समझाने में चिल्लाने का सारा मजा आ जाता था।
एक रात कुत्ते उस उपदेशक से बहुत परेशान आ गए और सारे गांव के कुत्तों
ने तय किया कि कम से कम एक बार तो हम इसकी बात मान लें। अमावस की रात थी। उन्होंने कहा, आज हम कस्द कर लें कि आज रात हम नहीं चिल्लाएंगे, चाहे कुछ भी हो जाए। सारे कुत्तों ने कसम खा ली और एक-एक कोने में दुबक कर पड़े रह गए।
श्वास रोक ली, आंख बंद कर ली, बिल्कुल योगासन में लीन हो गए सारे कुत्ते। और उन्होंने कस्द कर लिया कि आज नहीं चिल्लाएंगे, चाहे कुछ भी हो जाए। एक रात तो कम से कम अपने गुरु की बात हम मान लें।
सांझ होते ही, वह जो गुरु था, वह जो उपदेशक था कुत्ता, वह निकला कि कहीं कोई मिल जाए चिल्लाता हुआ तो समझाऊं। लेकिन आज तो रात सन्नाटे में थी। कोई कुत्ता दिखाई नहीं पड़ता था, कहीं कोई आवाज न थी। रात के बारह बज गए, वह घबड़ा गया, कोई कुत्ता चिल्लाता हुआ नहीं दिखाई पड़ा। जहां भी गया, कुत्ता आंख बंद किए चुपचाप बैठा है। आज पहली दफा छह घंटे तक उसे बोलने का मौका नहीं मिला। उसके गले में खराश पैदा होने लगी। उसका मन हुआ कि चिल्लाऊं। वह बड़ा हैरान हुआ कि यह टेंप्टेशन तो मुझे कभी भी नहीं पकड़ा था! यह कौन शैतान मुझे सता रहा है? यह तो कभी मुझे ख्याल ही नहीं आया था चिल्लाने का। रात दो बज गए, फिर उसके वश के बाहर हो गया, उसके प्राण आतुर हो उठे। वह एक अंधेरी गली के भीतर गया और उसने चिल्लाना शुरू किया। वह वर्षों से नहीं चिल्लाया था। उसके चिल्लाने की आवाज सुन कर बाकी कुत्तों ने समझा कि किसी एक ने संकल्प तोड़ दिया, अब हम भी क्यों रुकें! सारा नगर चिल्लाहट से भर गया।
वह कुत्ता अंधेरी गली से बाहर आ गया और कुत्तों को समझाने लगा कि देखो, चुप रहो! इसी ने, इस चिल्लाने ने हमारी जाति को बर्बाद कर दिया। कुत्ते इसी से पतित हो रहे हैं। चिल्लाना बंद करो! मैंने कितना समझाया, तुम सुनते नहीं हो। फिर उसने समझाना शुरू कर दिया। लेकिन उस रात उसे इस

सच्चाई का पता चला कि मेरा भी चिल्लाने का जो आनंद था, वह मुझे उपदेश देने में ही मिल जाता है, इसलिए मैं बचा था चिल्लाने से।
आदमी एक ही वृत्ति को न मालूम कितने रूपों से तृप्त कर सकता है।
तो मैंने उन मित्र को कहा कि कुछ भी मत छोड़ें; कुछ समझें। छोड़ें नहीं, कुछ समझें। आचरण नहीं, अंडरस्टैंडिंग, कोई समझ। जीवन को समझें थोड़ा। वे आते थे, उनसे मैं बात करता था। फिर मैंने उनको कहा कि थोड़ी समझ, थोड़े शांत, थोड़े ध्यान में प्रवेश, थोड़े निर्विचार क्षणों को आमंत्रित करें, कभी इतने शांत और शून्य रह जाएं जैसे कुछ भी नहीं है, सब मिट गया। मौन हो जाएं। वे प्रयोग करते थे। क्योंकि मौन होने में न तो शराब बाधा देती है, न मांस खाना बाधा देता है, न जुआ बाधा देता है। और अगर बाधा देता है तो उतनी ही बाधा देता है जितनी रामायण पढ़ना बाधा देती है, जितना दुकान चलाना बाधा देती है, जितना उपदेश देना बाधा देता है। ध्यान के लिए जीवन के सब क्रम एक बराबर हैं, कोई क्रम बाधा नहीं देता। उन्होंने कुछ दिन प्रयोग किए। वे छह महीने बाद मुझसे मिलने आए और कहने लगे कि आपने मुझे धोखा दिया। क्योंकि जैसे-जैसे मैं शांत हुआ, शराब छूटती चली गई है।
मैंने कहा कि मैंने इसमें क्या धोखा दिया? मैंने आपसे कहा था, आपको छोड़ना नहीं है। छूट सकती है, वह बात दूसरी है। छोड़ना और छूट सकने में फर्क है। आपने छोड़ी हो तो कहें।
उन्होंने कहा, मैंने छोड़ी नहीं। लेकिन जैसे-जैसे मन शांत हुआ है, बेहोश होने की वृत्ति, बेहोश होने की आतुरता समाप्त हो गई है।
बेहोश होने की आतुरता अशांत मन का हिस्सा है। शांत मन बेहोश नहीं होना चाहता। अशांत मन अपने को भूलना चाहता है, ताकि अशांति भूल जाए। शांत मन अपने को जानना चाहता है, ताकि शांति और बढ़ जाए। तो अशांत मन आत्म-विस्मरण चाहता है, सेल्फ फारगेट फुलनेस चाहता है। शांत मन सेल्फ रिमेंबरिंग में प्रविष्ट होता है, स्वयं को जानना चाहता है, और जानना चाहता है। शांत मन जागना चाहता है, अशांत मन सोना चाहता है।
बुनियाद में शराब नहीं है। बुनियाद में शांत या अशांत मन है। मन शांत होगा, शराब समाप्त हो जाएगी। और मन अशांत होगा, दुनिया की कोई सरकारें, दुनिया के कोई धर्मगुरु, दुनिया की कोई शिक्षा शराब को नष्ट नहीं कर सकती। और आज नहीं कल, शराबी जिस दिन भी संगठित हो जाएंगे--अब तक बुरे लोग संगठित नहीं हुए हैं, इसलिए अच्छे लोग बकवास किए चले जा रहे हैं--जिस दिन बुरे लोग संगठित हो जाएंगे उस दिन आपको पता चलेगा कि आप निन्यानबे लोगों के बीच में आपकी आवाज है। अभी बुरे लोगों को पता नहीं चला है कि डेमोक्रेसी आ गई है दुनिया में, और यह अच्छे लोगों को हक नहीं है कि एक आदमी कहे कि शराब बंद होनी चाहिए तो बंद करवा दे और निन्यानबे आदमी शराब पीना चाहते हों। जिन मुल्कों में लोकतंत्र थोड़ा आगे बढ़ गया है वहां इस तरह के आंदोलन चलने शुरू हो गए हैं कि जब अधिक लोग शराब पीना चाहते हैं, तो किसको हक है कि शराब बंद करे? और अधिक लोग अगर झूठ बोलना चाहते हैं, तो किसको हक है कि सच का उपदेश दे?
यह दुनिया संगठित बुराई के करीब पहुंच जाएगी बहुत जल्दी। लोगों को संगठन का सीक्रेट पता चल गया है, संख्या का अर्थ पता चल गया है। बुरा आदमी असर्टिव नहीं रहा अब तक। अच्छे आदमी चिल्लाने वाले आदमी रहे हैं, बुरा आदमी पश्चात्ताप का आदमी रहा है। लेकिन अब बुरे आदमी भी असर्ट कर रहे हैं। यूरोप के मुल्कों में होमोसेक्सुअल्स की सोसाइटी बन गई है। वे यह कहते हैं कि होमोसेक्सुअलिटी भी, पुरुष और पुरुष, स्त्री और स्त्री के बीच भी सेक्स के संबंध होने की आज्ञा होनी चाहिए। क्योंकि हमारी भी संख्या है। हम अप्राकृतिक नहीं हैं और न हम पाप कर रहे हैं। हमारे मन में जो उठता है वह हम करना चाहते हैं। उनकी संख्या कम नहीं है। कुछ मुल्कों में होमोसेक्सुअल की संख्या तीस परसेंट है! तीस परसेंट कोई छोटी संख्या नहीं है।
एक्झिबीशनिस्ट्स के क्लब बन गए हैं, जो कहते हैं कि हमारा मन होता है
कि हम सड़कों पर नंगे खड़े हो जाएं और लोग हमें नंगा देखें। हमारी यह निर्दोष इच्छा है, इसको पूरा क्यों न किया जाए? हम किसी का कुछ भी नहीं

बिगाड़ते। हम सिर्फ सड़क पर नंगे खड़े हो जाना चाहते हैं। लोग हमको देखें। हम उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ते। वे न देखना चाहें, वे न देखें, बिना देखे चले जाएं। उनके भी क्लब हैं, उनकी भी सोसाइटी है, बेल्जियम में उनका मूवमेंट है। और वे कहते हैं कि हमको अधिकार मिलना चाहिए। हम किसी का कुछ बिगाड़ते नहीं। हमारा मन होता है कि हम नंगे खड़े हो जाएं। कौन हमको रोकना चाहता है? आपको नहीं देखना, अपनी आंख बंद करिए, चले जाइए।
आपको पता नहीं है, सारी दुनिया में मनुष्य की चेतना उन सारी थोथी बातों के विरोध में खड़ी होती चली जा रही है जिनको हम इतने दिनों तक चिल्लाते रहे हैं। न आपका व्यवहार मूल्य का है, न आपका आचरण, न आपकी नीति की शिक्षा। वह बुनियादी रूप से गलत है। और उसके खिलाफ जिस दिन भी प्रतिक्रिया पूरी होगी उस दिन सारी जमीन पर एक ज्वालामुखी खड़ा हो जाएगा। खड़ा हो गया है!
स्वीडन, नार्वे के लड़कों ने--हाईस्कूल के लड़के और लड़कियों ने--अपने मां-बाप को यह कह दिया है कि हम जैसे ही सेक्सुअली मैच्योर होते हैं, तेरह और चौदह साल के होते हैं, उसके बाद हम एक भी दिन बिना शादी के रहने को तैयार नहीं हैं। किसको हक है? जब हम चौदह साल में प्रौढ़ हो गए विवाह करने के लिए तो बीस साल तक हमें रोकने के लिए कौन हकदार है? यह छह साल का स्टार्वेशन, यह छह साल की सेक्सुअल भूख के लिए कौन जिम्मेवार है? हम शादी करने को तैयार हैं, हम नहीं रुक सकते।
उन्होंने मूवमेंट चलाया और स्वीडन की गवर्नमेंट को झुक जाना पड़ा है।
और इस बात के लिए राजी होना पड़ रहा है कि अगर हाईस्कूल के लड़के-लड़कियां शादी कर लें तो कमाएगा कौन? वे तो अभी पढ़ेंगे। तो लड़के-लड़कियों ने कहा है कि हमें मैरिज अलाउंस मिलना चाहिए। जब हम पढ़ चुकेंगे तब हम बाद में आपको पैसा चुका देंगे। लेकिन शादी हम करेंगे।
हो गई बहुत बकवास आपके नीतिशास्त्रियों की, बहुत दिन चलने वाली नहीं है। और न चले तो अच्छा है। लेकिन उसके न चलने में जो परिणाम होंगे, वे मुझे पसंद नहीं हैं, न मुझे प्रीतिकर हैं, न मैं उनका स्वागत करता हूं। एक बीमारी से दूसरी बीमारी पैदा हो रही है, एक भूल से मनुष्य-जाति दूसरी भूल पर जा रही है। परतंत्रता थी जीवन में, आचरण एक स्लेवरी की तरह था आदमी के ऊपर। अब उसकी प्रतिक्रिया, रिएक्शन यह हो रही है--स्वच्छंदता, आचरणहीनता। लेकिन मैं एक तीसरा विकल्प देखता हूंः आचरण थोपा हुआ नहीं, आत्मा से निकसित; आचरण ऊपर से डाला हुआ नहीं, भीतर से आया हुआ। वह चेतना के परिवर्तन से संभव होता है। और हमेशा जगत में जब भी आचरण किसी का बदलता है तो भीतर से बदलता है। घर में हम दीया जलाते हैं, रोशनी खिड़कियों के बाहर निकलने लगती है। घर का दीया बुझा देते हैं, खिड़कियों में अंधेरा छा जाता है। खिड़कियां उसको प्रकट करती हैं जो घर के भीतर है।
आचरण तो खिड़की है जीवन की, जो हमारे भीतर होता है वह प्रकट होता है। खिड़कियों पर जो दिखाई पड़ता है वह खिड़कियों का नहीं है, वह भीतर से आने वाली चीज है। रोशनी है भीतर तो खिड़कियां रोशनी जाहिर करती हैं, अंधेरा है भीतर तो अंधेरा जाहिर करती हैं। खिड़कियां केवल बताती हैं कि भीतर क्या है। आचरण खबर देता है कि भीतर क्या है।
महावीर, या बुद्ध, या कृष्ण, या राम, या क्राइस्ट, या जरथुस्त्र--इनके जीवन में जो हमें दिखाई पड़ता है वह आचरण नहीं है, वह आत्मा है। लेकिन हम खिड़की को ही देख कर लौट आते हैं, भीतर के दीये की हमें कोई खबर ही नहीं। और हम भी आकर अपने घर की खिड़की को रंगने लगते हैं चमकदार रंगों में। वह चमकदार रंग नहीं है जो कृष्ण की खिड़की पर दिखाई पड़ता है और राम की खिड़की पर दिखाई पड़ता है। वह रंगी हुई खिड़की नहीं है, वह भीतर की रोशनी है जो खिड़की से बाहर प्रकट हो रही है। आप अपनी खिड़की को कितना ही रंग लें, इससे भीतर का दीया नहीं जल जाएगा।
महावीर में दिखाई पड़ती है अहिंसा। बुद्ध में दिखाई पड़ती है करुणा। क्राइस्ट में दिखाई पड़ता है प्रेम। यह भीतर जो घटित हुआ है उसकी अभिव्यक्ति है, उसका एक्सप्रेशन है। यह आचरण नहीं है, यह आत्मा है। हम इसकी नकल करने में पड़ जाते हैं। हम सोचते हैंः हम भी ऐसा ही करें, हम भी इन

जैसे हो जाएं। तो महावीर नग्न रहते हैं तो हम भी नग्न खड़े हो जाएं। क्राइस्ट इस तरह के कपड़े पहनते हैं तो हम भी इस तरह के कपड़े पहन लें। बुद्ध इस तरह का भोजन करते हैं तो हम भी इस तरह का भोजन कर लें। बुद्ध इस करवट सोते हैं तो हम भी इस करवट सो जाएं। इसको हम व्यवहार कहते हैं, इसको हम आचरण कहते हैं।
यह पागलपन है! आचरण की नकल करके कोई आदमी सिर्फ भटक सकता है, कहीं पहुंच नहीं सकता। क्योंकि एक-एक व्यक्ति की आत्मा अनूठी है और जब उसके भीतर का दीया जलेगा तो उसकी अपनी खिड़कियों से रोशनी होगी। बुद्ध की अपनी खिड़कियों से रोशनी होगी। कृष्ण की अपनी खिड़कियों से रोशनी होगी। हर घर की खिड़कियां अलग हैं, हर घर की बनावट अलग है, हर आदमी अलग है। और उसकी जब रोशनी जलेगी... इसीलिए तो दुनिया के इतने बड़े महापुरुष हैं, इनमें कोई मेल नहीं है। अनूठे हैं!
मोहम्मद तलवार लिए हुए खड़े हैं। महावीर के अनुयायी को बिल्कुल समझ में नहीं आता कि मोहम्मद महापुरुष कैसे हो सकते हैं! क्योंकि तलवार लिए हैं और महावीर तो कहते हैं कि चींटी को भी मत मारना! लेकिन मोहम्मद की तलवार में भी वही रोशनी चमक रही है जो महावीर की अहिंसा में चमक रही है। मोहम्मद का अपना व्यक्तित्व है, महावीर का अपना व्यक्तित्व है। रोशनी वही है, खिड़कियां अलग हैं। यह मोहम्मद की तलवार भी इसलिए चमक रही है कि दुनिया में प्रेम बढ़े; यह मोहम्मद की तलवार भी इसलिए चमक रही है कि दुनिया में बुराई न रहे; यह मोहम्मद की तलवार भी इसलिए चमक रही है। इसकी चमक, इसकी चमक में भी कोई गहरा प्रेम और कोई रोशनी है। लेकिन महावीर का अनुयायी नहीं समझ सकता। मोहम्मद का अनुयायी महावीर को नहीं समझ सकता--कि यह आदमी कैसा है? इसके हाथ में तलवार नहीं है, नंगा खड़ा हुआ है। यह आदमी कैसा है?
मोहम्मद और महावीर तो बहुत दूर-दूर हैं। बुद्ध और महावीर एक ही प्रांत में, एक ही समय में पैदा हुए। एक ही गांव में घूमते रहे। एक बार तो एक ही गांव की धर्मशाला में दोनों ठहरे हुए थे। लेकिन दोनों बिल्कुल अलग थे, दोनों बिल्कुल भिन्न थे।
एक-एक व्यक्ति अनूठा है। इसलिए किसी के आचरण की नकल आप मत करना, नहीं
तो अपनी आत्महत्या कर लेंगे। अपनी आत्मा को जगाना, तो जरूर आपकी आत्मा अपना आचरण खोज लेगी। हिमालय से सैकड़ों नदियां निकलती हैं। गंगा अपने रास्ते पर बहती है, सिंधु अपने रास्ते पर, ब्रह्मपुत्र अपने रास्ते पर। कौन सी नदी किस दूसरे नदी के रास्ते पर बहती है? हर नदी का अपना रास्ता है। सब नदियां सागर में पहुंच जाती हैं। लेकिन कोई नदी किसी दूसरे के रास्ते पर नहीं बहती। कोई नदी किसी को फालो नहीं करती। हर एक का रास्ता है, अपनी है नदी, अपना रास्ता है, अपनी है जिंदगी, अपना है पानी, अपने हैं प्राण, और अपनी है प्यास सागर तक पहुंचने की। और सब सागर में पहुंच जाती हैं।
हर आदमी परमात्मा के सागर तक पहुंचता है। लेकिन हर आदमी एक अलग नदी है, उसका अपना रास्ता है, अपनी जिंदगी है। किसी नदी का आचरण किसी दूसरी नदी के लिए आचरण नहीं है, नियम नहीं है। दुनिया में कोई नियम नहीं है जो किसी आदमी पर लागू होता हो। सिर्फ एक बात ध्यान रखने की है कि उसकी नदी कहीं बहना न छोड़ दे, कहीं ठहर न जाए, तालाब न बन जाए। बस इतना ध्यान रहे कि मेरी चेतना की धारा निरंतर विकासमान, गतिमान, बढ़ती रहे, जीवंत रहे। हर पहाड़ को मैं तोड़ कर आगे बढ़ जाऊं।
उसी पहाड़ को थोड़े ही आपको तोड़ना पड़ेगा जो महावीर की नदी को तोड़ना पड़ा था। महावीर की नदी महावीर की नदी थी, उसने दूसरे पहाड़ तय किए थे। न अब वे पहाड़ हैं, न अब वे मैदान हैं। आपको दूसरे पहाड़ पार करने हैं, आपको दूसरे मैदान पार करने हैं। सागर के बिल्कुल दूसरे किनारे पर आपको पहुंचना है। आप किसी के अनुकरण में न पड़ें। जब कोई पूछता हैः आचरण के बाबत कुछ कहें! वह यह कहता हैः कुछ सूत्र बताएं कि हम कैसे चलें, कैसे उठें, कैसे बैठें। वह यह पूछता है कि हमें बता दें सीधा-सीधा कि हम क्या खाएं, क्या न खाएं, क्या पीएं, क्या न पीएं।
ये बेवकूफियां बहुत बताई जा चुकीं। इनसे आदमी की जिंदगी में कुछ भी परिवर्तन, कोई भी क्रांति नहीं हो सकी है। और काफी समय हो चुका कि अब इस

बात को हम समझ लें कि इन टुच्ची बातों का धर्म से कोई भी संबंध नहीं है। धर्म की नाव इन्हीं टुच्ची बातों के किनारे आकर टकराती है और टूट जाती है।
विवेकानंद से अमेरिका में किसी ने पूछा, तुम्हारे मुल्क में इतने धर्म की बातें हैं, लेकिन धर्म तो दिखाई नहीं पड़ता!
विवेकानंद ने कहा कि मेरे मुल्क का धर्म चौके-चूल्हे में जाकर नष्ट
हो गया।
लेकिन हम पूछते हैं कि व्यवहार, तो हम पूछते हैं चौका-चूल्हा--कितनी बार पानी छानें? किसके हाथ का छुआ हुआ पानी पीएं और न पीएं? कितनी बार नहाएं कि न नहाएं? क्या करें और क्या न करें? जीवन का यह जो व्यर्थ उपक्रम है, इसको हम अति मूल्य देते हैं।
इसका कोई भी मूल्य नहीं है। मूल्य है भीतर की चेतना का। और जब भीतर की चेतना जागती है तो सम्यक रास्ते खोज लेती है। रास्ते बनाने नहीं पड़ते, रास्ते उपलब्ध हो जाते हैं, रास्ते मिल जाते हैं।
एक आदमी है, उसे अंधेरे रास्ते पर जाना है। वह पूछता है कि मैं किस पत्थर से बचूं? किस दीवाल से बचूं? किस रास्ते से बचूं?
हम कहते हैं, यह इतना लंबा रास्ता है कि हम कितनी तफसील में तुम्हें बताएं कि तुम किस पत्थर से बचना, किस दीवाल से बचना, किस गली में मत मुड़ जाना। हम कितनी लंबी बात बताएं! यह कैसे बता सकते हैं! हम एक दीया दे देते हैं हाथ में जला कर, यह दीया तुम ले जाओ। रास्ते पर दीया जलता रहेगा, तुम्हें दिखाई पड़ेगाः किस पत्थर से बचना है, किस पत्थर से नहीं बचना है; किस दीवाल से टकराना है, किससे नहीं टकराना है; कहां दीवाल है, कहां दरवाजा है, तुम्हें दिखाई पड़ेगा।
वह कहता है कि दीये-वीये की बातें मत करें, मुझे तो आचरण की बताएं कि मैं किस पत्थर से बचूं और किससे न बचूं।
वह पागलपन की बातें पूछ रहा है। जिंदगी बहुत बड़ी है। प्रतिक्षण जीवन में प्रश्न है और उसका निर्णय आपको करना होगा। न मैं कर सकता हूं, न महावीर, न मूसा, कोई भी नहीं कर सकता उस निर्णय को। क्योंकि मैं जिस रास्ते पर चला हूं, आपको उस रास्ते पर कभी भी नहीं चलना होगा। किसी को कभी उस रास्ते पर नहीं चलना होगा, वह रास्ता मेरा है, वह मेरे साथ है, वह मेरे साथ डूब जाता है, मेरे साथ... ।
लेकिन मैं चाहे किसी भी रास्ते पर चला होऊं और आप चाहे किसी भी रास्ते
पर चलें, दीये को लेकर मैं चला हूं, दीये को लेकर आप भी चल सकते हैं। रोशनी को लेकर चल सकते हैं, रास्ते कोई भी हों। और ध्यान रहे, अगर ठीक से देखें तो रास्तों के दो ही भेद हैंः अंधेरा रास्ता और प्रकाशित रास्ता। और बाकी सब रास्ते कितने ही प्रकार के हों, दो बुनियादी बातें हैंः आपकी जिंदगी अंधेरे से भरी है या कि विवेक का प्रकाश है; विश्वास का अंधकार है, श्रद्धा का अंधकार है, या विचार की और विवेक की रोशनी है।
इस बुनियादी बात पर मैं निरंतर रोज बात कर रहा हूं। और आप पूछते हैं
कि हमें तो व्यवहार की कुछ बात बताएं!
व्यवहार की कोई बात अर्थ की ही नहीं है। अर्थ की बात है कि आपके हाथ में रोशनी कैसे उपलब्ध हो जाए, कैसे आपके हाथ में दीया हो। फिर रास्ता आप देख लेंगे। यह कौन आपको बताएगा कि कितना रास्ता है, कैसे चलें, कैसे उठें। और अगर किसी ने बताया तो वह आपका दुश्मन है, मित्र नहीं है। वह आपको कैद कर रहा है। वह आपके रास्ते पर चलने की स्वतंत्रता छीन रहा है। वह आपके प्राणों को बांध रहा है पीछे। वह आपके लिए मुक्ति की तरफ ले जाने वाला नहीं बन सकता।
इसलिए जो लोग आचरण को प्रमुख मानते हैं, उनके लिए कोई मुक्ति संभव नहीं है। वे तो गुलामी में दीक्षित हो रहे हैं। वे तो परतंत्रता में अपने को बांध रहे हैं और मोक्ष की कामना कर रहे हैं और सोच रहे हैं--हम मुक्त हो जाएं! स्वतंत्र हो जाएं! जंजीरें बढ़ाते जा रहे हैं हाथों पर, पैरों में जंजीरें बढ़ाते जा रहे हैं और सोच रहे हैं कि हम मुक्त होना चाहते हैं। मुक्ति उनके लिए सपना होगी, सत्य नहीं बन सकती है।

मुक्त जिसे होना है उसे पहले चरण में ही मुक्ति को स्वीकार कर लेना होगा, तो अंतिम फल मुक्ति हो सकती है। और पहले चरण में क्या है मुक्ति? पहली स्वतंत्रता क्या है? पहली स्वतंत्रता हैः आत्मा की रोशनी उपलब्ध हो, तो आचरण की परतंत्रता नष्ट हो जाती है।
एक सूफी फकीर बायजीद तीर्थयात्रा पर था। उसने एक महीने का उपवास कर रखा था। रोजे के दिन थे। उसने एक महीने का उपवास कर रखा है। उसके पचास शिष्य भी उसके साथ यात्रा कर रहे हैं। चार या पांच दिन बीत चुके हैं। वे एक गांव में पहुंचे हैं। उस गांव में बायजीद को प्रेम करने वाला उसका एक भक्त है, उसका एक प्यारा है। वह गरीब आदमी है, उसके पास झोपड़ा और थोड़ी सी जमीन थी। उसे खबर मिली कि बायजीद मेरे गांव में आता है, उसने अपनी जमीन बेच दी, झोपड़ा बेच दिया और सारे गांव को भोजन पर निमंत्रित कर लिया। उसे पता नहीं कि बायजीद उपवास किए हुए है, वह भोजन नहीं करेगा। उसे पता नहीं कि बायजीद के साथी भोजन नहीं करेंगे। उसने अच्छे-अच्छे भोजन बनवाए हैं। उसने सब जमीन बेच दी, झोपड़ा बेच दिया। उसने कहा कि मैं जिसे प्रेम करता हूं वह आदमी गांव में आता है, यह गांव के लिए जलसे का दिन है। फिर पीछे सोच लेंगे। सारे गांव को भोजन पर बुला लिया है।
बायजीद आया और उसने देखाः गांव भर में भोजन की सुगंध है, गांव भर में जलसा है, दीये जले हैं। उसने पूछा, यह क्या हो रहा है?
गांव के लोगों ने कहा, वह तुम्हारा जो प्यारा है, उसने अपनी जमीन और मकान बेच दिया, आज रात पूरे गांव को भोजन दिया।
बायजीद के जो शिष्य हैं वे कहने लगे, भोजन? भोजन की बात ही मत करो, हम उपवासे हैं। हम एक महीने तक उपवास रहेंगे।
बायजीद ने कहा कि चुप नासमझो! उपवास की बात भी मत करना, खत्म उपवास। बायजीद के शिष्य तो बहुत हैरान हुए कि यह कैसा आदमी है, जरा सी सुगंध भोजन की मिली कि उपवास खत्म! इसको हम गुरु समझते थे। बायजीद तो भोजन करने बैठ गया। अब जब गुरु बैठ गया तो शिष्यों की बड़ी मुश्किल हो गई। थोड़ा तो उन्होंने इधर-उधर सिर हिलाया, बातचीत की आपस में। लेकिन जब बायजीद भोजन करता है तो अब इनकी कौन सुनेगा, उनको भी मजबूरी में भोजन के लिए बैठ जाना पड़ा।
फिर रात जब जलसा समाप्त हो गया और सारे लोग चले गए और वे सराय में ठहर
गए और सोने गए, तो सारे शिष्य गुरु के ऊपर टूट पड़े।
शिष्य गुरु के ऊपर बहुत बुरी तरह टूटते हैं। यह मत सोचना आप, सबके सामने जनता में गुरु ऊपर होता है, एकांत में शिष्य गुरु के ऊपर हो जाते हैं। असल में, शिष्य बनने का मजा ही यह है कि अकेले में गर्दन पकड़ लो। सबके सामने पैर पकड़ते हैं, अकेले में गर्दन पकड़ते हैं।
उन्होंने सबने घेर लिया बायजीद को और कहा कि यह क्या बेईमानी, क्या धोखा हमारे साथ हुआ! हम उपवास पर थे, धार्मिक कृत्य था, आपने तोड़ दिया, जरा सा भोजन!
बायजीद ने कहा, पागलो, प्रेम से बड़ा कोई नियम नहीं होता। उसके प्रेम
को तुमने नहीं देखा? हम अपने थोथे उपवास की बातचीत उठाते वहां उसके प्रेम के सामने? उपवास कल से फिर शुरू कर देंगे, चार दिन आगे तक उपवास कर लेंगे, इसमें फर्क क्या पड़ता है! एक महीना उपवास चलेगा। और याद रखना, अगर दूसरे गांव में फिर किसी प्रेमी ने प्रेम की खबर लाई, हम फिर उपवास तोड़ देंगे, फिर आगे उपवास कर लेंगे। उपवास इतना जरूरी नहीं है। तुम किस तीर्थ की यात्रा पर जा रहे हो? मेरा तीर्थ तो आ गया। जहां प्रेम है वहां तीर्थ है, मेरा मंदिर तो आ गया। तुम क्या सोचते थे, इस उपवास के लिए उस मंदिर को ठुकरा दें?
यह आदमी चेतना से जी रहा है, उसके शिष्य आचरण से जी रहे हैं। इस आदमी को, रोज-रोज जीएगा, देखेगा, चेतना की रोशनी में जो ठीक दिखाई पड़ेगा करेगा। लेकिन शिष्यों के लिए कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा है। उनके लिए तो संकल्प है, नियम है, कानून है, तय किया हुआ है, कसम खाई हुई है कि एक महीने तक उपवास करेंगे। यह पत्थर की लकीर है उनके लिए, यह गुलामी है उनके लिए। बायजीद मुक्त है। बायजीद जी सकता है।

धार्मिक व्यक्ति मुक्त होता है, बंधा हुआ नहीं। और आचरण वाले लोग एकदम बंधे हुए लोग होते हैं। उन्हें जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, सबसे वंचित रह जाते हैं, क्योंकि क्षुद्र से बंध जाते हैं। एकदम क्षुद्र से बंध जाते हैं।
एक बहुत बड़े आचार्य, आचार्य शंकर, वे काशी के घाट पर चढ़ रहे हैं, मंदिर में पूजा को जा रहे हैं। स्नान किया है, पवित्र हुए हैं, चले हैं सीढ़ियां पार करके। रात का अंधेरा है, अभी सुबह के चार ही बजे हैं। और एक चांडाल... अदभुत बातें हैं, धार्मिक लोगों ने भी कैसे-कैसे नाम खोजे हुए हैं आदमियों के लिए--चांडाल, शूद्र, अछूत, अनटचेबल। ये धार्मिक लोग हैं इन शब्दों को खोजने वाले। एक चांडाल उन्हें छू लेता है। और शंकर क्रोध से भर जाते हैं और कहते हैं कि चांडाल, तूने मुझे छू लिया, अपवित्र कर दिया!
वह चांडाल पूछता है कि क्या आचार्य, मैं यह पूछ सकता हूं कि किसने आपको छुआ? आप तो कहते हैं संसार माया है। तो शरीर माया हो गया। माया ने अगर आपको छुआ है, तो माया भी छू सकती है? जो है ही नहीं वह कैसे छुएगी? जो इल्यूजन है वह छुएगा कैसे? और अगर आप कहते हैं कि मेरी आत्मा ने आपको छू लिया, शरीर ने नहीं, क्योंकि आत्मा सत्य है, ब्रह्म है। तो क्या आप सोचते हैं आत्मा भी चांडाल और शूद्र हो सकती है? तो मुझे बता दें कि किसने आपको छू लिया है? तो फिर ऐसी भूल मैं कभी न करूं।
शंकर एक क्षण खड़े रह गए। उनकी आंखों में जैसे कोई दीया जल गया हो, कोई रोशनी उठ आई है। सारे शास्त्रों को पढ़ कर और लिख कर वे जो नहीं जान सके थे, उस संपर्क में उन्हें अनुभव में आ गया। और उन्होंने कहा, क्षमा कर देना मुझे! मैंने जो बातें अब तक कहीं, वे केवल थिअरी, केवल सिद्धांत रही होंगी। आज तुम पहली दफा मुझे स्पष्ट कर दिए हो कि सब वही है। कौन किसे छू सकता है! कौन चांडाल हो सकता है, कौन ब्राह्मण हो सकता है! फिर वे वापस गंगा में स्नान करने नहीं गए। फिर वे मंदिर में प्रविष्ट हो गए।
लेकिन शंकर की जगह अगर कोई पंडित होता, तो बड़ी मुश्किल बात थी। चांडाल
की चमड़ी खींची जा सकती थी, गर्दन काटी जा सकती थी। शंकर अपनी रोशनी से जी रहे हैं, तो एक क्षण में उन्हें दिखाई पड़ सकता है कि गलत! तो सारा कल तक का आचरण फेंक देने की क्षमता है। लेकिन अगर आचरण से जी रहे हों, तो जाकर किताबों में देखते कि यह कैसे हो सकता है कि चांडाल को छुआ हुआ मंदिर में जाऊं! यह तो आचरण नहीं है, यह तो बड़ी गड़बड़ बात है। स्नान करो फिर से। लेकिन नहीं, अपने दीये से जी रहे हैं तो बात दूसरी है।
तो मैं चाहता हूं कि आदमी अपनी रोशनी से जीए। और एक-एक आदमी स्वतंत्र हो, किसी का परतंत्र न हो, किसी की तरफ आंख उठा कर न देखे कि मैं तुम्हारे जैसा चलूंगा। किसी को हक नहीं है कि किसी को अपने जैसा चलाए। यह वायलेंस है, यह हिंसा है कि मैं यह कोशिश करूं कि आप मेरे जैसे चलें। यह हिंसा का गहरा से गहरा रूप है।
एक बंदूक उठा कर मैं आपके ऊपर खड़ा हो जाता हूं और कहता हूं कि चलो! बैठो! आप उठते हैं, बैठते हैं। मुझे क्या मजा आता है?
मुझे मजा आता है मालकियत का, डामिनेशन का।
हिटलर बंदूक लेकर खड़ा हो जाता है, लाखों लोगों को हिलाता-डुलाता है। स्टैलिन बंदूक लेकर खड़ा है, लाखों लोगों को हिलाता-डुलाता है। मजा क्या है?
मजा यह है कि मेरे इशारे पर लाखों लोग लेफ्ट-राइट करते हैं, बाएं-दाएं घूमते हैं, जो मैं कहता हूं वह उन्हें करना होता है।
ये बंदूक वाले लोग बड़े नासमझ हैं। धर्मगुरु, नेता, नीतिशास्त्री ज्यादा होशियार हैं। वे भी यही मजा लेते हैं कि लाखों लोग मेरे जैसे कपड़े पहनते हैं, मेरे जैसा खाना खाते हैं, मेरे जैसे उठते-बैठते हैं। लेकिन बंदूक उनके हाथ में नहीं, इसलिए आप धोखे में आ जाते हैं। लेकिन रस वही है-- दूसरे को मुट्ठी में बांधने का, दबाने का, ढालने का, आदमी के साथ वस्तुओं जैसा व्यवहार करने का, मिट्टी जैसा व्यवहार करने का कि मैं उसको ढालूं, बनाऊं। इससे ही तो यह हालत पैदा होती है कि लाखों लोग गेरुए वस्त्र पहने खड़े हैं, हजारों लोग मुंह-पट्टियां बांधे हुए खड़े हैं, हजारों लोग कुछ और

ढंग से खड़े हुए हैं। और एक कतार बंधी हुई है और एक कब्जा है किसी का, उसने नियम निर्धारित किए हैं एक-एक आदमी को ढालने के।
आदमी कोई मशीन है? आदमी कोई यंत्र है? फोर्ड की कारें एक जैसी हो सकती हैं, ठीक है, क्षम्य है। लेकिन आदमी एक जैसे हो सकते हैं, इस बात की कोशिश भी अक्षम्य है, इस बात की कोशिश भी क्षमा के योग्य नहीं है। आदमी यूनीक है। यह जो उसकी यूनीकनेस है, यह जो उसकी अद्वितीयता है, बेजोड़पन है, यही उसकी आत्मा है।
आत्मा का अर्थ क्या होता है? आत्मा का अर्थ होता हैः वह जो तुम्हीं हो
और कोई भी नहीं है। आत्मा का अर्थ होता हैः तुम्हारी आथेंटिक यूनीकनेस, तुम्हारी वह जो प्रामाणिक अद्वितीयता है, जैसे तुम हो और कोई भी नहीं। सारे जगत में अकेलापन, वह जो बुनियादी रूप से व्यक्तित्व है, वह जो इंडिविजुअलिटी है, वही तो आत्मा है। धर्मों ने--जिन्हें हम आज तक धर्म कहते हैं--आत्मा को नष्ट किया है, विकसित नहीं; क्योंकि आचरण को थोपा है। तो मैं कोई आचरणवादी नहीं हूं, कोई व्यवहारवादी नहीं हूं, कोई परतंत्रतावादी नहीं हूं। किसी आदमी के लिए नियम तय करने का मुझे कोई अधिकार नहीं, किसी को भी कोई अधिकार नहीं है। एक बात जरूर हम विचार कर सकते हैं और वह यह कि मनुष्य की चेतना का दीया कैसे जलता है। वह भी कोई दूसरा आपके दीये को नहीं जला सकेगा। लेकिन पड़ोस के घर में दीया जल रहा हो, तो आपकी भी प्यास जग सकती है कि मेरे घर में भी दीया जल जाए। पड़ोस का दीया आपके घर में नहीं आ जाएगा, लेकिन आपके घर का अंधेरा दिखाई पड़ सकता है पड़ोस के दीये के प्रकाश में। अंधेरे को देखने के लिए भी रोशनी चाहिए। अंधेरा भी फिर दिखाई नहीं पड़ता। तो पड़ोस में अगर रोशनी जल रही हो, तो घर अंधेरा है, यह पता चलने लगता है।
बस महावीर का, बुद्ध का, जीसस का, जरथुस्त्र का एक ही उपयोग है कि उनका जला हुआ दीया आपके अंधेरे घर की खबर देने लगे। बस, इससे ज्यादा नहीं। उनके घर में खिला हुआ फूल, उसकी सुगंध, आपके घर के रूखे मैदान की खबर देने लगे कि यहां भी फूल हो सकते थे, लेकिन फूल नहीं हो पाए हैं।
तो दीया कैसे जलाया जाता है? दीया कैसे जलता है? कौन सी पात्रता चाहिए? कौन सी बुनियाद चाहिए? कौन सी भूमिका चाहिए कि दीया जल जाए? उस भूमिका को समझा जा सकता है। समझने के बाद भी हरेक के घर में दीया जलने का उपक्रम थोड़ा-थोड़ा भिन्न होगा। हरेक के घर के दीये अलग होंगे, तेल अलग होगा, बाती अलग होगी। हरेक के घर में दीया फिर भी भिन्न-भिन्न जलेगा। रोशनी होगी, लेकिन दीये भिन्न-भिन्न होंगे।
इस भिन्नता को समझते हुए प्यास पैदा हो जाए, पात्रता ख्याल में आ जाए, उसकी मैं कोशिश करता हूं। मुझसे मत पूछें कि आप कैसे चलें, कैसे उठें, कैसे बैठें। मुझसे मत पूछें कि क्या खाएं, क्या पीएं, क्या न पीएं। मुझसे यह पूछें कि मेरे पास रोशनी कैसे हो कि मैं जो भी करूं वह अंधेरे में न हो। बस! मैं कहता हूं, चोरी भी करें तो रोशनी में करें। बस! और मैं जानता हूं भलीभांति कि आज तक रोशनी में चोरी कोई भी नहीं कर पाया। इसलिए उसकी फिकर नहीं है। मैं कहता हूं, मांस भी खाएं तो रोशनी में खाएं। क्योंकि मैं जानता हूं कि रोशनी में आज तक कोई मांस नहीं खा पाया। मैं कहता हूं, झूठ भी बोलें तो रोशनी में बोलें। क्योंकि मैं जानता हूं, रोशनी में आज तक कोई झूठ नहीं बोल पाया। इसलिए झूठ की फिकर करने की कोई जरूरत नहीं है, रोशनी की फिकर करने की जरूरत है।
एक बार जीवन की ज्योति में जरा सी भी लपट आ जाए, तो आप पाएंगे कि आचरण बदल गया, ट्रांसफार्मेशन हो गया, दूसरे आदमी हो गए आप। बात बदल गई, कल की दुनिया गई, आप दूसरे आदमी हैं। बदलना नहीं पड़ता है आचरण कि ठोंक-ठोंक कर बदल रहे हैं। सत्य को बिठा रहे हैं, असत्य को निकाल रहे हैं। बेईमानी निकाल रहे हैं, ईमानदारी बिठाल रहे हैं। यह असंभावना है। क्योंकि जिसके भीतर बेईमानी बैठी है, कौन ईमानदारी बिठालने आएगा? वही बेईमान आदमी ईमानदारी बिठाल लेगा? वह उसमें भी बेईमानी कर जाएगा।
एक आदमी ने एक मुसीबत के क्षण में, नाव उसकी डूब रही थी, तो उसने भगवान
से कह दिया कि अगर मैं बच जाऊं, तो मेरा जो महल है राजधानी में उसको बेच कर

मैं गरीबों में बांट दूंगा। पड़ोस के जो लोग थे यात्री, वे हैरान रह गए। वह महल पांच लाख रुपये का था। और वह आदमी निपट कंजूस था। उसके घर के बाहर भिखारी भीख नहीं मांगते थे। दूसरे नये भिखारी आते थे, पुराने भिखारी कह देते, उस महल में मत जाना, वहां कभी किसी को भीख नहीं मिली। भिखारी भी जानते थे। इस आदमी ने कह दिया कि सब दान कर दूंगा, पांच लाख रुपये का महल बेच कर गरीबों में बांट दूंगा।
नाव लग गई। कोई उसके निर्णय से लग गई हो, ऐसा नहीं। क्योंकि भगवान को पांच लाख का कोई बहुत मूल्य हो, ऐसा नहीं। संयोग था, नाव बच गई होगी। वह आदमी घर गया। अब बड़ा परेशान हुआ। जैसे ही नाव से उतरा, परेशानी शुरू हुई कि वह मकान का क्या होगा? बच गया तो परेशानी शुरू हुई कि अब क्या होगा? क्या करूं, क्या न करूं?
दूसरे दिन उसने नीलाम किया मकान का और मकान बेच दिया। और मकान से जो पैसे मिले, गरीबों में बांट दिए। लेकिन उसकी पूरी कहानी समझेंगे तो पता चलेगा उसने होशियारी कर ली। बेईमान आदमी प्रार्थना भी करेगा तो बेईमानी कर जाएगा।
उसने क्या किया? उसने मकान में एक बिल्ली बांध दी और सारे गांव के लोगों को इकट्ठा करके कहा कि मुझे नीलाम करना है--बिल्ली की कीमत पांच लाख, मकान की कीमत एक रुपया। लोगों ने कहा, पागल हो गए हो? बिल्ली की कीमत पांच लाख रुपया, मकान की एक रुपया! उसने कहा, हां! बिल्ली पांच लाख में बेचूंगा, मकान एक रुपये में। दोनों इकट्ठे बेचूंगा, अलग-अलग बेचूंगा नहीं। लोगों ने देखा, दाम तो थे उस मकान के पांच से दस लाख के बीच में। एक आदमी ने मकान खरीद लिया एक रुपये में, बिल्ली पांच लाख रुपये में। पांच लाख उसने तिजोरी में रखे, एक रुपया गरीबों को बांट दिया।
यह आदमी बेईमान है, वह ईमानदारी लाएगा कहां से? चोर आदमी अचोरी लाएगा कहां से? झूठ बोलने वाला सत्य को लाएगा कहां से? उसके झूठ बोलने वाले के सत्य में भी बुनियादी झूठ होगा। हिंसक आदमी अहिंसा लाएगा कहां से? उसकी अहिंसा में भी बुनियाद में हिंसा होगी। धोखा दे सकता है, लेकिन खुद के भीतर परिवर्तन नहीं हो सकता है। यह सवाल ही नहीं है। क्रोधी आदमी कहे कि मैं धीरे-धीरे क्षमा साध लूंगा। पागल हो गया है, क्रोधी आदमी क्षमा साधेगा कैसे? कोई क्रोधी कभी क्षमावान नहीं बनता, कोई हिंसक अहिंसक नहीं बनता, कोई लोभी दानी नहीं बनता। रोशनी नहीं होती तो लोभ होता है, क्रोध होता है, हिंसा होती है। रोशनी जलती है, लोभ नदारद हो जाता है, क्रोध नदारद हो जाता है, असत्य नदारद हो जाता है।
एक आदमी क्रोधी था। इतना क्रोधी कि उसने अपनी औरत को कुएं में धक्का देकर गिरा दिया, मार डाला। अपने बच्चे की टांग तोड़ दी। ऐसे तो अक्सर बाप कहते हैं बेटों से कि टांग तोड़ देंगे। लेकिन उसने तोड़ ही दी। मन तो सभी बाप का होता है। लेकिन कुछ लोग सिद्धांत को आचरण में ले आते हैं, कुछ लोग नहीं ला पाते। वह आचरण में ले आया सिद्धांत को, उसने टांग तोड़ दी। पत्नियों को कुएं में ढकेलने की इच्छा तो हर पति की होती है। लेकिन इसको सपने में ढकेलते हैं, ऐसा रोज-रोज सामने नहीं ढकेलते। नींद खुलते से तो कहते हैं कि तेरे बिना मैं जी नहीं सकता, नींद में कुएं में ढकेलते हैं। लेकिन उसने ढकेल दी। वह बड़ा आचरणवादी रहा होगा, जो मानता था वैसा करता था। इस तरह के लोगों को लोग महापुरुष कहते हैं। लोग कहते हैं, महापुरुष की यह परिभाषा कि वह जो मानता है वैसा ही करता है। वह महापुरुष रहा होगा। जैसा मानता है वैसा ही करता है।
लेकिन फिर बहुत पीड़ित हो गया। क्योंकि क्रोध तो पीड़ा लाएगा, दुख लाएगा। वह एक साधु के पास गया और उसने कहा कि मैं क्या करूं?
साधु ने कहा, तू क्षमा साध! क्योंकि क्रोध को मिटाने की तरकीब है क्षमा।
यह कितना गणित जैसा साफ दिखाई पड़ता है। कितना साफ दिखाई पड़ता है कि क्रोध को मिटाना है, क्षमा को साधो! बिल्कुल फेलेसियस लाजिक है, बिल्कुल झूठा तर्क है, कोई सच्चाई नहीं इसमें, कोई गणित नहीं, कोई विज्ञान नहीं।

क्योंकि क्रोधी क्षमा साध सकता है, यही असंभावना है। अगर क्रोधी क्षमा साध सकता है, वह क्रोधी ही नहीं।
उसने कहा कि ठीक है, कैसे क्षमा साधूं?
तू लोगों की सेवा कर। मरुस्थल था उसका गांव, गांव के बाहर रास्ता गुजरता था, राहगीर गुजरते थे प्यासे धूप में। उसके गुरु ने कहा कि तू जा पश्चात्ताप कर। गांव के बाहर जो सूखा दरख्त है, उसके पास पानी लेकर बैठा रह और राहगीरों को पानी पिला। उनकी सेवा कर, उनके पैर दाब, उनको पानी पिला, थकों की सेवा कर, बीमारों का इलाज कर। प्रेम प्रकट कर, तो फिर तेरा क्रोध विलीन हो जाएगा।
उसने कहा, जैसी आज्ञा! वह उसी वक्त गया। जाकर वह अपने झाड़ के पास पानी
का इंतजाम कर लिया, सेवा का इंतजाम कर लिया। झाड़ की छाया में दो-चार बिस्तर लगा रखे। जो भी राहगीर आता, उनके पैर दबाता, पानी पिलाता। उसकी ख्याति फैलने लगी, दूर-दूर तक उसकी खबर पहुंच गई।
एक दिन एक आदमी भागा हुआ चला जा रहा है। उसने अपनी सुराही उठाई पानी
की और कहा कि राहगीर, पानी पीओ! लेकिन उस आदमी ने उसकी तरफ देखा भी नहीं। वह शायद जल्दी में है, शायद उसे प्यास नहीं। उसका तो क्रोध भारी हो गया। वह आदमी चला गया, वह सुराही लिए खड़ा है। उसने चिल्ला कर कहा कि सुनते नहीं हो? पानी पीओ! लेकिन उस आदमी को जल्दी थी, उसने फिर भी नहीं सुना। उसने बंदूक उठा ली और उसने कहा, सुनता है कि नहीं रे आदमी के बच्चे! मैं सेवा करने को यहां खड़ा हूं, सुन ही नहीं रहा है! सीधा चला जा रहा है।
उसके गुरु को खबर लगी, उसके गुरु ने कहा कि अरे, वह तीन वर्ष से सेवा कर रहा था और बंदूक उठा ली!
ये जितने सेवक हैं दुनिया में, अगर इनकी आप सेवा स्वीकार न करें, ये भी बंदूक उठा लेंगे। ये कहते हैं हम सेवा करेंगे, अगर आप सेवा न मानो तो झंझट शुरू हो जाएगी। ये कोई जीवन को बदलने के मार्ग नहीं हैं। और इन गलत मार्गों की प्रतिष्ठा रही है इसलिए जीवन नहीं बदल सका है। और अगर जीवन बदलना है तो नये रास्ते खोज लेना जरूरी है। आचरण का रास्ता गलत है। आत्मा का रास्ता सही है। उसकी मैं बात कर रहा हूं।
इसलिए मुझसे मत पूछें कि आचरण क्या करें? व्यवहार क्या करें? काफी कर चुके आचरण और व्यवहार। अब कृपा करें। अब आचरण और व्यवहार न करें। अब आत्मा के दीये को जलाने के लिए कोई उपाय करें। अगर मेरी यह बात ख्याल में आए तो एक बुनियादी अंतर दिखाई पड़ सकता है।
सुबह की चर्चा पूरी हुई।
मेरी बातों को इतने शांति से सुना, उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

माटी कहै कुम्हार सूं
बारहवां प्रवचन

अहंकार--मृत्यु का सूत्र

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक छोटी सी घटना से मैं आज की चर्चा शुरू करना चाहूंगा। एक काल्पनिक घटना ही मालूम होती है, एक सपने जैसी झूठी, एक किसी कवि ने सपना देखा हो ऐसा ही। लेकिन जिंदगी भी बहुत सपना है और जिंदगी भी बहुत कल्पना है और जिंदगी भी बहुत झूठ है।
एक बहुत बड़ा मूर्तिकार था। उसकी मूर्तियों की इतनी प्रशंसा थी सारी पृथ्वी पर कि लोग कहते थे कि वह जिस व्यक्ति की मूर्ति बनाता है, अगर उस व्यक्ति को मूर्ति के पास ही श्वास बंद करके खड़ा कर दिया जाए, तो पहचानना मुश्किल है कि कौन मूल है, कौन मूर्ति है; कौन असली है, कौन नकल है।
उस मूर्तिकार की मृत्यु निकट आई। वह मूर्तिकार बहुत चिंतित हो उठा। मौत करीब थी, वह बहुत भयभीत हो उठा। लेकिन फिर उसे ख्याल आयाः क्यों न मैं अपनी ही मूर्तियां बना कर मौत को धोखा दे दूं!
उसने अपनी ही बारह मूर्तियां बनाईं। और जिस दिन मौत उसके घर में प्रविष्ट हुई, वह अपनी ही बनाई हुई मूर्तियों में छिप कर खड़ा हो गया। वहां तेरह एक जैसी मूर्तियां दिखाई पड़ने लगीं। मौत तो चकित रह गई, एक व्यक्ति को लेने आई थी, वहां तेरह एक जैसे लोग थे! एक को ले जाने की आज्ञा थी, किसको ले जाए! किसको छा.ेड दे! वे बिल्कुल एक जैसे थे, पहचानना मुश्किल था। मौत वापस लौट गई और उसने परमात्मा से जाकर कहा कि मैं किसको लाऊं, वहां तेरह एक जैसे लोग मौजूद हैं!
परमात्मा ने मौत के कान में एक सूत्र कहा और कहा, इस सूत्र का उपयोग करना, असली आदमी अपने आप बाहर आ जाएगा।
वह मौत वापस आई, वह फिर उस कमरे में गई जहां मूर्तिकार छिपा था अपनी मूर्तियों में। उसने एक नजर डाली और फिर हंसने लगी और बोली, और सब तो ठीक है, एक छोटी सी भूल रह गई। इतना सुनना था कि वह मूर्तिकार बोला, कौन सी भूल? और उस मृत्यु ने कहा, यही कि तुम अपने को नहीं भूल सकते हो। बाहर आ जाओ! यही कि तुम यह नहीं भूल सकते हो कि तुमने इन मूर्तियों को बनाया है। यही कि तुम्हारा अहंकार विस्मरण नहीं हो सकता--तुम्हारी ईगो, तुम्हारा यह ख्याल कि मैं हूं। और परमात्मा ने मुझसे कहा कि जिसे यह ख्याल है कि मैं हूं, वह आदमी मृत्यु से नहीं बच सकता। लेकिन जिसका यह ख्याल मिट जाता है कि मैं हूं, उसे मृत्यु ले जाने में असमर्थ हो जाती है, वह अमृत को उपलब्ध हो जाता है।
यह बात, यह घटना तो सच नहीं हो सकती, लेकिन आदमी की जिंदगी में निरंतर यही होता है। वे लोग जो मैं से भरे हुए हैं, वे जो अहंकार से भरे हुए हैं, वे एक बार मरते हों ऐसा भी नहीं, वे रोज मरते हैं और प्रतिपल मरते हैं। अहंकार बड़ी कमजोर चीज है। जरा सी हवा का झोंका, और टूट जाता है; जरा सा फर्क, और मिट जाता है। सम्हाले रहो, सम्हाले रखो, जरा सी चूक, और छितर-बितर हो जाता है। और जिंदगी भर सम्हालने की कोशिश करो, और आखिर में मौत तो उसे बिल्कुल तोड़ ही देती है।
अहंकार के साथ जो जीता है वह मौत के साथ जीता है। और मौत के साथ जो जीता है अगर वह भयभीत रहे, घबड़ाया रहे, चिंतित रहे, अशांत रहे, परेशान रहे, बेचैन रहे तो आश्चर्य क्या है? मौत के साथ जो भी जीएगा, भयभीत रहेगा, चिंतित रहेगा, अशांत रहेगा। स्वाभाविक है। चौबीस घंटे मौत के साथ जीना कैसे?
लेकिन मौत के साथ जीने की कोई जरूरत नहीं है। मौत के साथ इसलिए जीना पड़ता है क्योंकि हम अहंकार के साथ जीते हैं। अहंकार मरणधर्मा है। अहंकार मृत्यु का सूत्र है। जहां अहंकार है वहां मृत्यु है और जहां अहंकार नहीं वहां अमृत है, वहां कोई मृत्यु नहीं।

एक फकीर से कोई पूछता था कि मैं यह जानने आया हूं कि जीवन और मृत्यु का संबंध क्या है? जीवन और मृत्यु क्या है? क्या मुझे बताएंगे जीवन और मृत्यु के संबंध में कुछ?
वह फकीर कहने लगा, अगर जीवन के संबंध में जानना हो तो मैं कुछ बता सकता हूं, मृत्यु के संबंध में कुछ भी नहीं। क्योंकि न मैं कभी मरा और न मैं कभी मर सकता हूं। मुझे मृत्यु का कोई पता नहीं है। उन लोगों के पास जाओ जो रोज-रोज मरते हैं, वे शायद मृत्यु के संबंध में तुम्हें कुछ बता सकें। मैं तो केवल जीवन को जानता हूं।
अहंकार को जो छोड़ देता है वह जीवन को जान लेता है--उस जीवन को जिसका कोई अंत नहीं है, जिसकी कोई समाप्ति नहीं है, जिसका कोई प्रारंभ नहीं है, जिसकी कोई सीमा नहीं है। धार्मिक जीवन का तीसरा सूत्र अहंकार से मुक्ति है। यह अहंकार क्या है इसे हम थोड़ा समझ लें, तो शायद इससे मुक्त कैसे हुआ जा सकता है वह भी हमें दिखाई पड़ जाए। और यह अहंकार क्या है इसकी थोड़ी सूझ हमें आ जाए, तो शायद इससे मुक्त होने के लिए भी हमें कुछ भी न करना पड़े। इसकी समझ ही इसकी मुक्ति भी बन सकती है। यह अहंकार क्या है? किस-किस रूपों में हमारे प्राणों को पकड़ता है? किस-किस भांति हमारे जीवन का केंद्र बन जाता है, जीवन का सब कुछ बन जाता है? और सब भूल जाते हैं फिर हम और सारे जीवन को समर्पित कर देते हैं एक ऐसी बात पर जिसका कोई भी मूल्य नहीं।
एक छोटा सा बच्चा रेत पर, नदी की रेत पर, हस्ताक्षर कर रहा है। एक बूढ़ा आदमी उससे कहने लगा, पागल, रेत पर हस्ताक्षर कर रहा है! थोड़ी देर में हवा आएगी और रेत को उड़ा जाएगी। मेहनत बेकार हो जाएगी। थोड़ी देर में पानी आएगा और सब बह जाएगा। श्रम व्यर्थ हो जाएगा। रेत पर हस्ताक्षर मत कर, हस्ताक्षर करने हों तो मजबूत चट्टान पर कर!
मैं भी वहां था, मैं उस बूढ़े की बात सुन कर हंसने लगा और मैंने कहा, क्या आपको पता है, जो आज रेत दिखाई पड़ रही है वह कभी मजबूत चट्टान थी और जो आज मजबूत चट्टान है वह कल रेत हो जाएगी! चाहे रेत पर हस्ताक्षर करो, चाहे मजबूत चट्टानों पर, सब हस्ताक्षर पानी पर खींची गई लकीरों से ज्यादा सिद्ध नहीं होते।
अहंकार क्या है? पानी पर हस्ताक्षर करने की पागल कोशिश! मैं लिख जाना चाहता हूं कि मैं हूं! मैं कह जाना चाहता हूं जोर से कि मैं था! मैं जोर से चिल्लाना चाहता हूं कि जानो कि मैं हूं! यह आवाज शून्य में गूंज कर विलीन हो जाएगी। यह कोई भी नहीं सुन सकेगा। क्योंकि जिनको मैं सुनाना चाहता हूं वे खुद भी इसीलिए आतुर बैठे हैं कि वे चिल्ला रहे हैं कि मैं हूं! हमें सुनो! वे सुनने के लिए कोई भी उत्सुक नहीं हैं, वे सभी सुनाने को उत्सुक हैं।
"मैं" के पीछे आदमी दौड़-दौड़ कर अगर पागल हो जाता हो, विक्षिप्त हो जाता हो... । होगा ही! किसको सुनाना चाहते हैं आप? किससे कह जाना चाहते हैं कि मैं था, मैं हूं? किससे कहना चाहते हैं? कौन सुनेगा? कौन सुनने को मौजूद है?
एक सम्राट चक्रवर्ती हो गया था, उसने सारी पृथ्वी जीत ली थी। कहते हैं चक्रवर्तियों को यह अधिकार था कि वे स्वर्ग में जाकर वहां सुमेरु पर्वत पर हस्ताक्षर कर सकते थे। सुमेरु सबसे ज्यादा सख्त चट्टान है। कल्प बीत जाते हैं, महाकल्प बीत जाते हैं, सृष्टि बनती है और मिट जाती है, लेकिन सुमेरु अडिग खड़ा रहता है। चक्रवर्तियों को, जो सारी पृथ्वी जीत लेते हैं, उन्हें हस्ताक्षर करने का मौका मिलता था। उसने सारी पृथ्वी जीत ली। वह बैंड-बाजे लेकर स्वर्ग के द्वार पर पहुंच गया।
लेकिन द्वारपाल ने उसके कान में कहा कि महानुभाव, अच्छा हो कि आप अकेले ही भीतर जाएं, इन सबको भीतर न ले जाएं। बाद में आप पछताएंगे कि इनको भीतर ले गए। इनको आप बाहर छोड़ें, आप अकेले ही हस्ताक्षर कर आएं। मैं जो कह रहा हूं, बाद में इस बात की समझ, इस बात की बुद्धिमत्ता आपको पता चलेगी। सम्राट अकेला भीतर गया। विराट पर्वत था जिसके ओर-छोर न हों, आकाश को छूते हुए जिसके शिखर थे। लेकिन वह पहरेदार कहने लगा, आप जगह खोज लें, कहीं अगर हस्ताक्षर लिखने को जगह बची हो। जहां तक मैं जानता हूं, पहाड़ पूरा भरा

हुआ है, हस्ताक्षर करने को कोई जगह नहीं। बहुत से चक्रवर्ती अतीत कालों में हस्ताक्षर कर चुके हैं।
सम्राट तो हैरान हो गया! उसने सोचा थाः उस विराट पर्वत पर शायद मैं ही अकेला हस्ताक्षर करने जा रहा हूं या होंगे एक-दो और हस्ताक्षर! लेकिन वह विराट पर्वत रत्ती-रत्ती भरा है, वहां कहीं कोई जगह नहीं, सब जगह हस्ताक्षर हो गए हैं।
तो वह सम्राट कहने लगा, यह क्या है? फिर अर्थ भी क्या है यहां हस्ताक्षर करने का? कौन पढ़ता होगा इन्हें?
वह पहरेदार कहने लगा, जहां तक मैं समझता हूं, जो लिखता है वही पढ़ता है,
और कोई भी नहीं।
अपने हस्ताक्षर आदमी खुद ही पढ़ता है, कोई और नहीं पढ़ता। किसको फुर्सत पड़ी है! किसको समय है! किसको सुविधा है! और जो आदमी अपने हस्ताक्षर करने को आतुर होता है वह आदमी दूसरे के हस्ताक्षर मिटा देने को आतुर होता है। पढ़ने की फुर्सत कहां होगी!
उस पहरेदार ने कहा, कोई नाम मिटा दें पत्थर पर और अपना लिख दें।
राजा का तो मन फीका हो गया। इतनी विजय-यात्रा करके, इतनी हिंसाएं करके, इतनी हत्याएं करके, इतना दुख और पीड़ा झेल कर, जीवन नष्ट करके इसलिए आया था कि सुमेरु पर हस्ताक्षर करेगा! वहां जगह नहीं, दूसरे का नाम पोंछना पड़ेगा। मन उदास और फीका हो गया।
पहरेदार उसकी पीठ ठोंकने लगा और कहा, घबड़ाएं न। मैं हजारों वर्षों से पहरेदार हूं, मेरे पहले मेरे पिता पहरेदार थे, उनके पहले उनके पिता। जन्मों-जन्मों से हमने यह कहानी सुनी है कि अब तक ऐसा कभी नहीं हुआ कि खाली जगह किसी को भी मिली हो। हमेशा हस्ताक्षर मिटा कर ही नये हस्ताक्षर करने पड़ते हैं। आप चिंतित न हों। ये जो हस्ताक्षर दिखाई पड़ रहे हैं, ये भी किन्हीं के मिटाए हुए हस्ताक्षरों के ऊपर किए गए हैं। आप बेफिक्री से करें।
वह राजा बिना हस्ताक्षर किए वापस लौट आया। और उसने पहरेदार को धन्यवाद दिया कि तुमने अच्छा किया कि जो मेरी भीड़ मेरे पीछे आई थी उसको भीतर नहीं आने दिया। कहीं वह भी यह हालत देख लेती।
आदमी जीवन भर क्या करता है? क्या करना चाहता है? क्या है उसकी आतुर आकांक्षा?
एक छोटी सी और बिल्कुल पागल आकांक्षाः नाम खोद जाना चाहता है! मैं हूं, इसकी घोषणा करना चाहता है। और इस बात का कोई पता ही नहीं कि मैं कौन हूं। किसकी घोषणा करना चाहते हैं, उसका कोई पता नहीं। इस बात का पता नहीं कि जिसको मैं अपना नाम कह रहा हूं वह किसी का भी नाम नहीं है, क्योंकि कोई भी आदमी नाम लेकर पैदा नहीं होता। सब आदमी अनाम पैदा होते हैं--नेमलेस। कोई नाम लेकर पैदा नहीं होता। नाम कामचलाऊ है, एक यूटिलिटेरियन, एक उपयोगी जरूरत। उसके बिना काम नहीं चलता, इसलिए मेरा कुछ नाम है, आपका कुछ नाम है। ऐसे नाम तो किसी का भी कुछ भी नहीं है।
जन्म बिना नाम के, मौत फिर बिना नाम में ले जाती है। और जीवन भर जिस नाम के लिए हम चेष्टा करते हैं, उसकी कहीं अस्तित्व में कोई रेखा भी नहीं बचती। वह नाम कहीं है ही नहीं। जन्म लेता हूं बिना नाम के, मरता हूं बिना नाम के। रोज रात सोते हैं और बिना नाम के हो जाते हैं। नाम रोज मिटता है, डूबता है, बनता है। और मौत तो बिल्कुल बहा ले जाती है। क्योंकि मौत के साथ तो वही बचेगा जो जन्म के साथ आया हो। जो जन्म के बाद निर्मित हुआ है वह मौत के साथ नहीं जा सकता। जो जन्म के पहले से आता है वह मृत्यु में साथ हो सकता है। नाम जन्म के पहले से आपके साथ नहीं है; नाम मौत के बाद आपके साथ नहीं हो सकता।
लेकिन सारा जीवन तो हम इस नाम को ही स्वर्ण अक्षरों में लिखने की चेष्टा में व्यतीत कर देते हैं। क्या-क्या नहीं करते हैं उस नाम के पीछे! कैसी यात्राएं नहीं करते हैं, कैसे दुख नहीं झेलते हैं, कैसी पीड़ाएं! कितनी रातें बिना सोए खो देते हैं, कितने सुख खो देते हैं, कितनी शांति खो देते हैं! किस बात के लिए?

अगर कहीं पृथ्वी के पार कहीं भी और जीवन होगा और अगर चांद-तारों से कोई हमें देखता होता होगा, तो सोचता होगाः यह आदमियत जो है इसे मैन काइंड कहना ठीक नहीं, इसे मैड काइंड कहना ठीक है। इसे मनुष्यता कहना ठीक नहीं, विक्षिप्तता कहना ठीक है। पागल है यह पूरी जाति। पागलपन का केंद्र अहंकार है।
एक सुबह एक सम्राट जंगल में रास्ता भटक गया है। वह रात शिकार करने आया
और रास्ता भूल गया। छोटे से झोपड़े के सामने रुका है, सुबह का नाश्ता कर ले। उसने दो-तीन अंडे मांगे हैं, थोड़ा दूध लिया है और नाश्ता किया है। और जब वह घोड़े पर सवार हो गया है तो उस झोपड़े के बूढ़े मालिक से कहा है, कितने दाम हुए? तो उस बूढ़े मालिक ने कहा, ज्यादा नहीं, सिर्फ सौ रुपये।
सम्राट तो चकित रह गया, तीन अंडों के सौ रुपये दाम! उसने कहा, क्या कहते हो? आर एग्स सो रेयर हियर? इतने मुश्किल हैं अंडे मिलने यहां? सौ रुपये दाम!
उस बूढ़े ने कहा कि नहीं, एग्स आर नाट रेयर सर, बट किंग्स आर! अंडे मिलना मुश्किल नहीं; लेकिन राजा मिलने बहुत मुश्किल। दाम अंडों के नहीं; दाम राजा को देने के हैं।
उसने सौ रुपये निकाल कर बूढ़े को भेंट कर दिए। बूढ़े की औरत तो चकित रह गई! उसने कहा, क्या कर दिया? क्या जादू कर दिया? तीन अंडों के सौ रुपये! उस बूढ़े ने कहा, तुझे पता नहीं। मैं आदमी की कमजोरी जानता हूं। बस कमजोरी को छू दो, फिर आदमी से कुछ भी करवा लो। उससे कहो कि जाओ बंबई से दिल्ली तक नाक के बल चले जाओ, वह नाक के बल बंबई से दिल्ली की तरफ चला जाएगा। कमजोरी की बटन छू दो। उससे कहो, जीवन गंवा दो, एक मकान बना लो ऊंचा। वह जीवन गंवा देगा, एक मकान ऊंचा बना लेगा; वह मकान उसकी कब्र बन जाएगी, बनाते-बनाते वह खतम हो जाएगा। उसकी कमजोरी छू दो, फिर वह पागल हो जाएगा। उससे जो चाहो वह करवा लो! उससे कहो, कपड़े छा.ेडो, नंगे हो जाओ, भूखे-प्यासे खड़े रहो, सिर के बल खड़े रहो चौपाटी पर। वह जिंदगी भर सिर के बल शीर्षासन करता रहेगा। बस कमजोरी छू दो। जो कुछ करवाना हो आदमी से करवा लो, उसकी कमजोरी भर छूने की कला आनी चाहिए, और कुछ भी नहीं चाहिए।
लेकिन वह बुढ़िया नहीं समझी। उसने कहा, मैं कुछ समझी नहीं, यह कमजोरी क्या चीज है? उस बूढ़े ने कहा, तू नहीं समझती तो मैं तुझे एक और घटना बताता हूं, शायद उससे समझ में आ जाए।
जब मैं जवान था तब मैं एक राजधानी में गया। मैं कुछ सौदा करने गया था।
और सौदा वे ही लोग कर सकते हैं ठीक-ठीक जो आदमी की कमजोरी जानते हों। ह्यूमन वीकनेस को जो पहचानते हों, वे ही असली सौदागर हैं, वे ही असली धंधेबाज हैं। तो मैं गया एक राजधानी में धंधा करने। मैंने एक पगड़ी खरीदी पांच रुपये में, बहुत रंग-बिरंगी पगड़ी थी। और पहन कर सम्राट के दरबार में पहुंच गया। जब मैं दरबार में गया, उस चमकदार पगड़ी को देख कर... वह बहुत चमकदार थी। सस्ती चीजें हमेशा चमकदार होती हैं। चमकदार चीजें दिखाई पड़ें, समझ लेना कि भीतर कोई सस्तापन है। जीवन का हिसाब ऐसा है। वह चमकदार पगड़ी देख कर सम्राट ने पूछा कि बड़ी खूबसूरत पगड़ी है, कितने में खरीदी?
उस बूढ़े ने कहा कि मैंने कहा, दाम पूछते हैं, सुनने की हिम्मत है? पगड़ी बहुत महंगी है!
राजा ने कहा, फिर भी, कितने में खरीदी होगी?
पांच हजार रुपये में।
राजा हंसने लगा, आदमी पागल हो गया मालूम होता है। लेकिन उसे पता नहीं
था कि वह आदमी बहुत होशियार है। राजा पागल सिद्ध होगा। वह हंसने लगा, कहा, पांच हजार रुपये? वजीर भी चौंक गया, वजीर ने राजा के कान में आकर कहा, सावधान! आदमी धोखेबाज मालूम होता है, दो-चार रुपये की पगड़ी के पांच हजार रुपये बता रहा है।
उस बूढ़े ने अपनी पत्नी को कहा, मैं भी समझ गया कि वजीर राजा के कान में क्या कह रहा है। क्योंकि जो लोग किसी को लूटते रहते हैं, फिर दूसरा लूटने लगे तो बाधा देना शुरू करते हैं। यह दुकानदारों की होड़ प्रतियोगिता होती है। एक राजनीतिज्ञ दूसरे राजनीतिज्ञ से प्रतियोगिता करता है। एक

संन्यासी दूसरे संन्यासी से प्रतियोगिता करता रहता है। एक दुकानदार दूसरे दुकानदार से। एक साहित्यकार दूसरे साहित्यकार से। एक कवि दूसरे कवि से। सारी दुनिया में... ।
तो उसने कहा, मैं समझ गया कि वजीर क्या कह रहा है। मैं समझ गया कि अपने
ही रास्ते का राहगीर वजीर भी है, लूट रहा है राजा को, मुझको लूटने में बाधा देना चाहता है। लेकिन उस वजीर को भी पता नहीं था कि जो आदमी सामने खड़ा है वह बहुत होशियार है, वह आदमी की कमजोरी जानता है। उस बूढ़े ने अपनी पत्नी को कहा, मैं लौट पड़ा और मैं हंसने लगा और मैंने कहा, अच्छा तो मैं जाऊं! मैं गलत जगह आ गया।
राजा ने पूछा, मतलब?
तो उसने कहा कि मतलब यह कि मैंने जिससे यह पगड़ी खरीदी थी उसने मुझे यह वायदा किया है कि यह पगड़ी, एक ऐसी राजधानी भी है और इस जमीन पर एक ऐसा राजा भी है जो इसे पांच हजार रुपये में खरीद सकता है। मैं उसी की खोज में निकला हूं। तो मैं समझ लूं कि यह वह राजा नहीं, यह दरबार वह दरबार नहीं जिसकी मुझे तलाश है? मैं जाऊं?
राजा ने कहा, पांच हजार रुपये भेंट कर दिए जाएं, पगड़ी खरीद ली जाए।
वजीर तो पागल हो गया! पगड़ी खरीद ली गई, पांच हजार रुपये दे दिए गए। और
जब वह बूढ़ा पांच हजार रुपये लेकर निकल रहा था, तो वजीर रास्ते में मिला और उसने पूछा, महाशय! तुमने तो मुझे चकित कर दिया। आश्चर्य! तुमने वह पांच रुपये की पगड़ी पांच हजार में बेच दी! तो मैंने उस वजीर को कहा था, उस बूढ़े ने कहा, तुम्हें पगड़ियों के दाम पता होंगे, मुझे आदमी की कमजोरी पता है। पता नहीं वह बुढ़िया समझी कि नहीं समझी, लेकिन मैं समझता हूं, आप समझ गए होंगे कि आदमी की कमजोरी क्या है। क्या है आदमी की कमजोरी? अहंकार! यह भाव कि मैं कुछ हूं। समबडी होने का भाव कि मैं कुछ हूं।
यह भाव बहुत रूपों में आदमी को पकड़ सकता है। यह भाव, मेरे पास धन है तो पकड़ सकता है कि मैं धनी हूं। मेरे पास कुछ है। आदमी कुछ इसीलिए इकट्ठा करता है ताकि वह यह अनुभव कर सके कि मेरे पास कुछ है तो मैं कुछ हूं। धन इकट्ठा हो तो लगता है मैं कुछ हूं। बड़ा पद हो, बड़ी कुर्सी हो तो लगता है कि मैं कुछ हूं। बहुत उपाधियां हों, शास्त्रों का ज्ञान हो तो लगता है कि मैं कुछ हूं। त्याग-तपश्चर्या हो, उपवास किए हों, लाखों मालाएं फेरी हों तो लगता है कि मैं कुछ हूं। किसी भी तरह का संग्रह पास में हो तो लगता है कि मैं कुछ हूं। मैंने इतने उपवास किए, मैंने इतनी माला फेरी, मैंने इतने राम-राम लिखे तो लगता है कि मैं कुछ हूं। किसी भी तरह की संपदा इकट्ठी हो तो लगता है कि मैं कुछ हूं। बड़ा आश्चर्य है, आदमी त्याग भी कर देता है, तो उसका भी हिसाब रखता है, उसका भी हिसाब रखता है कि मैंने इतना त्याग किया।
एक संन्यासी के पास मैं था। वे मुझसे कहते थे, मैंने लाखों रुपयों पर लात मार दी। मैंने पूछा, यह लात कब मारी आपने? वे कहने लगे, कोई तीस साल हो गए। मैंने कहा, लात ठीक से लग नहीं पाई मालूम होती है। तीस साल तक स्मृति कैसे बनी रही? तीस साल तक यह ख्याल कैसे बना रहा कि मैंने लाखों पर लात मार दी है? लात लग गई होती तो बात खतम हो गई थी। लेकिन बात खत्म नहीं हुई, स्मृति रस ले रही है, अहंकार आनंद ले रहा है इस बात का कि मैंने, मैं कोई साधारण आदमी नहीं, लाखों रुपयों पर लात मारने वाला संन्यासी हूं!
जब लाखों रुपये रहे होंगे तब यह ख्याल रहा होगा कि मैं लाखों रुपये का मालिक हूं। तब भी अहंकार था, और जब छोड़ दिए तब भी अहंकार है कि मैंने लाखों छोड़ दिए। और पहले अहंकार से दूसरा अहंकार ज्यादा खतरनाक, ज्यादा सूक्ष्म, ज्यादा रुग्ण, ज्यादा विषाक्त है। क्योंकि पहले अहंकार को चोर चुरा कर ले जा सकते थे, दिवाला निकल सकता था, जुआ खेला जा सकता था। दूसरे अहंकार को चोर नहीं चुरा सकते, दिवाला नहीं निकल सकता, कोई सरकार टैक्स नहीं लगा सकती। दूसरे पर कोई उपद्रव नहीं, दूसरा अहंकार बहुत सुरक्षित है कि मैंने लाखों त्याग दिए।
त्याग से भी अहंकार भर सकता है, ज्ञान से भी, धन से भी, पद से भी। अहंकार के रास्ते बहुत सूक्ष्म, मार्ग बहुत अपरिचित, हर तरफ से आदमी को पकड़ ले सकता है।

एक आदमी मंदिर जाता है तो सोचता है कि मैं मंदिर जाता हूं, मैं विशिष्ट हूं, मैं स्वर्ग जाऊंगा। ये बेचारे लोग, ये दुनिया के लोग जो मंदिर नहीं जाते, ये सब नरक में जाने वाले हैं। मैं माला जपता हूं, मैं राम का स्मरण करता हूं, मुझे भगवान बिल्कुल सिंहासन के पास में बिठाएंगे और ये बाकी लोग नरक की कड़ाहियों में सड़ेंगे। ये सब अहंकार के रूप हैं। मैं स्वर्ग में जाऊंगा!
और आपको पता है, हम यह तो भलीभांति पहचान लेते हैं, कोई आदमी धन इकट्ठा करता है, अकड़ कर चलता है, तो हम पहचान लेते हैं कि यह अहंकार है। कोई आदमी बड़ा महल बनाता है, हम पहचान लेते हैं। कोई सिकंदर विजय की यात्रा पर निकलता है, हम पहचान लेते हैं। लेकिन एक आदमी मोक्ष को जीतने चलता है, और एक आदमी कहता है, मैं ईश्वर को पाकर रहूंगा, तब हम नहीं पहचान पाते कि यह भी अहंकार है। मैं मोक्ष पाकर रहूंगा, मैं ईश्वर के दर्शन पाकर रहूंगा--ये भी अहंकार के रूप हैं।
और ये अहंकार के सारे रूप विदा न हो जाएं जीवन से, तो जीवन-सत्य की कोई अनुभूति संभव नहीं है, तो प्रभु के कोई दर्शन संभव नहीं हैं।
दो सूत्रों पर हमने बात की हैः रिबेलियन अगेंस्ट नालेज, ज्ञान के प्रति विद्रोह; रिबेलियन अगेंस्ट पैसिमिज्म, दुखवाद के प्रति विद्रोह। और आज तीसरे सूत्र पर बात करनी हैः रिबेलियन अगेंस्ट ईगोइज्म, अहंकार के प्रति विद्रोह। ये तीन सूत्र मनुष्य की धार्मिक साधना के मंदिर की तीन सीढ़ियां हैं। और अंतिम और सबसे अनिवार्य सीढ़ी अहंकार से मुक्त हो जाने की है।
लेकिन हम मुक्त होने की तो बात दूर, हम प्रतिपल अहंकार को मजबूत करने
की चेष्टा में निरंतर संलग्न होते हैं। सोते-जागते, उठते-बैठते उसे मजबूत करते रहते हैं कि वह मजबूत हो जाए। शायद वही हमारे जीवन का आधार है, वही हमारे पैरों के नीचे की भूमि है। उसको ही सम्हालना है, उसी को सजाना है, उसी को संवारना है।
चौबीस घंटे, सोते-जागते, उठते-बैठते हम क्या सम्हाल रहे हैं? कौन सी चीज को हम सम्हाल रहे हैं? कौन सी चीज के लिए हम चौबीस घंटे श्रम कर रहे हैं? पूछें अपने से, एकांत में कभी अपने से पूछें कि मैं क्या कर रहा हूं? मैं किसलिए जी रहा हूं? मेरी क्या आकांक्षा है? मेरे सारे जीवन की इस दौड़ का केंद्र क्या है? और आप पाएंगे कि अहंकार के अतिरिक्त कोई केंद्र नहीं है। यही अहंकार ईश्वर को जीतने भी चल पड़ता है, मोक्ष को पाने भी चल पड़ता है, स्वर्ग भी जाता है, धन भी पाता है, पुण्य भी कमाना चाहता है। यह अहंकार सब कुछ कर लेना चाहता है। और स्मरण रहे, अहंकार कमजोरी है, शक्ति नहीं। इसलिए अहंकार कुछ भी नहीं कर पाता है सिवाय इसके कि उसकी सारी दौड़ मृत्यु में ले जाती है, और कहीं नहीं। जीवन भर दौड़ कर अहंकार की अंतिम परिणति, अंतिम फल, अंतिम निष्कर्ष मृत्यु होता है।
लेकिन हम इसे रोज देखते हैं, शायद आंखें हमारी बंद हैं। शायद यह दिखाई नहीं पड़ता कि अहंकार आखिर में कहां गिर जाता हैः कब्र में! रोज कब्र बनती है, रोज कोई गिरता है हमारे पड़ोस में चलता हुआ, और हम नहीं देख पाते कि उसकी दौड़ उसे कहां ले गई!
सिकंदर आता था हिंदुस्तान की यात्रा पर। रास्ते में एक फकीर से मिलने चला गया। एक फकीर था डायोजनीज। एक झाड़ के पास सुबह की धूप में उसकी मुलाकात हुई। सिकंदर ने खबर भिजवाई नंगी तलवारों के सैनिकों के हाथ कि मैं आता हूं महान सिकंदर, अलेक्जेंडर दि ग्रेट! डायोजनीज खूब हंसने लगा, खूब हंसने लगा और कहने लगा, जाओ कह देना महान सिकंदर से कि जो अपने को महान कहता है वह पागल है।
सिकंदर को तो कल्पना भी न थी कि ऐसा संदेश वापस लौटेगा। लेकिन उसका दिल भी बेचैन हो उठा उस आदमी से मिलने को जिसके पास कुछ भी नहीं है, जो नंगा एक झाड़ के नीचे पड़ा है और सिकंदर से कहलवा सकता है कि जो महान अपने को समझता है वह पागल है। यह पागलपन की शुरुआत है। सिकंदर को कहना कि कहीं और बढ़ गया तो फिर इलाज मुश्किल हो जाएगा। सिकंदर उससे मिलने गया। सिकंदर ने

कहा कि मैं खुश हूं एक हिम्मतवर आदमी से मिल कर। मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूं, बोलो! मैं तुम्हारे लिए कुछ करना चाहता हूं।
डायोजनीज हंसने लगा, उसने कहा, तेरा मैं नहीं छूटता। तू मेरे लिए कुछ करना चाहता है। तू अपने लिए ही कुछ कर ले तो बहुत है। और रही मेरी बात, मुझे कुछ भी नहीं चाहिए, करने का कोई सवाल नहीं है। इतनी ही कृपा कर कि थोड़ा धूप छोड़ कर खड़ा हो जा--वह नंगा धूप ले रहा था, सुबह की सर्द हवाएं थीं--जरा थोड़ा धूप छोड़ कर खड़े हो जाएं, इतना ही बहुत है। और स्मरण रखें कि आपके हाथ में तलवार है, खतरा है, आप किसी की भी धूप छीन सकते हैं। इतना ही ख्याल रखें कि किसी की धूप आपसे न छिने तो आपने बड़ी कृपा की, और बड़ी कृपा की कोई जरूरत नहीं है।
सिकंदर ने कहा कि अभी तो मैं एक लंबी यात्रा पर जा रहा हूं, ज्यादा देर नहीं रुक सकूंगा। लेकिन लौट कर आया तो तुम्हारे पास बैठ कर समझने की कोशिश करूंगा।
डायोजनीज ने कहा कि जिस यात्रा पर तुम जा रहे हो, उससे लौट कर कोई कभी नहीं आता है। अहंकार की यात्रा से कौन कब लौट कर आता है? डायोजनीज ने कहा, रुक जाओ तो रुक सकते हो, लौट कर नहीं आ सकते। क्योंकि अगर अभी नहीं दिखाई पड़ रहा कि गलत जा रहे हो, तो कल और मुश्किल होगा देखना, परसों और मुश्किल होगा। रोज गलती में जितने जाओगे उतना मुश्किल होगा देखना। बच्चे लौट भी सकते हैं, बूढ़ों को लौटना बहुत मुश्किल हो जाता है फिर सारा रास्ता पार करना लौटने का।
लेकिन बूढ़े बहुत होशियार हैं। वे जिस बीमारी में खुद जीवन भर जीते हैं, बच्चों को भी उसी में दीक्षा देते हैं। बचपन से ही उनको भी दीक्षा अहंकार की दी जाती है। ये सारे स्कूल और ये सारे विश्वविद्यालय और सारे विद्यापीठ, अहंकार की शिक्षा के केंद्रों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हैं। वहां सिखाई जा रही है एंबीशन, वहां सिखाया जा रहा है ईगो, वहां सिखाया जा रहा है मैं। पहली कक्षा के बच्चों को भी हम कहते हैंः प्रथम नंबर आना, पहले नंबर आना। एक छोटा सा निर्दोष बच्चा, उसके भीतर जहर का बीज बो दिया गया-- पहले नंबर आना। हो गया पागलपन का प्रारंभ, बीमारी के रोग डाल दिए गए--पहले नंबर आना। पहले नंबर की बीमारी अहंकार की बीमारी है।
डायोजनीज ने कहा सिकंदर को, काहे के लिए इतनी दौड़-धूप करते हो? किसलिए दौड़ते हो? काहे की यात्रा? क्या पाना चाहते हो? क्या जीतना चाहते हो? क्या है अंतिम इच्छा?
सिकंदर ने कहा, अंतिम? अभी फिलहाल तो एशिया माइनर जीतूंगा, उसके बाद हिंदुस्तान, उसके बाद सारी दुनिया।
डायोजनीज ने पूछा, और उसके बाद?
सिकंदर एकदम उदास हो गया। क्योंकि उसके बाद कोई दूसरी दुनिया जीतने
को बचती नहीं थी। वह उदास खड़ा रह गया। सिकंदर ने कहा, दूसरी दुनिया कोई भी नहीं है, इसलिए मन बड़ा उदास होता है, जब इसको जीत लूंगा तो फिर? फिर सिकंदर ने कहा कि फिर मैं आराम करूंगा, फिर विश्राम करूंगा, शांति से जीऊंगा। डायोजनीज हंसने लगा। उसने कहा, पागल हो गए हो? मैं अभी आराम से जी रहा हूं, विश्राम कर रहा हूं। तुम भी आ जाओ, झोपड़ा काफी बड़ा है, हम दोनों इसमें रह लेंगे। तुम भी विश्राम करो। अगर विश्राम ही करना है आखिर में तो अभी क्या बुरा है? विश्राम शुरू कर सकते हो, इतने दिन खराब करने की जरूरत क्या है? क्योंकि जो तुम दौड़ कर रहे हो, उससे विश्राम का कोई भी संबंध नहीं, उससे शांति का कोई भी नाता नहीं। अहंकार की दौड़ शांति में कैसे ले जा सकती है? अहंकार की दौड़ आनंद में कैसे ले जा सकती है? अहंकार की दौड़ आत्मा में कैसे ले जा सकती है? दौड़ उलटी है। आत्मा दूसरी दिशा में है, आनंद दूसरी दिशा में है, शांति दूसरी दिशा में है।
लेकिन हम तो छोटे बच्चे में भी जहर डालते हैं--पहले नंबर! अधर्म की शुरुआत हो गई। पहले आ जाना, सबके आगे! सबको पीछे छोड़ देना।
जीसस क्राइस्ट कहते थे, धन्य हैं वे लोग जो अंतिम खड़े होने में समर्थ हैं। और हम सिखाते हैं, धन्य हैं वे लोग जो प्रथम खड़े होने में समर्थ हैं।
अगर यह सारी दुनिया पागल हो गई है तो आश्चर्य नहीं है। यह प्रथम होने की

दौड़ का परिणाम है। मनुष्य जब भी किसी दूसरे के आगे होना चाहता है, तभी वह गलत दिशा में चल पड़ा। चल पड़ा वह गलत दिशा में, अब उसके जीवन में कभी चैन न होगा, कभी शांति न होगी, कभी आराम न होगा। क्योंकि ऐसा कभी भी नहीं हो सकता कि वह सबके आगे हो जाए। आदमियत एक गोल चक्कर में खड़ी है। आप एक से आगे निकलेंगे, पाएंगे आगे कोई दूसरा फिर मौजूद है। दूसरे से निकलेंगे, पाएंगे तीसरा मौजूद है। आज तक दुनिया में किसी आदमी ने यह कहा कि मैं सबसे आगे पहुंच गया, अब मेरे आगे कोई भी नहीं, सब पीछे हैं? आज तक कोई आदमी यह नहीं कह सका।
जैसे एक गोल घेरे में बच्चे दौड़ रहे हों। कितना ही दौड़ कर आगे होते हैं, फिर भी पाते हैं कि कोई आगे है, फिर भी पाते हैं कि कोई आगे है, फिर भी पाते हैं कि कोई आगे है। एक सर्कुलर दौड़ है अहंकार की, वहां कोई कभी आगे नहीं हो पाता। लेकिन आगे होने की व्यर्थ दौड़ में नष्ट जरूर हो जाता है। इसलिए अहंकार ले जाता है मृत्यु में।
धर्म अहंकार की यात्रा नहीं, आत्मा की यात्रा है। और अहंकार की व्यर्थता को जो समझता है, देखता है, वही--केवल वही--आत्मा की यात्रा पर गतिमान हो पाता है।
लेकिन हमारा सारा संस्कार, सारी संस्कृति, आज तक की मनुष्यता को सिखाई गई सारी बातें, घूम-फिर कर उसका मैं कैसे और बड़ा हो जाए, कैसे और आगे हो जाए, कैसे और राज-सिंहासनों पर विराजमान हो जाए, बस। और दिखाई नहीं पड़ता कि मैं किसी भूल में होऊंगा, क्योंकि पड़ोसी भी उसी भूल में है, उसके बाद वाला आदमी भी उसी भूल में है। जहां सारे लोग एक ही भूल में हों, वहां दिखाई पड़ना मुश्किल हो जाता है। हम सारे लोग एक ही बीमारी में पड़ जाएं, तो पता चलना मुश्किल है कि हम किस बीमारी में हैं।
मैंने सुना है, एक छोटे से द्वीप पर सारे लोग अंधे थे। कभी-कभी भूल से कोई आंख वाला बच्चा पैदा हो जाता था। जैसे हमारे यहां भूल से कभी-कभी अंधे पैदा हो जाते हैं। आंख वाला बच्चा पैदा हो जाता तो अंधों के उस नगर के सर्जन, डाक्टर जल्दी से उसकी आंख का आपरेशन कर देते। क्योंकि वे सोचते, यह बच्चा बीमार पैदा हुआ है। सबके पास आंखें नहीं हैं, इसके पास ये क्या गड़बड़ चीजें निकल आई हैं! वे उसकी आंख का आपरेशन करके बड़े निश्चिंत हो जाते, मां- बाप बैंड-बाजा बजाते और बताशे बांटते और हरी झंडियां लटकाते घर के सामने कि बच्चे की बीमारी से छुटकारा हो गया। सब अंधे थे, तो आंख वाला बीमार मालूम पड़ता था।
जीसस क्राइस्ट बीमार मालूम पड़ते हैं। क्योंकि उनके मुल्क के सारे लोग अंधे हैं, वह आंख वाला आदमी। सूली पर लटका देते हैं, आपरेशन कर देते हैं उसका, इसका छुटकारा कर दो। गांधी पागल मालूम पड़ते हैं हमको। हम सब होशियार हैं, गांधी पागल हैं। गोली मार दो इसको। सुकरात पागल पड़ता है मालूम हमको। क्योंकि एथेंस के सारे लोग समझदार हैं, ज्ञानी हैं। सुकरात गड़बड़ है। जहर पिला दो इसको। जब भी आदमियत के बीच अहंकार से हीन कोई आदमी पैदा होगा तो हम उसकी हत्या कर देते हैं। क्योंकि हम सारे अहंकार की बीमारी से पीड़ित लोग, हमें यह समझ में नहीं आता कि हम पागल हैं, हम पीड़ित हैं।
लेकिन समझने के लिए बहुत कठिनाई नहीं है। सुकरात आनंद से भरा है। जीसस क्राइस्ट सूली पर भी प्रसन्न हैं। मंसूर के हाथ-पैर काटे जा रहे हैं और वह हंस रहा है।
और हम? हमारे हाथ-पैर नहीं काटे जा रहे हैं और हम रो रहे हैं। और हम सूली पर नहीं चढ़े हैं, हम राज-सिंहासनों पर बैठे हैं और हम .जार-.जार रो रहे हैं। और हमें कोई जहर नहीं पिला रहा है और न कोई हमें गोली मार रहा है, लेकिन हम चौबीस घंटा जहर पी रहे हैं और गोली खा रहे हैं।
हम पागल हैं! पागलपन का लक्षण यह है कि जीवन का सारा परिणाम दुख निकलता हो तो हम पागल हैं। जीवन का परिणाम चिंता निकलता हो तो हम पागल हैं। जीवन का अंतिम परिणाम मौत आती हो तो हम पागल हैं। स्वस्थ चित्त कहीं और पहुंचेगा--मृत्यु पर नहीं, अमृत पर। फल बताते हैं कि बीज कैसा था। फल क्या बताते हैं? हमारी जिंदगी के फल क्या बताते हैं? हमारी जिंदगी के फल

बताते हैं कि बीज कहीं गड़बड़ है। लेकिन सबका बीज गड़बड़ है तो पता नहीं चलता, दिखाई नहीं पड़ता।
एक गांव में एक बार बड़ी दुर्घटना हो गई थी। एक जादूगर आ गया और उसने एक कुएं में गांव के एक पुड़िया डाल दी और सारे गांव में चिल्ला कर कहता गया कि उस कुएं का पानी जो भी पीएगा वह पागल हो जाएगा। लेकिन गांव में एक ही कुआं था। एक कुआं और था, लेकिन वह गांव का नहीं था, वह राजा के महल का कुआं था। गांव के लोग सांझ तक किसी तरह प्यास से अपने को रोके रहे। राजा के कुएं से तो गांव के लोगों को पानी नहीं मिल सकता था। राजा की प्यास अलग, राजा का पानी अलग। आम आदमी की प्यास अलग, आम आदमी का पानी अलग। कहां राजा का कुआं, कहां आम आदमी! उस कुएं पर तो जाने का कोई सवाल नहीं था। फिर आखिर में उन्हें सांझ होते-होते गांव के कुएं पर ही जाना पड़ा। प्यास को तो नहीं रोका जा सकता था, पागलपन भला स्वीकार करना पड़े। सांझ होते-होते सारे गांव ने पानी पी लिया। और अगर वे दिन में पानी पीते रहते तो थोड़ा-थोड़ा पीते। दिन भर पानी नहीं पीया था तो सांझ एकदम से पी गए। और सांझ होते, सूरज ढलते-ढलते पूरा गांव पागल हो गया। राजा बड़ा प्रसन्न है, रानियां बड़ी खुश हैं, वजीर नाच रहे हैं कि हम बच गए। लेकिन उन्हें पता नहीं कि भाग्य कुछ और खेल खेल रहा है।
सांझ होते-होते महल में उदासी छा गई। सारे गांव में खबर फैल गई कि मालूम होता है राजा और रानी और वजीरों का दिमाग खराब हो गया। सारा गांव हो गया था पागल। राजा अजीब मालूम होने लगा। रानियां अजीब मालूम होने लगीं। वजीर अजीब बातें करते हुए दिखाई पड़ने लगे। राजा के पहरेदार भी पागल हो गए, सैनिक भी पागल हो गए। राजा के रक्षक भी पागल हो गए। वे सब हंस-हंस कर देखने लगे कि मालूम होता है राजा का दिमाग खराब हो गया। सारे गांव में जगह-जगह लोग झुंड लगा कर खड़े हो गए और हंसी-मजाक करने लगे कि पता है, राजा का दिमाग खराब हो गया! राजा तक खबर पहुंची, राजा घबड़ाया। रक्षा का कोई उपाय न था, पूरी बस्ती पागल थी। धीरे-धीरे बस्ती राजा के महल के सामने इकट्ठी हो गई और लोग चिल्लाने लगे कि पागल राजा को हम सिंहासन से नीचे उतारेंगे। हम तो ठीक आदमी को सिंहासन पर बिठाएंगे। उतारो राजा को नीचे! दरवाजे खोलो!
राजा ने वजीर से पूछा, अब क्या होगा?
वजीर ने कहा, एक ही रास्ता है कि हम भी उसी कुएं का पानी पी लें।
राजा भागा महल के पीछे के दरवाजों से। महल में पीछे के दरवाजे हमेशा होते हैं। जितना बड़ा महल, उतने पीछे के दरवाजे ज्यादा। गरीब की झोपड़ी में सामने का ही दरवाजा होता है। क्योंकि पीछे के दरवाजों की महलों में बड़ी जरूरत होती है, वक्त-बेवक्त उनसे जाना भी पड़ता है और निकलना भी पड़ता है। भागे राजा और वजीर और रानियां पीछे के दरवाजे से। कुएं पर जाकर उन्होंने पानी पी लिया। उस रात गांव में बड़ा जलसा हुआ। लोगों ने उत्सव मनाया, लोग नाचे और गीत गाए, और लोगों ने भगवान को धन्यवाद दिया कि हमारे राजा का दिमाग ठीक हो गया।
हम सब, यह पूरी हमारी मनुष्य की जाति इसी दशा में है। हम सब पागल हैं।
हम सब बिल्कुल पागल हैं। बच्चे पागल नहीं पैदा होते, लेकिन हम सब जाकर अपने ज्ञान के कुओं का पानी उनको पिलवा देते हैं। जब तक बच्चों में थोड़ी समझ होती है, वे कई बातों को इनकार करते हैं। लेकिन हम उनको डांटते हैं कि तुम गैर-अनुभवी हो। बच्चे हमारी सब बेवकूफियों को इनकार करते हैं। लेकिन बूढ़ों की संख्या बहुत, बल उनका ज्यादा, समाज उनका। बच्चों को ठोंक-पीट कर हम वापस अपने कुएं का पानी पिला देते हैं। बड़े होते-होते वे हमारी जगह आ जाते हैं। और अपने बच्चों के साथ वे भी वही करने लगते हैं जो हमने उनके साथ किया था। ऐसे दुनिया के यह दुर्भाग्य की कथा आगे बढ़ती चली जाती है। बच्चों के पास अहंकार नहीं होता, अहंकार हम सिखाते हैं। अहंकार हम ठोंक-ठोंक कर, पीट-पीट कर उनके भीतर पैदा करते हैं। हम उन्हें कांशस बनाते हैं, हम उन्हें चेतन बनाते हैं कि वे अपने अहंकार के प्रति सजग हो जाएं, अहंकार उनका चोट खाने लगे, अहंकार से वे पीड़ित हो जाएं। एक दफा बच्चा अहंकार से पीड़ित हो गया, फिर हम उसे दुनिया की दौड़ में लगा सकते हैं। अगर वह अहंकार से पीड़ित न हो तो दौड़ में डालना बहुत कठिन है। हम उनसे कहें कि

दिल्ली जाओ। वह कहेगा, काहे के लिए दिल्ली जाएं? हम अपने गांव में मजे में हैं। अगर अहंकार होगा तो वह कहेगा, हां, जरूर दिल्ली जाएंगे। दिल्ली चलो! हमको दिल्ली जाना है। फिर उसको गांव में चैन नहीं; उसको दिल्ली जाना है। दिल्ली जाए बिना उसे चैन नहीं मिल सकता। दिल्ली पहुंच जाए तो भी कोई मामला खतम नहीं होता, दिल्ली के आगे और दिल्ली हैं, और दिल्ली के आगे और दिल्ली हैं।
यह जहर हम दीक्षित करते हैं, सिखाते हैं, पकड़ाते हैं, भय देते हैं, लोभ देते हैं। भय और लोभ के बीच में अहंकार को खड़ा करते हैं। अहंकार को खड़ा करने के लिए भय और लोभ, दोनों की कीमिया, दोनों की केमिस्ट्री का काम लाते हैं। पीटते हैं बच्चों को, डराते हैं। उससे कहते हैं, अगर प्रथम नहीं आए तो अपमानित हो जाओगे, पिटोगे, डांटे जाओगे, सम्मान खो दोगे। अहंकार तृप्त करो, आगे आ जाओ, प्रथम आ जाओ तो सम्मान देंगे, आगे बढ़ाएंगे, इज्जत होगी, आदर होगा। लोभ देते हैं। यहां से लेकर स्वर्ग तक का लोभ देते हैं कि ऐसा करो तो स्वर्ग मिलेगा, ऐसा करोगे तो नरक जाओगे। और दोनों के बीच उसके भीतर खड़ा करते हैं, कोई चीज क्रिस्टलाइज करते हैं कि कोई चीज भीतर मजबूत होती चली जाए, वह अहंकार से पीड़ित हो उठे। और एक बार वह पीड़ित हो गया--दौड़ शुरू हो गई, बीमारी पकड़ गई--उसे जीवन के अंत तक पता भी नहीं चलता कि वह किस बीमारी में, किस फीवर में, किस बुखार में दौड़ा चला जा रहा है, किस सन्निपात में दौड़ा चला जा रहा है।
इस सन्निपात के विद्रोह में हो जाना ही धार्मिक आदमी का लक्षण है। रिलीजस माइंड, धार्मिक चित्त पैदा होता है इस महत्वाकांक्षी, एंबीशस, ईगोइस्ट, अहंकारी चित्त के विद्रोह में। जीवन की सारी शिक्षा, समाज की सारी शिक्षा, संस्कृति और सभ्यता के सब दावे, जब कोई आदमी इस कसौटी पर कसता है कि उनसे कहीं मेरा अहंकार तो नहीं बढ़ता?
अगर बढ़ता है तो उन सारे दावों को मैं छोड़ता हूं और अपने अहंकार को भी विदा देता हूं। मैं निर-अहंकार खड़े होकर देखूं, सहज और सरल--जैसा मैं हूं। किसी से दौड़ में नहीं, किसी के आगे जाने के लिए नहीं; वहां जाने के लिए, जो मैं हूं; वहां उतर जाने के लिए, जो मेरा स्वरूप है; किसी से प्रतिस्पर्धा में नहीं, बल्कि अपने भीतर स्वयं में; किसी के साथ दौड़ में नहीं, अपनी गहराई में।
अहंकार ले जाता है दौड़ में, दौड़ ले जाती है उथलेपन में।
निर-अहंकार ले जाता है गहराई में, गहराई ले जाती है स्वयं में।
जब मैं किसी दूसरे के बाबत विचार छोड़ देता हूं और ख्याल करता हूं कि मैं क्या हूं? कौन हूं? कहां हूं? तो उतरता हूं नाम के नीचे, उतरता हूं धन के नीचे, उतरता हूं यश के नीचे, उतरता हूं पद के नीचे। पहुंचता हूं वहां, जहां मेरा आथेंटिक बीइंग है, जहां मेरी आत्मा है, जहां मेरे प्राण हैं। लेकिन उस तक पहुंचने के लिए अहंकार की सतह छोड़ देनी होगी। सागर में डूबना है किसी को गहराइयों में, तो सागर की सतह को छोड़ देना होगा। अहंकार सतह है मनुष्य के व्यक्तित्व की और केंद्र है आत्मा। सतह पर ही हम डोलते रह जाते हैं, समुद्र की लहरों में ही खेलते रह जाते हैं, भीतर की गहराइयों का हमें पता ही नहीं चल पाता। समुद्र की सतह पर तूफान आते हैं, आंधियां आती हैं, नावें डूबती हैं, टकराती हैं। समुद्र की गहराइयों में न कोई तूफान है, न कोई आंधियां हैं, न कोई डूबता है, न कोई उतराता है। समुद्र की गहराइयों में विराट शून्य है, वहां विराट मौन है, वहां शांति है। हवाएं तो दूर, सूरज की किरणें भी वहां पहुंच कर उथल-पुथल नहीं कर पाती हैं। वहां सब शांत है। उस गहराई में पता भी नहीं है कि किसी तल पर लहरें उठ रही हैं और आंधियां बह रही हैं।
जिस व्यक्ति को शांति जाननी हो उसे अहंकार की सतह छोड़ कर आत्मा की गहराइयों में जाना होगा। गहराइयों में जाते ही तूफान बंद हो जाएंगे, आंधियां विलीन हो जाएंगी। गहराइयों में जाते ही पता चलेगा--न कोई दुख है, न कोई चिंता है, न कोई पीड़ा है। गहराइयों में जाते ही पता चलेगा--न कोई मृत्यु है, न कोई अंत है। गहराइयां शाश्वत अनंत में प्रतिष्ठित हैं। वहां कभी कुछ बना नहीं, कभी कुछ मिटा नहीं। सब मिटने और बनने का खेल सतह पर है।

और सतह मनुष्य का अहंकार है, और हम इसी को सजाते और संवारते और व्यवस्था देते रहते हैं। सिखाते हैं पहले दिन से ही यह झूठ। आदमी की जिंदगी में सबसे बड़ा कोई झूठ है, सबसे बड़ा कोई असत्य, तो एक कि मैं! और इसको सिखाते हैं।
लेकिन झूठ भी अगर बार-बार दोहराए जाएं--भय के साथ दोहराए जाएं, लोभ के साथ दोहराए जाएं, सारी दुनिया दोहराए--तो वे असत्य भी धीरे-धीरे सत्य मालूम होने लगते हैं।
एक सम्राट के दरबार में एक घटना घटी, उसे कह कर मैं अपनी बात पूरी करूं।
एक सम्राट के दरबार में एक आदमी आया एक सुबह और उसने आकर कहा, तुमने सारी दुनिया जीत ली, तुम्हारे नाम की ध्वजाएं लोक-लोकांतर में फहराने लगीं, पर्वतों के शिखरों पर तुम्हारा नाम है, सागरों की लहरों पर तुम्हारा नाम है, सूरज की किरणों पर तुम्हारा नाम है। जहां जाता हूं वहां हवाएं तुम्हारे नाम का गीत गाती हैं और वादियां तुम्हारे नाम की धुन बजाती हैं। लेकिन एक कमी रह गई है, वह मैं पूरी कर सकता हूं।
राजा ने कहा, कौन सी कमी है? कैसे पूरी करोगे? क्या है कमी मेरे पास?
सब है।
उसने कहा, सब है, लेकिन एक चीज तुम्हारे पास नहीं; देवताओं के वस्त्र तुम्हारे पास नहीं हैं। मैं तुम्हारे लिए देवताओं के वस्त्र ला सकता हूं। सम्राट ने कहा, देवताओं के वस्त्र? ये तो कभी सुने भी नहीं गए! ये कहां बनते हैं?
स्वर्ग में बनते हैं, इंद्र से ही मांग कर लाने पड़ेंगे। लेकिन मैं ला सकता हूं। मेरे नाते-रिश्ते हैं, मेरी कुछ पहचान है।
राजा ने कहा, क्या खर्च होगा?
उस व्यक्ति ने कहा, ज्यादा नहीं, लेकिन एक करोड़ तो खर्च हो ही जाए। क्योंकि आदमियों की समझदारी देख कर देवता भी रिश्वत लेने लगे हैं। आखिर आदमी से पीछे कब तक रहें! आदमी प्रोग्रेसिव, प्रोग्रेसिव होता चला जाता है--प्रगतिशील, प्रगतिशील। देवता कब तक पिछड़े रहें! वे भी रिश्वत लेने लगे। फिर देवता हैं, छोटी-मोटी रिश्वत से, पांच रुपये के नोट से काम नहीं चलता वहां। सीधा एक करोड़।
राजा ने कहा, बात तो ठीक कहते हो, देवता रिश्वत लेंगे तो एक करोड़ की लेंगे। छोटे-मोटे गांव का तहसीलदार रिश्वत लेता है पांच रुपये की। गवर्नर लेगा तो जरा बड़ी लेगा। और राष्ट्रपति लेंगे तो फिर बहुत बड़ी लेंगे। फिर देवता लेते हैं तब तो फिर मामला ही दूसरा है। जरूर-जरूर हो सकेगा। लेकिन धोखा तो नहीं देना चाहते हो?
उस आदमी ने कहा, धोखे का सवाल नहीं, छह महीने के बाद फलां तारीख को वस्त्र लाकर रख दूंगा। मैं जिस महल में ठहरा हूं, वहां आप पहरा लगवा दें। क्योंकि बाहर के रास्तों का मुझे उपयोग नहीं करना है। देवताओं तक जाने के तो अंदरूनी रास्ते हैं। बाहर पहरा लगा दें, मैं महल के भीतर रहूंगा, धोखा देने का सवाल नहीं। करोड़ रुपये पहुंचा दें।
रुपये पहुंचा दिए गए। नंगी तलवारों का पहरा बिठा दिया गया। छह महीने बीते, आतुरता बढ़ती गई। देश के कोने-कोने में खबर पहुंच गई कि देवताओं के वस्त्र पहली बार पृथ्वी पर उतर रहे हैं। दरबारी संदिग्ध थे। वजीर संदिग्ध थे। राजा भी संदिग्ध था। लेकिन धोखे की कोई गुंजाइश भी तो नहीं थी, आदमी भाग नहीं सकता था, वह भीतर बंद था। क्या हो रहा था उस महल के अंधेरे में, किसी को पता नहीं। वह आदमी क्या कर रहा था वहां, किसी को कुछ पता नहीं। द्वार बंद।
छह महीने पूरे हुए, वह आदमी बाहर निकला एक सोने की पेटी लेकर। बहुमूल्य पेटी थी, हीरे-जवाहरात जड़े थे। उस पेटी को लेकर वह राजमहल की तरफ चला, नंगी तलवारें उस पर पहरा देती चलीं। अब तो धोखे का कोई कारण नहीं था, वह वस्त्र ले आया था।
वह आदमी जरूर वस्त्र ले आया था, वह साधारण धोखेबाज न था, वह वस्त्र ले आया था। वस्त्र लेकर दरबार में पहुंचा, महल पर भीड़ है, दूर-दूर के नरेश आए

हैं, दरबार ऐसा सजा है जैसा कभी न सजा होगा। राजा सिंहासन पर बैठा है। उसने जाकर पेटी रखी, उसने ताला खोला और उसने कहा, अब तो आपको विश्वास आ गया कि मैं वस्त्र ले आया?
राजा ने कहा कि निश्चित! मैं भूल में था कि मैंने तुम पर शक किया। निकालो वस्त्र, मैं आतुर हूं उन वस्त्रों को पहनने के लिए।
उस आदमी ने पेटी खोली, हाथ भीतर डाला, बाहर निकाला, हाथ बिल्कुल खाली था। उसने राजा से कहा, यह सम्हालिए पगड़ी! लेकिन इंद्र ने कहा है, जो अपने बाप से पैदा हुआ होगा उसको ही यह पगड़ी दिखाई पड़ेगी। राजा ने देखा, हाथ खाली है। लेकिन राजा को फौरन पगड़ी दिखाई पड़ने लगी। उसने कहा, अरे इतनी सुंदर पगड़ी, कभी देखी नहीं। दरबारियों ने देखा, हाथ खाली है। लेकिन सब दरबारियों को पगड़ी एकदम दिखाई पड़ने लगी। सब दरबारी आगे बढ़-बढ़ कर पगड़ी को झांक-झांक कर देखने लगे। हाथ खाली है, वहां कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन जब सब कह रहे हैं कि पगड़ी है, तो कौन पागल बीच में कहे कि पगड़ी मुझे दिखाई नहीं पड़ती! और कहीं कोई यह न समझे कि मैं चुप खड़ा हूं, शायद मुझे न दिखाई पड़ती हो, तो हरेक जोर-जोर से बातें करने लगा, जोर-जोर से कहने लगा। कहने लगा, अहा! ऐसी पगड़ी कभी देखी नहीं, अदभुत है, अदभुत है, अलौकिक है, स्वर्ग की है, इंद्र की है, पहली दफे पृथ्वी पर उतरी है, धन्य हुए हम कि हमें दर्शन हुआ इसका! और चौंक-चौंक कर चारों तरफ देख रहा है। लेकिन सभी प्रशंसा कर रहे हैं, तो सोचता है कि मैं ही भूल में हूं, सभी ठीक होंगे। लोकतंत्र है, सभी ठीक होते हैं, एक आदमी भूल में होता है।
राजा ने पगड़ी पहन ली, उसकी असली पगड़ी निकाल कर उस आदमी ने पेटी के भीतर डाल दी। उघाड़ा हो गया। लेकिन पगड़ी तक गनीमत होती तो बात थी, बातें रुकती नहीं जब बढ़ती हैं, झूठ जब आगे बढ़ता है तो पूरी यात्रा पूरी होती है।
उसने फिर कोट निकाला और राजा से कहा, निकाल दें अपना कोट! कहां का यह कचरा कोट पहने हुए हैं, यह कोट पहनें देवताओं का! हाथ खाली है, कोट निकल गया। कमीज निकल गई, धोती निकल गई, अब आखिरी वस्त्र रह गया और राजा घबड़ाने लगा कि अब तो यह नग्न होने की नौबत आ गई! लेकिन झूठ जब चलता है तो यात्रा पूरी होती है। जब एक आदमी झूठ की यात्रा पर निकल जाता है तो बीच में रुकना मुश्किल है। अब रुकना और बदतमीजी थी, अब और नासमझी होती, अब और पागलपन होता कि इतनी देर तक क्यों झूठ बोलते थे अगर दिखाई नहीं पड़ता था? और सारे दरबारी तालियां पीट रहे हैं, महल आनंद से गुंजायमान हो रहा है, बाहर गांव में भी खबर पहुंच गई है, भीड़ इकट्ठी है महल के बाहर, वह भी दर्शन करना चाहती है। फिर आखिरी वस्त्र भी उस आदमी ने ले लिया। राज नग्न खड़ा हो गया। और दरबारी तालियां पीटने लगे कि धन्य है महाराज, आप इतने सुंदर दिखाई पड़ रहे हैं! महाराज सबको देखते हैं, खुद भी अपने शरीर को देखते हैं और कपड़ों पर हाथ फेरते हैं और प्रशंसा करते हैं कि बहुत सुंदर कपड़े हैं, एक करोड़ का कोई ज्यादा खर्च नहीं हुआ। लेकिन प्राण संकट में पड़े हैं।
और फिर वह आदमी कहने लगा कि महाराज बाहर चलिए! आपकी शोभायात्रा, प्रोसेशन निकलना चाहिए नगर में। क्योंकि नगर की जनता आतुर होकर बाहर खड़ी है, पृथ्वी पर पहली बार उतरे हैं देवताओं के वस्त्र, लोग न देखेंगे तो बहुत दुखी होंगे।
अब यात्रा पूरी होने लगी। अब राजा बाहर आ गया। सारे नगर में तालियां पीटी जा रही हैं, लोग प्रसन्न हो रहे हैं, हर आदमी बढ़-बढ़ कर प्रशंसा कर रहा है। सिर्फ, मैंने सुना है, एक छोटा सा बच्चा भी एक बाप के कंधे पर उस भीड़ में पहुंच गया था। वह अपने बाप से कहने लगा, पिताजी, राजा नंगा है!
उसके बाप ने कहा, चुप नासमझ, गैर-अनुभवी! तुझे पता नहीं, अनुभव नहीं जीवन का। मैं जानता हूं, राजा वस्त्र पहने हुए है। और यह बात दुबारा मुंह से मत निकालना! अगर किसी को पता चल गया तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। जब तू बड़ा हो जाएगा, तुझको भी वस्त्र दिखाई देने लगेंगे। अभी तू छोटा है, उम्र तेरी कम है। जैसा सभी बाप बेटों को समझाते हैं, ऐसा ही उसने भी अपने बेटे को समझा दिया। वह बेटा चुप हो गया। जहां इतनी भीड़, जहां बाप, जहां सारे ताकतवर लोग, जहां सब बड़े लोग प्रशंसा कर रहे हैं, वह छोटा सा बच्चा समझा कि मैं ही गलती में होऊंगा।

बच्चे गलती में नहीं हैं, बूढ़े गलती में हैं। बच्चों को सच्चाइयां दिखाई पड़ जाती हैं, बूढ़ों को नहीं दिखाई पड़तीं। असत्य का लंबा अभ्यास! भय के कारण, लोभ के कारण, निरंतर दोहराए गए झूठ की पुनरुक्ति के कारण एक जड़ अभ्यास पैदा हो जाता है और वह जड़ अभ्यास किसी भी असत्य के लिए सत्य बना देता है। और सबसे बड़ा असत्य जो आदमी ने सत्य बना लिया है वह अहंकार है। अहंकार के प्रति विद्रोह--इसलिए मैं धार्मिक आदमी की तीसरी सीढ़ी मानता हूं।
जो अहंकार को छोड़ता है, वह छोड़ते ही प्रभु के मंदिर में प्रविष्ट हो जाता है। जिसे यह ख्याल आ जाता है कि मैं कुछ भी नहीं हूं, ना-कुछ हूं, मैं हूं क्या! न मेरा कोई नाम, न मेरा कोई पता, न मेरे जन्म का कोई पता, न मेरी मृत्यु का कोई पता, न मुझे अभी पता है कि मैं कौन हूं। जब मुझे यह भी पता नहीं कि मैं कौन हूं, मैं क्या हूं, तो मैं कैसे घोषणा करूं कि मैं हूं।
जो चुप हो जाता है, घोषणा वापस ले लेता है, जो मौन हो जाता है, जो कह देता हैः मैं तो जानता भी नहीं कि मैं हूं। कौन हूं? क्या हूं? कहां से आता हूं? कहां जाता हूं? मैं तो निपट ना-कुछ मालूम होता हूं। जिसको इस नॉन-बीइंग का, नो-बडी का, ना-कुछ होने का स्मरण आता है, वह प्रभु के मंदिर का अधिकारी हो जाता है। जो ना-कुछ होकर उसके द्वार पर जाता है वह सब कुछ होकर वापस लौटता है। जो शून्य होकर उसकी तरफ आंखें उठाता है, उसके जीवन में पूर्ण की किरणें उतर जाती हैं।
वर्षा होती है बरसात में। पहाड़ खाली रह जाते हैं, क्योंकि पहाड़ भरे हुए हैं। गड्ढे भर जाते हैं पानी से, क्योंकि गड्ढे खाली हैं। प्रभु की वर्षा प्रतिक्षण हो रही है। जो अहंकार के पहाड़ बने हुए हैं, वे उस प्रभु के जल से वंचित रह जाएंगे। और जो निर-अहंकार के गड्ढे हो जाते हैं, खाली, शून्य, ना-कुछ, वे उस प्रभु के अमृत-जल से भर जाते हैं।
यह अंतिम सूत्र पर ध्यान देना। इस सूत्र को जो समझ लेता है उसके लिए कुछ भी और समझने को शेष नहीं रह जाता है। और फिर जब मृत्यु आपके द्वार पर आएगी, तो आपको मूर्तियों में छिप कर खड़ा नहीं होना पड़ेगा। और जब मृत्यु आपके द्वार पर आएगी और पूछेगी, कौन हैं आप? और आप चुप रह जाएंगे, तो मृत्यु आपको ले जाने में असमर्थ हो जाएगी। अमृत के आप अधिकारी हो जाते हैं।
धन्य हैं वे लोग, जो अहंकार से छूटते और परमात्मा को पा लेते हैं। अभागे हैं वे लोग, जो परमात्मा को खोते और एक व्यर्थ पानी की लकीर को खींचने में जीवन गंवा देते हैं।
मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।